Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्राचीन

हिमाचल

इतिहास
धर्म
एवम्
संस्कृति

7135

W. HIMALAYAS: HISTORY, RELIGION & CULT

Prof. L.P. Pandey

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

240

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

To, Prof B. N. Puri,

with respectful regards.

for favour of review.

L. P. Pandey

14·3·82

State Museum Library Lucknow

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्राचीन हिमाचल

इतिहास, धर्म एवम् संस्कृति

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्राचीन हिमाचल

इतिहास, धर्म एवम् संस्कृति

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Western Himalayas : History, Religion & Culture–1

Ancient Himachal
History, Religion & Culture

by

Dr. L. P. Pandey,

M. A. Ph. D. (DELHI)

British Council Scholar (1966-67), LONDON

Professor of History

H. P. University, Simla

State Museum Library Lucknow 7135

Wth a Foreword

by

Dr. Y. S. Parmar,

Former Chief Minister, Himachal Pradesh.

Introduction

by

Prof. Lallanji Gopal,

College of Indology, B. H. U. Varanasi

Ic

Indian Classics

7608-9, Ram Nagar, New Delhi-110055

INDIA

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

By the same author :

Sun-Worship in Ancient India, Motilal Banarsidass, DELHI, 1971.

Price : Rs. 50-00

May be obtained from :

Motilal Banarsidass,
Bungalow Road, Jawahar Nagar.
DELHI-7
INDIA

Copyright :
Dr. L. P. Pandey
First Edition-1981

Sole Distributor :
Minerva Book House,
The Mall, Simla-171001

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्राचीन हिमाचल

इतिहास, धर्म एवम् संस्कृति

लेखक
डॉ० लालता प्रसाद पाण्डेय
एम० ए० पी० एच-डी० (दिल्ली)
ब्रिटिश कौंसिल स्कालर (१९६६-६७), लन्दन
प्रोफेसर, इतिहास विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला

Ic
इण्डियन क्लासिक्स
७६०८-९, रामनगर, नई दिल्ली—११००५५
१९८१

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Publisher :
प्रकाशक : श्रीमती कामिनी गुप्त
E-38, पंचशील पार्क
नई दिल्ली

© : लालता प्रसाद पाण्डेय
Lalta Pd. Pandey
प्रथम संस्करण : 1981

मुख्य वितरक :
मिनरवा बुक हाउस,
दि माल, शिमला-171001

Printer :
मुद्रक : स्टैन्डर्ड प्रेस, २ बाई का बाग,
इलाहाबाद

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

To

The People of Himachal Pradesh

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

FOREWORD

प्राक्कथन

कहानी हिमाचल के गठन की*

हिमाचल के गठन से पहले छोटे-छोटे पहाड़ी राजाओं और रानाओं की हुकूमत थी।[१] पहाड़ी लोगों की जिन्दगी देश की दूसरी रियासतों की रियाया से बहुत बदतर थी। बाकी मुल्क में हो रही तब्दीलियों और नये खयालात से बेबहरा हमारे दूरदराज इलाकों में बसने वाले लोग जहाँ कि सड़कें और संचार के दूसरे साधन थे ही नहीं, यह भी नहीं जानते थे कि उनकी हालत वास्तव में क्या है? छोटी-छोटी रियासतों के हुक्मरानों के पास न तो इतने साधन थे कि इलाकों का विकास किया जाय और न ही उनका ध्यान कभी इस तरफ जाता था। कहीं-कहीं कोई राजा इक्का-दुक्का प्रगतिशील कदम उठाता था। कई रियासतों के हुक्मरान तो यह भी नहीं चाहते थे कि उनकी रियाया को कुछ शिक्षा की सुविधा प्राप्त हों। सिरमौर या कुछ और रियासतों के अलावा सब जमीन राजाओं की हुआ करती थी। इस विशेषाधिकार के कारण बेहतरीन जमीन राजा के पास होती थी। उसके बाद उसके परिवार के लोग और रिश्तेदार आते थे और आम लोगों के पास या तो जमीन होती ही नहीं थी या फिर बंजर पहाड़ियाँ ही हुआ करती थीं।

अपनी रियासतों को बाहर के भ्रष्ट प्रभाव से दूर रखने के लिए कई रिया-

---

* आकाशवाणी, शिमला के सौजन्य से प्राप्त

१. एक राज्य के रूप में गठित होने के पूर्व यह प्रदेश प्राय: दो भागों में विभाजित था। ब्रिटिश भारतीय राज्य और भारतीय रियासतें। चम्बा, मण्डी, सुकेत, बिलासपुर और सिरमौर की पांच बड़ी रियासतों को पंजाब पहाड़ी राज्य कहते थे। और २७ छोटी रियासतें शिमला पहाड़ी रियासतें कहलाती थीं। इनमें से कुछ तो केवल १० वर्गमील में ही फैली थी, और कुछ थोड़ी बड़ी थी। केन्द्रीय सरकार इनका प्रशासन दो रूपों में करती थी। शिमला पहाड़ी की रियासतें एक राजनीतिक एजेन्ट के माध्यम से और पंजाब पहाड़ी की रियासतें एक रेजीडेन्ट के माध्यम से प्रशासित होती थी। प्रशासन में दोनों स्वतंत्र न थे और घरेलू कार्यों में केन्द्रीय सरकार सीधा दखल रखती थी।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सतों को बाहर के लोगों के लिए बन्द कर दिया गया था। सड़कों वगैरह के अभाव के कारण सिर्फ कुछ दिलेर किस्म के लोग ही मुश्किल से पैदल चलकर वहाँ पहुँच सकते थे। कुदरती और इन्सान की बनाई बन्दिशों की वजह से बाकी भारत से कटे हुए पहाड़ी लोग मध्यकालीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। इन हालात के पेशेनजर कोई हैरानी की बात नहीं कि भारत की आजादी के संघर्ष की गूंज यहाँ कोई ज्यादह सुनाई नहीं दी। इसमें शक नहीं कि लोगों की नाराजगी और मुखालिफत के इक्के-दुक्के मुजाहिरे यहाँ-तहाँ कुछ रियासतों में हुए, लेकिन इनको बेरहमी से दबा दिया गया। रियासतों से बाहर तालीम हासिल करने वाले या तालीम प्राप्त किये हुये नौजवान दिल में घुटन महसूस करते हुए भी बहुत हालातों में मजबूर होकर रह जाते थे। जिन्होंने जरा भी सर उठाने की कोशिश की उनको कुचल दिया या रियासतबदर कर दिया गया।

मुल्क की आजादी से कुछ साल पहले अखिल भारतीय स्टेट्स प्युपिल्स कान्फरेन्स का एक सम्मेलन लुधियाना में हुआ, जिससे पहाड़ी रियासतों के लोगों को एक नई प्रेरणा मिली और १९३९ के करीब मुख्तलिफ रियासतों के राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं की गति-विधियों में तालमेल करने के लिए शिमला हिल स्टेट्स हिमालया रियासती प्रजामण्डल की स्थापना कर दी गई। पहाड़ी रियासतों के राजनीतिक कार्यकर्ता दमन के डर से या तो रियासतों के बाहर रह कर काम करते थे या वे भूमिगत रहते थे।

जूलाई १५, १९३९ में धामी रियासत के प्रजामण्डल ने एक प्रस्ताव पास करके राजा को कहा कि बेगार खत्म की जाए और संविधानिक सरकार कायम की जाए। अगले दिन प्रजामण्डल का एक प्रतिनिधि-मण्डल राजा से मुलाकात करना चाहता था। धामी के सैंकड़ों लोग इस प्रतिनिधि-मण्डल के साथ चल दिये। राजा ने प्रतिनिधि-मण्डल के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इस पर हुजूम में गम और गुस्से की लहर दौड़ गई। राजा ने खतरा महसूस करते हुए गोली चलाने का हुक्म दे दिया, जिससे दो आदमी मारे गए और कई जख्मी हो गए। यह शायद पहाड़ी रियासतों में आम लोगों की पहली संयुक्त बग़ावत थी।

इसके बाद छोटे-मोटे विद्रोह और भी कुछ जगहों पर हुए, जिनमें से सिरमौर में हुआ "पज्झौता"[1] विद्रोह काबिलेजिक्र है। राजा ने दूसरी आलमी जंग में अंग्रेजी

---

१. यह द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सरकार को सहायता न देने का आन्दोलन था। सिरमौर की रियासत जनता से अंग्रेज सरकार की सहायता के लिए धन और खाद्य सामग्री लेना चाहती थी। जनता ने इसका विरोध किया।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सरकार की मदद करने के लिए १६४२ में लोगों को फौज में भरती करने और साथ में चन्दा जमा करने की मुहिम जोर से शुरू की। जब इस सिलसिले में जब्र की इन्तहा हो गई तो "पन्भौता" के लोगों ने एक किसान-सभा बनाई और राजा से दर्खास्त की कि वह खुद इन पर ढाये गये अहलकारों के जुल्म की कहानियाँ सुने। जब उनकी सुनवाई न हुई तो एक आजाद सरकार बना ली और यह नारा दिया कि "भाई दूना पाई"[१]। इस बग़ावत को बहुत बुरी तरह से कुचल दिया गया। इलाका में मकानों को बारूद से उड़ा दिया गया और कई कार्यकर्ताओं की जायदादें जप्त कर ली गईं।

एक तरफ ऐसी इक्का-दुक्का बग़ावतें और दूसरी तरफ हिमालयन हिल स्टेट्स के प्रादेशिक परिषद् की बढ़ती हुई सरगर्मियों में पहाड़ी रियासतों के विलय करने का आन्दोलन तेज हो गया। मैं उन दिनों रियासतों के विलय कमीटी का सदस्य था, जो कि आलइन्डिया स्टेट्स प्युपिल्स कान्फरेन्स ने बनाई थी। मुल्क में आजादी मिलने से जरा पहले और बाद में राजाओं ने विलय का आन्दोलन बढ़ते देख कर यह फैसला किया कि हिमालय की रियासतों में भी सौराष्ट्र की तरह रियासतों की एक यूनियन बनायी जाये। इस सिलसिले में सोलन में २६ जनवरी, १६४८ को एक कान्फरेन्स बुलाने का फैसला किया। इस कान्फरेन्स से लोगों में जो गलत-फहमी फैल सकती थी, हम उससे खबरदार थे। हम जानते थे कि सदियों से राजाओं की हुकूमत के सताये हुए लोग फिर किसी दूसरी शक्ल में उनके चंगुल में फँसना नहीं चाहते थे। कुछ लोगों ने यह प्रस्ताव भी फेंका था कि इन रियासतों को पंजाब में मिला दिया जाये। लेकिन पहाड़ी लोग मैदानी लोगों से घबराते थे, क्योंकि इनका वास्ता उनसे राजाओं के कुछ अफसरान की शक्ल में पड़ चुका था। चुनान्चे लोगों के जज़्बात को देखते हुए मैंने २५ जनवरी, १६४८ को शिमला के गंज मैदान में एक मीटिंग बुलाई, जिसमें साफ तौर पर यह प्रस्ताव पास किया गया कि व्यक्तिगत रूप से किसी रियासत का वजूद रहना नहीं चाहिए और सबको मिलाकर उनको देश का एक प्रान्त बनाया जाय, जिसमें शक्ति लोगों को सौंप दी जाय। दूसरी तरफ सोलन कान्फरेन्स में २८ जनवरी, १६४८ को, जैसी कि आशा थी यह प्रस्ताव पास किया गया कि हिमाचल में सौराष्ट्र के तर्ज की हुकूमत बनाई जाये, जिसमें राजप्रमुख वगैरह हों।

---

१. यह एक प्रकार का अवज्ञा आन्दोलन था, जिसके अनुसार लोगों से कहा गया कि वे द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेज सरकार की न तो मदद करें और न राजस्व कर दें और न सेना में भरती हों।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इन मुख्तलिफ किसिम के प्रस्तावों से प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं और राजाओं में दरअसल जंग शुरू हुई। जहाँ हुक्मरानों के पिट्ठू अपने षड्यन्त्र में मशगूल हो गये, हमने दिल्ली की राह ली, ताकि केन्द्रीय नेताओं से सम्पर्क करके उन्हें सूरतेहाल से आगाह किया जाय।

हमें पूरी तरह पता था कि राजाओं से बातचीत के जरिये कोई मसला हल न हो सकेगा, जैसा कि पिछले तजुर्बे ने बताया था। हुक्मरान लोगों के खिलाफ जुल्मों तसद्दुद का सहारा लेने से बाज नहीं आयेंगे।

सरदार बल्लभ भाई पटेल उन दिनों उपप्रधान मन्त्री थे और गृह और राज-मन्त्रालय उनके पास थे। सरदार पटेल का यह मालूम था कि जब वह पौ फूटने से पहले अपनी बेटी मुन्नी बहन के साथ सुबह की सैर को निकलते थे तो उनके साथ लोग खुल कर मिल सकते और बातचीत कर सकते थे। मैं सर्दियों की एक ऐसी सुबह को उनसे उनकी सैर के वक्त मिला। मैंने अर्ज किया कि सरदार साहब, हमारे हुक्म-रान तसद्दुद से बाज नहीं आयेंगे और हमें भी उनकी हिंसा के जवाब में हथियार इश्तेमाल करने की इजाजत दी जाये। सरदार ने झट जवाब दिया "तुम्हें किसने रोका है"। मैं देखता ही रह गया और वह आगे चल दिये।

उसी दिन मैं राजमन्त्रालय के सेक्रेटरी श्री वी० पी० मेनन से मिला और उनसे सरदार से हुई भेंट के बारे में बतलाया। साथ में मैंने यह दरखास्त की कि हमें देहरादून में, जो कि भारत सरकार का इलाका है हथियार जमा करने की इजाजत दी जाये और अगर हमारे हथियार पकड़े जायें तो हमारे खिलाफ कोई कार्रवाई न की जाये। श्री मेनन हमारी अजीब-सी दरखास्त पर हैरान रह गये। बोले, अरे भई ऐसा मत करो--हम हिंसा की इजाजत कैसे दे सकते हैं, हाँ अगर तुम एक हजार लोग इकट्ठा करके यह माँग करके दिखा दो कि इन पहाड़ी रियासतों का विलय किया जाय तो बाकी मेरा काम है। मैंने कहा कि हाँ, देखना लोग न मारे जायें।

दिल्ली से इस तरह हरी झंडी मिलते ही हमने शिमला का रुख किया। हमने अपना आन्दोलन चलाने के लिए कायम मुकाम सरकार बना दी, जिसके सदर पंडित शिवानंद रमोल थे। हमने एक खुफिया मीटिंग की, जिसमें पं० शिवानंद रमोल, पं० पदमदेव और एल० डी० वर्मा ने भाग लिया। इसमें यह फैसला किया गया कि प्रजामण्डल के तीस चालिस वर्कर लोरी के नजदीक फिरनू के मुकाम से रियासत सुकेत की करसोग तहसील में दाखिल हों और रियासत के दफ्तरों पर कब्जा करलें। १८ फरवरी १९४८ को अलस सभा हमारे कार्यकर्ता, जिसमें पं० शिवानंद रमोल और

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पं० पदमदेव शामिल थे, करसोग तहसील में दाखिल हुए। मुझे यह डियूटी सौंप दी गई थी कि मैं संजोली में बैठकर चोरी से टेलीफोन के जरिये हमला के सिलसिले में मिलने वाली खबरों को अखबारों और न्यूज एजेन्सियों के पास पहुँचाऊं। हमारे वर्कर असलहा वगैरह से लैस थे। उनके पास इसके इलावा नकली हथगोले वगैरह भी थे। आगे बढ़ते हुए हर पाँचवें मील पर हमारे एक कार्यकर्त्ता को छोड़ दिया जाता था, ताकि मेरे साथ पूरा सम्पर्क बना रहे।

हमारे वर्करों के हौसला बुलन्द थे। और जैसे ही वह आगे बढ़ते गये काफिला बढ़ता गया, मार्च करने वाले सैंकड़ों से हजारों हो गये और उन्होंने बढ़कर थाना और फिर तहसील पर कब्जा कर लिया। थानेदार और तहसीलदार हिरासत में ले लिये गये। सुन्दरनगर से करसोग तहसील का ताल्लुक बिल्कुल कट गया। राजा का जो भी सन्देश देने वाला आता पकड़ लिया जाता। किसी के बूट में किसी की जेब में राजा का सन्देश मिलता। एक तरफ लोग आगे बढ़ रहे थे, दूसरी तरफ अखबारों में बड़ी-बड़ी सुर्खियों से यह खबरें छप रही थीं कि हिमालया हिल रहा है।

राजा को सिर्फ अखबारी खबरों से पता चल रहा था कि उसकी रियासत में क्या हो रहा है। उसने घबराहट में भारत सरकार से शिकायत की कि उसकी रियासत में डाकू घुस आये हैं और उसकी मदद की जाये। भारत सरकार का राज-मन्त्रालय सारे हालात पर नजर रखे हुए था। उसने राजा को हुक्म दिया कि रियासत का इन्तजाम भारत सरकार के सपुर्द कर दिया जाये और अनाने हुकूमत हाथ लेने के लिए जलन्धर से जनरल श्री नगेश को सुन्दरनगर जाने का हुक्म दिया गया।

सुकेत का हाल देखते हुए दूसरे राजाओं ने, जिन्होंने घबराहट में किसी न किसी तरह की प्रजातन्त्र-प्रणाली लागू करने की कोशिश की थी, घुटने टेक दिये और कुछ ही दिनों में कोई तीस बड़ी से छोटी रियासतों ने विलय के पत्र पर दस्तखत कर दिये। विलय से कुछ अर्सा पहले १८ मार्च १९४८ को सरदार पटेल ने एक तारीखी खत लिखा कि जब यह इलाका इन्तजामिया और साधनों की दृष्टि से काफी विकसित हो जायगा तो इसका संविधान भारत के दूसरे प्रान्तों की तरह होगा।

प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं को इससे बहुत राहत महसूस हुई, क्योंकि इसमें वह जरासीम मौजूद थे, जो कि भविष्य में हिमाचल को मुनासिब शक्ल और दर्जा दिला सकते थे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इस तरह १५ अप्रैल १९४८ को हिमाचल प्रदेश का जन्म तीस रियासतों के विलय के बाद चीफ कमिश्नर के एक प्रान्त की शक्ल में हुआ।[1]

१५ सितम्बर, १९८०
शिमला

डॉ० यशवन्त सिंह परमार
भूतपूर्व मुख्य मन्त्री
हिमाचल प्रदेश

---

१. इन रियासतों का नाम था--चम्बा, मण्डी, सुकेत, बिलासपुर, बुशहर, खनेती, देलथ, क्योन्थल, कोटी, ठियोग, मघन, घुण्ड, रटेश, बाघल, जुब्बल, राविन, धाडी, बाघट, कुमारसैन, भाजी, मेहलोग, बल्सोन, धामी, कूथर, कुनिहार मंगल, बेज, डरकोटी, थरोच, सांगरी और सिरमौर।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

INTRODUCTION

The Himalays occupy an important position in Indian history and culture. They have inspired the Indian mind to soar high in the realm of metaphysical and social thought and have exercised deep influence on other areas of culture, including art and literature. The Himalayas, sublime and majestic in their glory, have attracted devoted seekers of truth.

The Himalayan regions have maintained their distinct colourful personality. Earlier they witnessed the establishment of many states remarkable for their republican sructure and democratic spirit. The people have championed the cause of freedom and opposition to the oppressive forces. The area served as an asylum for people fighting against tyranny and for artists trying to preserve and promote cultural achievements and values.

The size and geographical extent of states in ancient and medieval times did not always conform to the cultural zones or regions of those times. They were often conditioned by political and military factors, the ambitions of individual rulers and the limitations of transport and communication. It will, therefore, not be possible to trace ancient prototypes of modern States. In the case of areas included in the present Himachal Pradesh, whatever had been the state of affairs in the political sphere, it is abundantly clear that they formed a distinct cultural unit. It is gratifying to note that in Independent India, in creating States administratively and economically viable, the cultural characteristics of the areas concerned have been duly considered. The birth of Himachal Pradesh as a seperate State and its march on the path of progress provide a fascinating story.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Himachal Pradesh has passed through many ups and downs in its constitutional life. After 1948 the people of the Pradesh fought a relentless but peaceful struggle to see its proper shape and status.

In 1950, when the Constitution of India came into force, it became a Part C state under a Lieutenant Governor, It got a Legislative Assembly and a Council of ministers. In 1952, following the first general elections in the country, a popular government was formed. Dr. Y. S. Parmar was sworn in as its first Chief Minister on March 24, 1952

In 1956, the State Reorganisation Commission was asked to consider and recommend the future form and status of the Pradesh. It recommended its merger with Punjab by a majority-decision. Fazal Ali, the Chairman of the Commission, dissented. He was of the opinion that the administration will be more accessible to the people in small States wherein there can be a livelier appreciation of local needs.

The Government of India decided on November 1, 1956 to retain Himachal Pradesh as a seperate entity in the form of a Union Territory. The Pradesh, however, lost its democratic set-up for regaining which the people launched a fresh campaign. Their struggle was based on Gandhian principles. They sought peaceful negotiations with the Central Government and adopted other constitutional means to achieve their aim.

The Central leadership under Shri Jawahar Lal Nehru appreciated the aspirations of the people. Shri Lal Bahadur Shastri, the then Home Minister, took a positive view on the question. Speaking in the Parliament on the democratic set-up for the Pradesh he said, "It is better not to take half hearted steps and half hearted measures. It is better to delegate whatever power we want to delegate to them at a stretch and give the power to the representatives of the people to run their own government."

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

The sincere and sustained efforts of the people ultimately met with success. The democratic set-up was restored to Himachal Pradesh on July 1, 1963. The Territorial Council was converted into the Vidhan Sabha, The popular Ministry, headed again by Dr. Parmar, took over the charge. After that it was a speedy development towards the final goal.

Three Years later (November 1, 1966) the Hill-areas of Punjab were integrated with Himachal Pradesh. The whole of Kangra, Kulu, Lahaul and Spiti and Simla districts, the Nalagarh tehsil in Ambala district and some areas of the Una tehsil in Hoshiarpur and of Dalhausie in Gurdaspur district were merged with Himachal Pradesh.

The people of the Pradesh made repeated efforts to gain the status of a full-fledged state for their province. Their claims for this were based on the commitments made by some national leaders and its enlarged size, financial position and development-needs. Stress was laid mainly on economic, political and regional factors. The economy of the region was, infact, viable. Self-sufficiency in its economy was visible in its large scale afforestation, forest-based industries, horticulture and utilization of rivers for generating electricity. These natural resources created necessary confidence in its future wealth and foretold its rapid development.

A Negotiating Committee was formed for pleading the case of the Pradesh with the Central Government. The Committee made a useful contribution in this regard, The Central leadership realised the political importance of the province and its economic necessities. Prime Minister Mrs. Indira Gandhi once Said:

"Himachal Pradesh would have to be provided all facilities for progress to cover the backlog of centuries old backwardness and to enable her to play its due role in the country. Moreover, Himachal being a border area, its needs had to be given immediate

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

attention."*

The attitude of the Central Government finally became favourable. Knowing this the Vidhan Sabha of the State adopted a unanimous resolution demanding full Statehood. Members of both the Houses of the Parliament supported the case. Mrs. Indira Gandhi announced the decision of her Government in the Lok Sabha in July 1970 granting full-fledged Statehood to the Pradesh. The relevant bill was passed by the parliament in its winter session of the same year. On January, 25, 1971, Himachal Pradesh was declared a State of the Union of India.

I have gone through the manuscript of the monograph Prachina Himachal : Itihasa, Dharma evam Sanskriti by Dr. L. P. Pandey. This is the first work of its kind on the subject. Dr. Pandey has worked hard to collect much useful material and to present a connected history of Himachal Pradesh. The monograph brings into relief the cultural personality of the region. The work is based on a critical study of the original sources. Its literary presentation will be of absorbing interest to its reader.

I have pleasure in recommending this scholarly study to scholars and general readers alike.

College of Indology
Banaras Hindu University
VARANASI--5
Dated 28-8-78

LALLANJI GOPAL

*Mrs. Indira Gandhi, Prime Minister, in a speech at Kerchem during her visit to Kinnaur, June 10, 1968.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

CONTENTS : विषय-सूची

Foreword (प्राक्कथन)

Introduction (प्रास्ताविक)

भूमिका

चित्र-तालिका (List of figures)

अध्याय संकेत-सारिणी (Abbreviations) पृष्ठ

१. धरती और जन-समुदाय १-१२

धरती १

जन-समुदाय ५

२. इतिहास जानने के स्रोत १३-२८

३. इतिहास की रूपरेखा : राजनैतिक और सांस्कृतिक २९-९७

प्रारम्भ से लेकर लगभग १५०० शदी ई-पू० तक २९

वैदिक काल ३३

बुद्ध-युग और मौर्यकाल ३६

शुङ्गयुग ३९

क्षेत्रीय लघु राज्यों का उत्थान और पतन ४१

कुषाणों का उत्थान और पतन ४९

देशी (क्षेत्रीय) राज्यों का पुनरुत्थान ५०

गुप्त-साम्राज्य और हिमाचल ५३

हर्षवर्द्धन : हिमाचल के प्रति उसकी नीति ५७

हर्षोत्तरकालीन हिमाचल ६०

क्षेत्रीय लघुराज्यों का उत्थान ६५

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

४. धार्मिक विकास : बौद्धधर्म ९८-१०१

हिमाचल में बौद्ध धर्म का विकास ६८
तिब्बत में लामाबौद्ध धर्म ७६
संस्कृति का विकास ८५
कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म की देन ८७
ललित कलाओं का विकास ८६
हिमाचल के बौद्ध विहार एवं मंदिर ८६
किन्नौर ८६
लाहौल ६४
स्पिति ६६

५. हिन्दू धर्म का विकास १०२-१४१

शैवधर्म १०२
शाक्तधर्म ११४
वैष्णवधर्म १२७
सूर्य-पूजा १३२
गणपति-पूजा १३५
हिमाचल के अन्य देवी-देवता १३६
लोकधर्म १३८
जैनधर्म १३६

६. संस्कृतिः शिक्षा, लिपि, भाषा और साहित्य १४२-१५३

शिक्षा १४२
लिपि १४५
भाषा १४८
साहित्य १५०

७. राज्य, समाज एवं अर्थ-व्यवस्था १५४-१८६

राज्य : राज्य का स्वरूप १५४
: राज्य-प्रशासन १५७
: सरकारी आय-व्यय के प्रमुख स्रोत १५७
समाज : समाज का संगठन और स्वरूप १६०
: स्त्रियों की दशा १६३
: सामान्य जन-जीवन १६४

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अर्थव्यवस्था	: कृषि	१६५
	: व्यापार	१६८
	: व्यापार के कुछ प्रमुख केन्द्र	१७१
	: कुछ अन्य प्राचीन अवशेष	१७३
	: नगर तथा नगर-जीवन	१७५
८.	सारांश: भारत में हिमाचल की सांस्कृतिक धरोहर	१८७-१९२
	: बहुरंगी संस्कृति का विकास	१८९
	: कला का विकास	१९०
सन्दर्भ-सूची	: पठनीय पुस्तकें तथा शोधपत्र	१९३
शुद्धि-पत्र (ERRATA)		

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

List of Figures

चित्र-तालिका

Fig. 1. Buddha, (Bronze) Duwang, Tabo Monastery.
Fig. 2. Vajradhara (Bronze) Duwang, Tabo Monastery.
Fig. 3. Kartikeya, Baijanatha Temple.
Fig. 4. Dikpalas, Rangpur Temple. Bilaspur.
Fig. 5. Visnu, Hari Rai Temple, Chamba.
Fig. 6. Visnu (Garudasana), Chamba.
Fig. 7. Mahishasuramardini Durga, Chamba,
Fig. 8. Mahishasuramardini, Wooden Carving, Nirmanda.
Eig. 9. Erotic Scene, Bansi Gopal Temple, Chamba.
Fig. 10. Kali, Chamba Painting.
Fig. 11. Tantric theme on a Chamba Scroll.
Fig. 12. Ganesa, (Bronze). Chamba.
Fig. 13. Umamaheshwar (Bronze)
Fig. 14. Sadasiva, (Bronze)
Fig. 15. Jagatsukha (Miniature) Temple, Kulu.
Fig, 16. Hidimba Temple, Manali.
Fig, 17. Wooden Temple of Devi, at kao, Mandi.
Fig. 18. Rock-Cut Temple, Masrur, Kangra.
Fig. 19. Temple of Chandrasekhara at Saho, Chamba.
Fig. 20. Radhakrishna, Basohli Painting.
Fig. 21. Gandharva, Wooden Carving, Chamba.
Fig. 22. Lady (Kinnari) playing with harp, Baijanatha.
Fig. 23. Chamba Rumala, Ashtanayika-theme.
Fig. 24. (a) Coins of Samantadeva.
(b) Kuninda Coins.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

संकेत-सारिणी

(ABBREVIATIONS)

AI. : Ancient Indla.

ASR. : Archaeological Survey of India, Annual Report.

Ch : Chapter.

CII. : Corpus Inscriptionum Indicarum.

ed. : Edited, edition.

EP. IND : Epigraphia Indica.

HOS. : Horward Oriental Series.

IA. : Indian Antiquary.

JBORS. : Journal of Bihar and Orissa Research Society.

JISOA : Journal of Indian Society of Oriental Art.

JNSI. : Journal of the Numismatic Society of India.

JPHS. : Journal of Punjab Historical Society (Old Series).

Mbh. : Mahabharata.

R.T. : Raja Tarangini.

Tr. : Translated by.

Vol. : Volume.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

भूमिका

हिमाचल प्रदेश भारतीय गणराज्य का एकनवीनतम राज्य है। एक राज्य के रूप में, इसका जन्म सही माने में १९७० ई० में हुआ। इसके पीछे राजनीतिक विचारों के साथ-साथ भौगोलिक तथा सांस्कृतिक कारण भी विद्यमान हैं। पश्चिमी हिमालय की गोद में बसा हुआ यह क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से एक अलग इकाई का निर्माण करता है। वनों में बिखरी तथा पहाड़ी भू-भाग में छिपी अर्थ-व्यवस्था इसे आर्थिक स्वतन्त्रता देने की क्षमता रखती है। इन्हीं कारणों से इस क्षेत्र में संस्कृति का विकास अत्यन्त प्राचीन काल से हुआ है। यहाँ विविध संस्कृतियों का समन्वय भी हुआ है, क्योंकि यह भारत की एक सीमा पर बसा है और तिब्बत, चीन तथा मध्य एशिया के संपर्क में किसी न किसी तरह रहा है। परिणामतः इस प्रदेश का अतीत सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध और विचित्र रहा है। इस पुस्तक में ऐसी ही सांस्कृतिक धरोहर का एक ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रदेश का इतिहास अभी तक प्रायः उपेक्षित और अज्ञात है। यहाँ से सम्बन्धित जो भी साहित्य उपलब्ध है उनमें से शायद एक या दो ग्रंथ ही इतिहास ग्रंथ माने जायँगे। अधिकतर लोगों ने तो यात्रा-विवरण ही प्रस्तुत किया है। उन्होंने समय-समय पर इस क्षेत्र का भ्रमण किया और अपनी सूचना और अनुभव के अनुसार विभिन्न भागों के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट किया। इनमें, बहरहाल अधिक श्रेय अठारहवी और १९वीं शताब्दी के अंग्रेज विद्वान् यात्रियों को ही दिया जाना चाहिए, जिन्होंने यहाँ की कठिन जलवायु का सामना करते हुए दुर्गम भागों को नापा और एक भाग से दूसरे भाग में जाकर छिपी हुई बातों, पुरातात्विक तथ्यों तथा स्मारकों को हमारे सामने उपस्थित किया। ऐसे विद्वानों में जार्ज फारेस्टर का नाम अग्रगण्य है, जिनकी पुस्तक जर्नी फ्राम बंगाल टू इग्लैण्ड (१७९८ ई०) इस प्रदेश के लिए प्रथम सूचना-ग्रन्थ है। तदनन्तर जेम्सवेलोफ्रेजर ने 'हिमालामाउटेन्स' (१८२० ई०) लिखा, जिसमें पहली बार हिमाचल प्रदेश को पाठकों के समक्ष विस्तार से रखा गया। इसी श्रेणी में मूरकाफ्ट द्वारा लिखित 'ट्रैवेल्स इन हिन्दुस्तान' (१८४१ ई०) गिनाई जानी चाहिए, जिसके अध्ययन से इस क्षेत्र के प्राचीन स्मारक और अमूल्य ऐतिहासिक तथ्य सामने आये। ऐसे ही यात्रा-विवरणों में बर्न हेगेल की ट्रैवेल्स इन

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पंजाब ऐन्ड कश्मीर (१८५५ ई०) को गिनाया जा सकता है। ऐसी ही पुस्तकों में फ्रैन्सिस हैमिल्टन द्वारा लिखित डेस्क्रिप्सन्स आफ हिन्दुस्तान (१८२०) भी उल्लेखनीय है, जिसके पढ़ने से हिमाचल के विभिन्न ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। इस सम्बन्ध में डॉ० वनडेर रूस्लीन द्वारा लिखित 'फोर मन्थ्स केम्पिग इन दि हिमालयस, जिसे एम उबल्यू होपर ने अंग्रेजी में अनुवाद किया (१९६९) विशेष रूप से उल्लेखनीय है; क्योंकि यह प्रायः अकेली पुस्तक है, जो हिमाचल के विभिन्न भागों के भूगर्भशास्त्र का अध्ययन करती है। इससे यहाँ की चट्टानों की बनावट तथा उनके उम्र का ज्ञान होता है जो हिमाचल की ही नहीं, वरन् भारत के सबसे प्राचीन मानव-स्थिति की ओर संकेत करती है।

इनके अतिरिक्त यहाँ के इतिहास और संस्कृति पर कुछ प्रकाश डालने वाले ग्रंथों में उन गजेटियर्स का उल्लेख करना आवश्यक है, जो पूरे पंजाब या उसके पर्वतीय क्षेत्रों के सम्बन्ध में समय-समय पर लिखे गये। इनमें सबसे महत्वपूर्ण हरकोर्ट द्वारा लिखित हिमालयन डिस्ट्रिक्ट आफ कुलु, लाहौल और स्पिति है, जिसमें यहाँ के सीमान्ती भाग पर थोड़ा विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार चंबा, किन्नौर, कांगड़ा, शिमला तथा बिलासपुर आदि क्षेत्रों पर प्रकाश डालने वाले 'गजेटियर्स' लिखे गये, जिनमें यहाँ के इतिहास और पुरातत्व पर थोड़ी-बहुत पठनीय सामग्री पहली बार उपस्थित की गई।

सबसे उत्तम और सही माने में इतिहास ग्रन्थों में उल्लिखित फागेल और हचिन्सन द्वारा लिखित 'दि पंजाब हिल स्टेट्स' (दो जिल्दों में, १९३३) को गिनाया जाना चाहिए। यह पूर्व लिखे ग्रंथों एवं यात्रा-विवरणों से सहायता लेकर लिखी गई है, जिसमें उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ज्ञात इतिहास-लेखन की विधि एवं दृष्टि मिलती है। इन विद्वान् लेखकों को सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं, जिनका लाभ उठाकर उन्होंने सही माने में पहली बार इस क्षेत्र का विश्वसनीय इतिहास प्रस्तुत किया है। इसकी भूमिका में कुछ जरूरी तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए इतिहास-लेखन के प्रमुख स्रोतों की चर्चा की गई है और फिर एक लम्बे अध्याय में सम्पूर्ण क्षेत्र का प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल (ई० १९३३ तक) के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। इसके बाद अलग-अलग अध्यायों या उपअध्यायों में यहाँ के क्षेत्रीय राज्यों का विस्तृत इतिहास लिखा गया है। इस कार्य में साहित्यिक स्रोतों-संस्कृत तथा अन्य, विदेशी विवरणों, यात्रा-आख्यानों, प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों, विभिन्न वंशावलियों तथा लोक-कथा इत्यादि साक्ष्यों का पूर्णरूपेण उपयोग किया गया है। यह ग्रन्थ सचमुच में इतिहास-लेखन की सभी विशेषताएँ रखता है और इसे इस क्षेत्र का अनुपम इतिहास

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ग्रन्थ माना जाता है। परन्तु आज के इतिहास-लेखन की दृष्टि और विधि को देखते हुए इसमें अनेक कमियाँ दिखाई पड़ती हैं।

इसमें एक तो राजनैतिक इतिहास ही मिलता है और विभिन्न क्षेत्रों में जन्मे अनेक राजवंशों का उत्थान और पतन ही लिखा गया है। इसमें इन ऐतिहासिक तथ्यों के पीछे छिपे आर्थिक तथा अन्य आधारों की व्याख्या नहीं की गई तथा लोगों के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रायः नहीं के बराबर प्रकाश डाला गया है। परिणामतः इसके पढ़ने से इस प्रदेश के प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक संस्थाओं का कोई ज्ञान नहीं मिलता है। इसमें यहाँ मिलने वाले कला-अवशेषों का भी उल्लेख नहीं है और शिक्षा, साहित्य, दर्शन, राजनीति तथा प्रशासन आदि पर प्रायः कुछ नहीं लिखा गया है। इन कारणों से आज के युग में इसकी उपयोगिता तुलनात्मक दृष्टि से कुछ कम हो जाती है। इस क्षेत्र का प्रागितिहास और यहाँ का प्राचीन इतिहास इसमें एकदम उपेक्षित है, मध्यकालीन इतिहास अधिक समृद्ध है और उसमें वहाँ की वंशावलियों में मिले तथ्यों तथा लोक-वार्ताओं पर ही अधिक विश्वास किया गया है, जिससे ऐतिहासिक गति-विधि को समझने में थोड़ी कठिनाई होती है।

यह पुस्तक मूलतः यहाँ के राजाओं के आपसी युद्ध का वर्णन करती है, लेकिन उनके अन्य आपसी सम्बन्धों पर कम प्रकाश डालती है। इसी तरह इस देश की सर्व-शक्ति मान केन्द्रीय सत्ता और उसके यहाँ के शासकों के संबंध पर ग्रन्थकार ने प्रायः न के बराबर ध्यान दिया है। प्राचीन काल में घटे ऐसे राजनैतिक सम्बन्धों पर यह ग्रंथ प्रायः एक दम मौन है। बाद के कालों के लिए इस पक्ष पर कुछ ध्यान दिया गया है और आधुनिक काल के इतिहास-लेखन में लेखक की दृष्टि अंग्रेजी सत्ता पर केन्द्रित हो गई है, जिसका विस्तार १९वीं शदी के मध्य में इस क्षेत्र तक हो गया था। फिर भी इस ग्रन्थ को इस क्षेत्र के इतिहास-लेखन में प्रथम सफल प्रयत्न मानना उचित है।

इस क्षेत्र की कला-कृतियों की ओर ध्यान दिलाने वाले महान् लेखकों में सबसे पहले आनन्द कुमार स्वामी का नाम लिया जाना चाहिए, जिन्होंने यहाँ की चित्रकला को प्रथम बार विश्व की कला में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का प्रयत्न किया। इन्होंने १९२७ ई० में राजपूत चित्रकला नामक पुस्तक लिखी, जिसमें पहाड़ी चित्रकला की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया। इसी से सम्बन्धित विषयों पर अन्य सफल और उत्तम कृतियों में फागेल द्वारा विरचित 'एन्टीक्विटी आफ चम्बा स्टेट' (१९११), ए० एच० फ्रैन्के द्वारा दो जिल्दों में लिखित एन्टीक्विटीज आफ इन्डियन तिब्बत (१९१३

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और २६) तथा जे० सी० फ्रैन्च द्वारा लिखित 'हिमालयन आर्ट' (१६३१ ई०) आदि ग्रन्थों का उल्लेख करना आवश्यक है। इन विद्वान् लेखकों ने पहली बार यहाँ की पुरातात्विक समृद्धि को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया और ऐसी सामग्री को खोज निकाला, जिनके अधार पर इतिहास-ग्रन्थ लिखे जाते हैं। इनमें न केवल यहाँ के पुराव-शेषों तथा प्राचीन स्मारकों का उल्लेख है वरन् पहली बार यहाँ के अभिलेखों को प्रकाश में लाया गया है, जिससे हिमाचल के प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास पर सही प्रकाश पड़ता है। इनमें यहाँ की मूर्तियों, भवनों तथा टीलों पर भी यथासंभव प्रकाश डाला गया है, जिनकी सहायता से यहाँ की प्राचीन तथा मध्यकालीन कला एवं संस्कृति जानी जा सकती है।

इन्ही ग्रन्थों के साथ-साथ यहाँ उन शोध-पत्रों का भी उल्लेख किया जाना चाहिए, जो इस क्षेत्र से सम्बन्धित अन्य सहायक सामग्री पर प्रकाश डालते हैं। ये प्रायः उसी दौरान लिखे गये जब उपर्युक्त ग्रन्थों की रचना हुई। इनमें हीरानंद शास्त्री द्वारा लिखित 'हिस्टारिकल डाक्यूमेन्ट्स आफ कुलू' और फागेल द्वारा लिखित 'रेम्नैन्ट्स इन दि कांगड़ा वैली' और 'हिल टेम्पुल्स आफ द वेस्टर्न हिमालयस' प्रमुख हैं। फ्लीट ने निर्मण्ड ताम्रपत्र पर प्रकाश डाला और ब्यूलर महोदय ने कांगड़ा ज्वालामुखी प्रशस्ति को छपवाया। इनसे यहाँ के प्राचीन स्मारकों तथा अभिलेख--जैसे प्रमुख इतिहास-लेखन के स्रोतों पर अत्यधिक प्रकाश पड़ा।

इसी सिलसिले में जनरल कनिंघम के महत्वपूर्ण पुरातात्विक कार्यों का भी उल्लेख करना जरूरी है। सच पूछा जाय तो हिमाचल के अन्य भागों का अपने समय में प्रचलित विधि के अनुसार उन्होंने पुरातात्विक सर्वेक्षण किया और अपने विवरण में उन्होंने वह सामग्री उपस्थित की, जिनकी सहायता से हिमाचल के अनेक क्षेत्रों का सांस्कृतिक इतिहास लिखा जा सकता है। उनके वे विवरण केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित पुरातात्विक सर्वेक्षण ग्रथांकों में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। इनकी उपयोगिता इस दृष्टि से भी अधिक है कि उनमें स्मारकों, मूर्तियों तथा कुछ अन्य वस्तुओं के फोटोग्राफ या रेखाचित्र भी दिये गये हैं। इन ग्रन्थों में कुछ अन्य विद्वानों के भी पुरातात्विक सर्वेक्षण के रिपोर्ट्स छपे हैं, जिनमें फागेल द्वारा लिखित कुलू के बजौरा महादेव मन्दिर, तथा वहीं के अन्य बौद्ध मूर्तियों से सम्बन्धित लेख इन्सक्राइब्ड ब्रास स्टच्यूट फ्राम फतेहपुर का पता चला। बी० एच० एल शटल अर्थ द्वारा लिखित ल्हा-लुन टेम्पुल, स्पिति ने वहाँ के प्राचीन गोम्पा का विस्तृत विवरण उपस्थित किया। भारतीय पुरातत्व विभाग के अन्य अनेक विद्वान् लेखकों ने यहाँ के मसरूर-आदि शिला मंदिर-कला एवं अन्य मूर्तियों का उत्तम अध्ययन किया। चंबा में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इन्हीं दिनों एक संग्रहालय भी स्थापित किया गया, जिससे इस क्षेत्र की कला-निधि की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ।

हिमाचल पर इतिहास-लेखन का यह क्रम निरन्तर चलता रहा। उसके स्मारकों से सम्बन्धित अन्य कई शोधपत्र छपाये गये। बाद के इन विद्वानों में हम हरमन गोएट्ज का उल्लेख कर सकते हैं, जिन्होंने हिमाचल की कला से सम्बन्धित कई शोधपत्र लिखा, जिन्हें तत्कालीन शोध-पत्रिकाओं में छापा गया। इन विद्वानों के ये शोधपत्र बड़े ही विद्वतापूर्ण हैं और वे सभी प्रकार के साक्ष्यों को ध्यान में रखकर आलोचनात्मक रूप से लिखे गये हैं।

वास्तव में बीसवीं शदी के इन प्रारम्भिक दशकों में पाश्चात्य विद्वानों ने भारत के इतिहास का बड़ा कल्याण किया। १९वीं शदी के मध्य में ही अँग्रेजों ने पंजाब और हिमाचल के इन क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। अतएव उत्तम एवं सरल प्रशासन के लिए यहाँ के भौगोलिक तथा प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन जितना आवश्यक था उससे अधिक यहाँ के जन-जीवन का ज्ञान तथा लोगों के स्वभाव और उनके प्राचीन कृत्यों तथा रीति-रिवाजों को जानना भी अनिवार्य था। इसीलिए, इन क्षेत्रों के इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति का अध्ययन क्रमवद्ध तरीके से किया गया। इनमें कुछ ने प्रशासन की सुविधा के लिए ऐसा किया, तो कुछ को भारत की संस्कृति, धर्म और दर्शन ने आकृष्ट किया। कुछ ने अपने विद्वान एवं जिज्ञासु स्वभाव के कारण यहाँ की कला एवं संस्कृति में रुचि ली। फागेल एक सरकारी अफसर था, जिसे इस क्षेत्र के पुरातत्व एवं इतिहास के अध्ययन का कार्य सौंपा गया था। जनरल कनिंघम भी केन्द्रीय सरकार द्वारा खोले गये पुरातात्विक सर्वेक्षण से सम्बन्धित थे। पं० हीरानन्द शास्त्री भी इसी में कार्य कर रहे थे। फिर भी, इनमें नौकरी के अतिरिक्त अध्ययन, शोध तथा लेखन का शौक था; अतएव उनके कार्य बड़े ही ठोस, विद्वतापूर्ण एवं मौलिक है और आधुनिक काल में हम—जैसे इतिहासकारों के लिए पथ-प्रदर्शक ही नहीं वरन् अत्यन्त सहायक और प्रेरणा के स्रोत भी हैं।

इतिहासकारों की इस पीढ़ी के बाद बीसवीं ई० के लिए हिमाचल से सम्बन्धित इतिहास ग्रन्थों के लगभग न लिखे जाने या कम लिखे जाने का काल आया, परन्तु १९५५ ई० में हरमन गोएट्ज का विद्वतापूर्ण लघुग्रन्थ अर्ली उडेन टेम्पुल्स आफ चम्बा (१९५५ ई०) प्रकाशित हुआ, जिसमें चम्बा-क्षेत्र के भवन-निर्माण कला पर प्रचुर प्रकाश डाला गया। यह एक शोध प्रबन्ध है, जिसमें पहली बार हिमाचल संस्कृति को प्राचीन भारत के इतिहास की प्रमुख धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया। कुषाण, गुप्त और प्रतिहार कालीन भारत की सांस्कृतिक धाराओं ने किस

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

तरह हिमाचल की इन पर्वतीय वादियों में पदार्पण किया, इस ग्रन्थ के पढ़ने से ज्ञात होता है। लेकिन यह हिमाचल के एक क्षेत्र-विशेष के एक पक्ष को छूता है। ऐसे ही अनेक ग्रन्थ लिखे जाने चाहिए थे, लेकिन ऐसा क्यों नहीं हुआ, यह आश्चर्य की बात है।

इसके पश्चात् इस क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन ने भ्रमण किया और किन्नौर से सम्बन्धित अपने यात्रा-विवरण में इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति से सम्बन्धित अपने तर्कपूर्ण विचारों को व्यक्त किया। इस सम्बन्ध में उनकी हिन्दी में लिखी किन्नर देश अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसी दशक में कार्ल खण्डेलवाल की अमूल्य पुस्तक 'पहाड़ी मिनियेचर' लिखी गई, जिससे यहाँ की कला-निधि पर अत्यधिक और प्रामाणिक प्रकाश पड़ा।

इधर पिछले दस वर्षों में भी हिमाचल से सम्बन्धित कई पुस्तकें लिखी गई है, जिनमें कांगड़ा तथा बसोहली पर अधिक प्रकाश डाला गया है। ऐसे लेखकों में डा० मोहेन्द्र सिंह रान्धावा का नाम लिया जाना जरूरी है। उन्होंने इस क्षेत्र का समय-समय पर भ्रमण किया और अपने लेखों में यहाँ की कला पर काफी सीमा तक प्रकाश डाला। इसी सिलसिले में मदन जीत सिंह द्वारा लिखित हिमालयन आर्ट भी उल्लेखनीय है। परन्तु इन पुस्तकों को हम इतिहास-ग्रन्थ नहीं मानेंगे। ये समय-समय पर लिखे गये यात्रा-विवरण और सर्व साधारण के लिए प्रस्तुत पठनीय पुस्तकें हैं, जिनकी उपयोगिता हिमाचल से सम्बन्धित साहित्य की कमी के कारण अधिक है। इनसे जहाँ एक ओर इस क्षेत्र के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं मिलती है, वहीं वे दूसरी ओर यहाँ की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर की ओर संकेत करती हैं, जो इन पर्वतीय घाटियो में पहाड़ों के बीच जनमान्तर से सुरक्षित संजोई हुई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सर्व साधारण के समक्ष प्रस्तुत करने का एक छोटा सा प्रयत्न है। इसमें मैंने अनेक स्रोतों से मदद ली है, जिनका विवरण अगले अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के लिखने में मैंने मूलस्रोतों पर अधिक ध्यान दिया है। विशेषकर पुरातात्विक स्रोत इस दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। भारत के प्राचीन साहित्य में हिमाचल-क्षेत्र का बहुविध वर्णन मिलता है। पुराकथाओं तथा दन्तकथाओं को भी अत्र-तत्र उपयोग में लाया गया है। अन्य आधुनिक इतिहासकारों एवं पुरातत्वविदों के शोधकार्यों का भी मैंने साभार लाभ उठाया है। वैसे यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि प्राचीन इतिहास लिखने में ऐतिहासिक तथ्यों की प्रायः कमी है, अतः संस्कृति के विकास के लिए जिम्मेदार आधारभूत अनुमानों का कुछ हद तक सहारा लेना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पड़ता है। इतिहास-लेखन की इस लेखन-शैली का इसमें भी प्रयोग किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में मैंने प्राचीन इतिहास लेखन-प्रणाली को संक्षेप में लिखा है और मूलस्रोतों की प्रकृति और महत्व पर थोड़ा-सा प्रकाश डाला है।

इस पुस्तक में कुल पाँच अध्याय हैं, जिनके कई वर्ण्य-विषय अनेक प्रकार के हैं। प्रथम परिच्छेद में इस प्रदेश के प्राकृतिक वातारण, मानवभूगोल तथा प्रमुख प्राचीन जातियों का उल्लेख किया गया है। दूसरे परिच्छेद में उन मूल स्रोतों की व्याख्या की गई है, जिनके आधार पर मैंने यह प्रयास किया है। तीसरे परिच्छेद में न केवल राजनैतिक इतिहास का वर्णन है, वरन् यहाँ के सांस्कृतिक विकास का ऐतिहासिक सिंहावलोकन भी प्रस्तुत किया गया है। चौथे तथा पाँचवें परिच्छेदों में इस क्षेत्र में विकसित धर्मों के इतिहास का उल्लेख किया गया है। छठें तथा सातवें परिच्छेदों में इस क्षेत्र में विकसित संस्कृति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है, जिसे मैंने शिक्षा, लिपि, भाषा, साहित्य, राजपद्धति, प्रशासन, समाज, अर्थ-व्यवस्था, नगर तथा नगर-जीवन, आदि शीर्षकों में देखा है। अन्तिम परिच्छेद में पूर्ण शोध का सारांश दिया गया है और इस क्षेत्र में विकसित ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का संक्षिप्त वर्णन है, जिसमें सम्पूर्ण भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की धरोहर में उनके विविध योगदान का उल्लेख है।

यह पुस्तक मेरे कई वर्षों के शोध का फल है। हिमाचल के प्राचीन इतिहास, धर्म एवं संस्कृति को हर प्रकार के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना इसके प्रणयन का प्रमुख ध्येय है। सम्पूर्ण भारत में हिमाचल प्रदेश की इन ऊँची पर्वतीय शृङ्खलाओं और नीची वादियों का प्राचीन काल में स्थान और भारतीय संस्कृति में उनके योग-दान की एक ऐतिहासिक समीक्षा करना हमारा लक्ष्य है। ऐसी कठिन जलवायु और दुर्गम घाटियों में यहाँ के निवासियों की जीवन-शैली, उनका रहन सहन, प्रशासन, धर्म तथा उनकी अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों का एक विवेचनात्मक विवरण प्रस्तुत करना हमारा ध्येय है। एशिया में इस प्रदेश की महत्वपूर्ण स्थिति की ओर संकेत करना भी हमारा उद्देश्य है। इस क्षेत्र में क्यों और कैसे संस्कृति का जन्म और विकास हुआ है और देश की प्रमुख राजनैतिक और सांस्कृतिक धाराओं से यह क्षेत्र कैसे निरन्तर बँधा रहा है—आदि ऐसे प्रश्न हैं, जो पुस्तक के लेखन में कारण और प्रोत्साहन के स्रोत रहे हैं।

यह पुस्तक उस अत्याधुनिक फैशन में लिखी गई है, जिसमें क्षेत्रीय इतिहास और संस्कृति पर विशद रूप से विचार किया जाता है। हिमाचल प्रदेश, जो ब्रिटिश काल में रेजिडेन्ट द्वारा भारत सरकार के अधीन था, अब भारतीय गणराज्य का

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

एक राज्य है। भारत के अन्य अनेक भागों की तरह यह भी अपनी सांस्कृतिक धरोहर में बड़ा धनी है। इसका इतिहास प्रायः अन्य भागों से अधिक प्राचीन है, क्योंकि भारत का सबसे प्राचीन प्रागैतिहासिक मानव इसी क्षेत्र में पैदा हुआ था। यह क्षेत्र अपने भौगोलिक और पर्वतीय वातावरण के कारण अनेक जातियों का अद्भुत और उनकी संस्कृतियों का अजीब संगमस्थल एवं शरण-स्थान रहा है। इसकी सीमान्ती स्थिति भारत के अन्य भागों से अधिक कीमती रही है, अतएव केन्द्रीय सरकार की दृष्टि में इस क्षेत्र का इतिहास में एक अद्वितीय स्थान रहा है। इन्हीं कारणों से इस क्षेत्र का विविध प्रकार से अध्ययन आवश्यक है। इससे न केवल इस क्षेत्र की संस्कृति और उसके व्यक्तित्व को समझने में मदद मिलेगी, वरन् इससे यहाँ की आर्थिक विषमताओं पर भी प्रकाश पड़ेगा और इस क्षेत्र का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व सही रूप में समझा जा सकेगा।

इस पुस्तक के लिखने में शिमला सचिवालय के पुस्तकालयाध्यक्ष मियाँ गोवर्धन सिंह जी ने मेरी बड़ी सहायता की है। उनकी कृपा से पूर्व लेखकों की अप्राप्य कृतियाँ देख सका हूँ। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। इंस्टीट्यूट आफ एडवांस स्टडी, शिमला का ऋणी हूँ, क्योंकि यहाँ के पुस्तकालय में कुछ प्राचीन और अर्वाचीन शोध पत्रिकाएं पढ़ने की सुविधा मिली है। पुरातत्व विभाग, नई दिल्ली का अनुग्रहीत हूँ, क्योंकि इसके पुस्तकालय का समृद्ध भण्डार मेरे अध्ययन और शोध-कार्य में सदैव सहायक रहा है। म्युनिसिपल लाइब्रेरी, शिमला और हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय पुस्तकालय के कर्मचारियों का मैं ऋणी हूँ, जिन्होंने पुस्तक लिखने में कुछ हद तक मेरी मदद की है।

यह पुस्तक पाठक को एक वृहद् विषय में प्रवेश करने में मदद करेगी, ऐसा हमारा विश्वास है। वैसे तो इसका प्रत्येक विषय शोध के लिए उपयुक्त है। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में मैंने अपना कार्य-भार जब से ग्रहण किया है, तभी से अपने शोध छात्रों को इस विषय पर लिखने के लिए प्रेरित किया है। परिणामतः कुल्लू की कला और संस्कृति पर एक शोध प्रबन्ध लिखा गया है, जो पी० एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। एम० फिल० के कुछ छात्र यहाँ की मूर्ति-कला, धर्म और मूर्ति-शास्त्र पर काम कर चुके हैं, जो बड़े महत्वपूर्ण हैं। आशा है कि ये सभी लिखित या योजित ग्रंथ कभी प्रकाशित हो सकेंगे और हिमाचल की सांस्कृतिक धरोहर विस्तार से हमारे पाठकों के समक्ष आ सकेगी।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन लोगों ने मेरी सहायता की है, मैं उनका आभारी हूँ। श्रीमती कामिनी गुप्त ने प्रकाशन में तथा श्री नरेशकुकार भार्गव ने मुद्रण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में मेरी सहायता की है। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। श्री राजेन्द्र जी ने पुस्तक छपवाने में मुझे प्रोत्साहित किया है। हम उनके कृतज्ञ हैं। मेरी पुत्रियों ने टङ्कित और मुद्रित प्रतियों को मिलाने में मदद की है, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं। पुस्तक छपते समय लेखक द्वारा प्रूफ न पढ़े जाने के कारण कुछ मुद्रण-सम्बन्धी गल्तियाँ रह गई हैं, परन्तु पाठकों को इनसे कोई अड़चन न होगी, ऐसी आशा है। फिर भी उनकी सहायता के लिए अन्त में शुद्धि-पत्र जोड़ दिया गया है।

यह पुस्तक हर प्रकार के पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों के शौकीन पाठक भी इसका लाभ उठा सकेंगे, ऐसी आशा है, क्योंकि पुस्तक-सूची और सन्दर्भ तथा टिप्पणियाँ अंग्रेजी में लिखी गई हैं। चित्रों में टिप्पणियाँ भी अंग्रेजी में लिखी हैं। अतः हमारा विश्वास है कि हिन्दी न जानने वाले भी, यदि हिमाचल के इतिहास, धर्म और संस्कृति के ज्ञानार्जन में रुचि रखते हैं, इसे उपयोग में ला सकते हैं।

डॉ० यशवन्त सिंह परमार का मैं ऋणी हूँ। इन्होंने अपने निबन्ध को प्राक्कथन के रूप में प्रकाशित करने की अनुमति देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है। डॉ० लल्लन जी गोपाल ने प्रस्तावना लिखकर पुस्तक को सजाया है। इसके लिए मैं उनका अभारी हूँ।

लाο प्रο पाण्डेय

शिमला
२८, जनवरी, १९८१

———

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 1

Buddha (Bronze) Duwang, Tabo Monastery
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 2

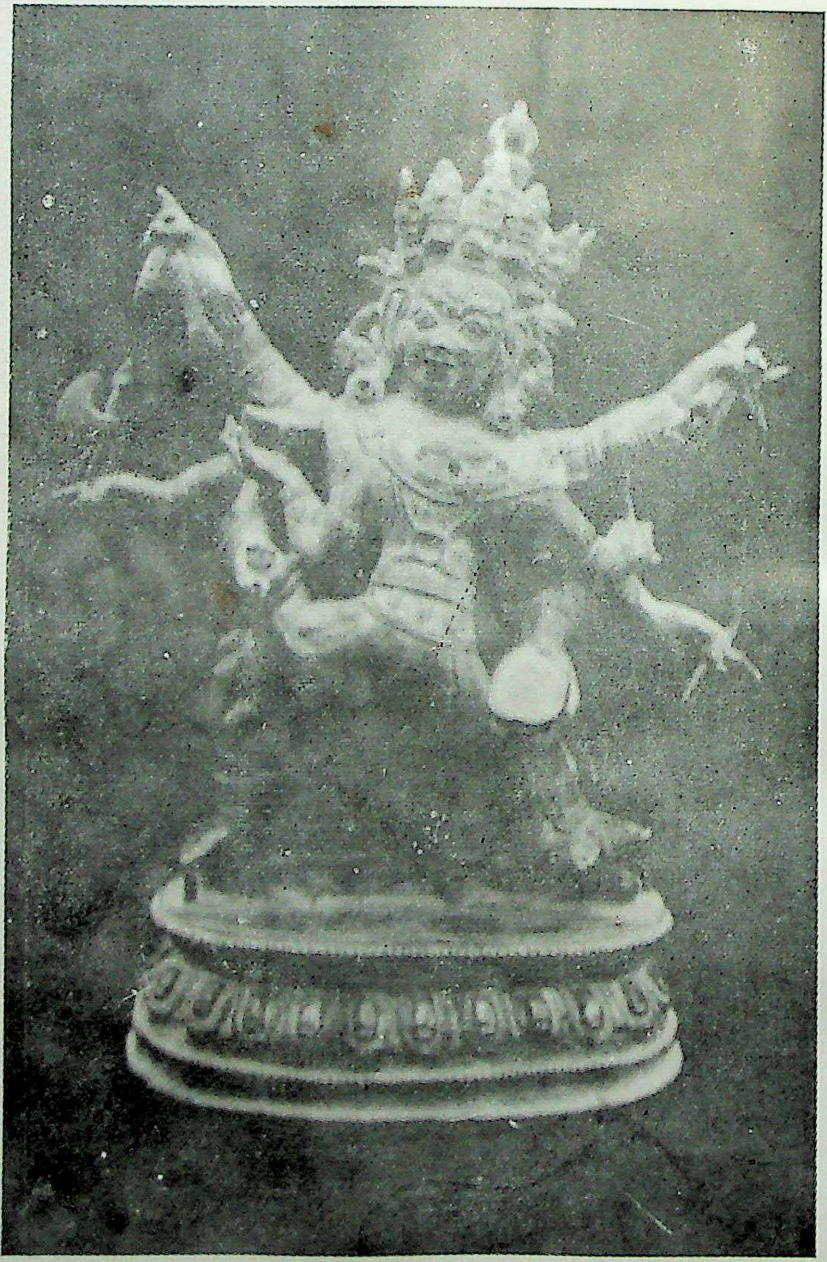

Vajradhara, (Mahakala ?) (Bronze) Duwang, Tabo Monastery
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 3

Kartikeya, Baijanatha Temple, Kangra
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 4

Dikpalas, Rangpur temple (Door jamb), Bilaspur
(Courtesy, State Museum, Simla)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 5

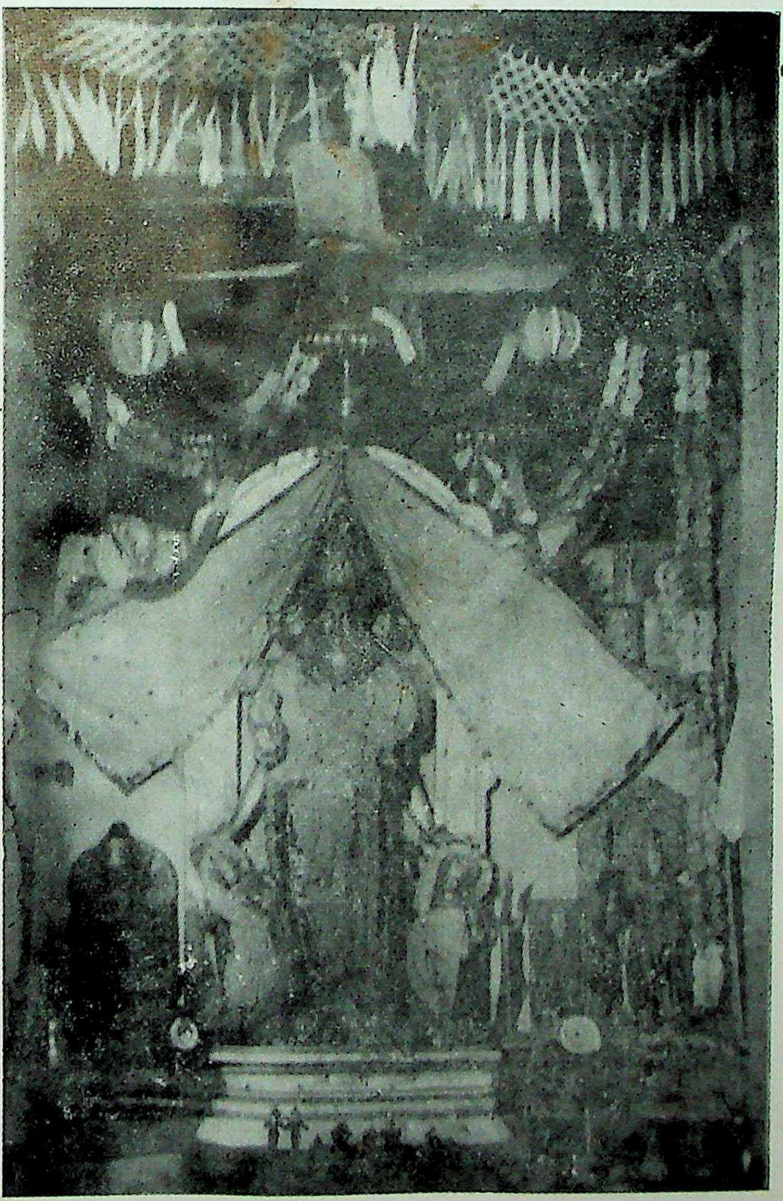

Visnu, Hari Rai temple, Chamba
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 6

Visnu (Garudasana), Chamba
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 7

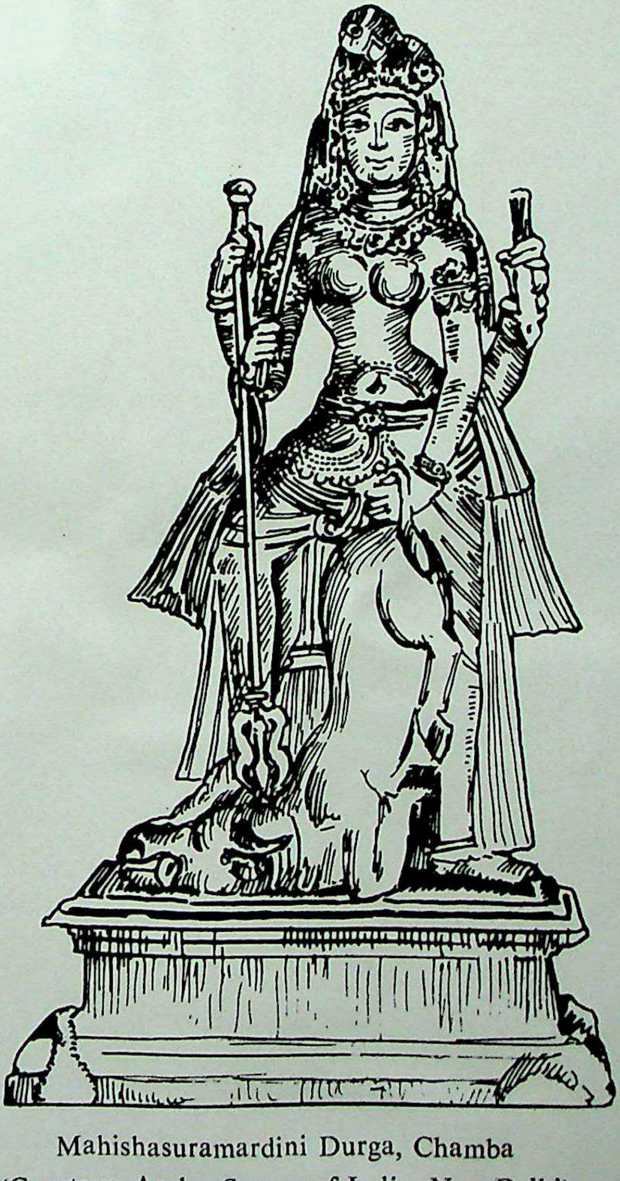

Mahishasuramardini Durga, Chamba
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 8

Mahishasuramardini, Wooden Carving in Thakurdvara temple, Nirmand (Kulu)
(Courtesy, State Museum, Simla)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 9

Erotic scene, Bansi Gopal temple, Chamba
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

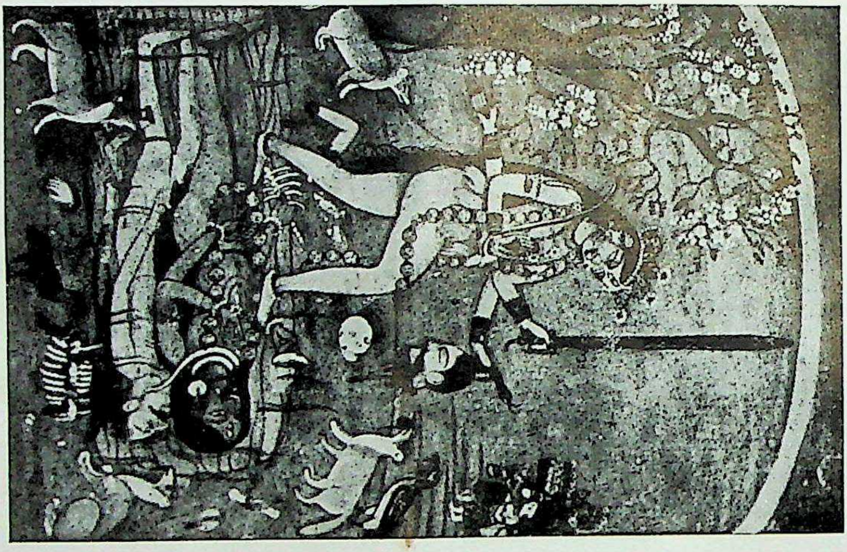

Fig. 10

Kali, (Tantric Theme), Chamba Painting
(Courtesy, State Museum, Simla)

Fig. 12

Ganesa, (Bronze), Chamba,
(Courtesy, National Museum, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 11

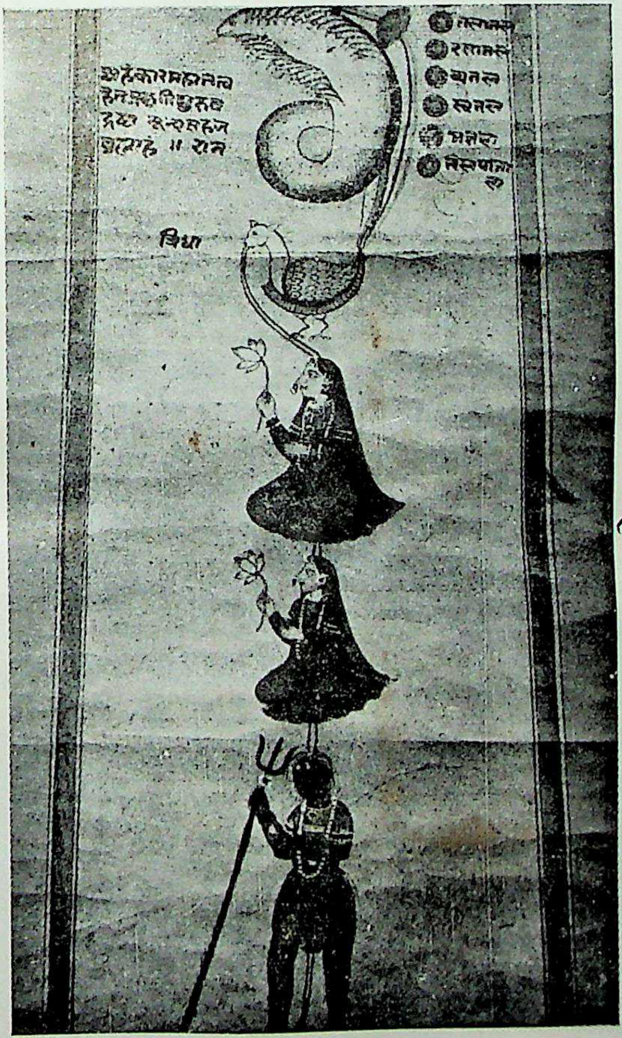

Tantric Theme on a Chamba Scroll,
(Courtesy, State Museum, Simla)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

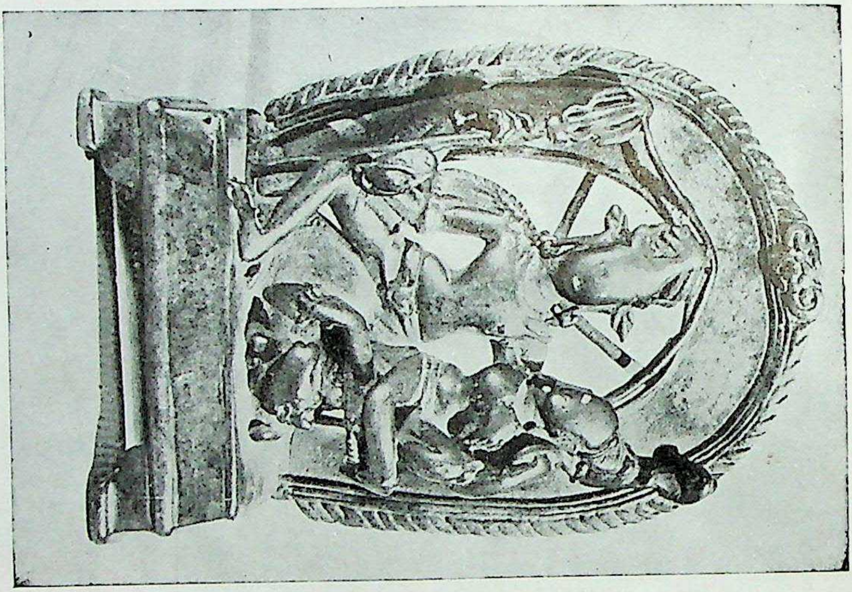

Fig. 13

Umamahesvar (Bronze) 10 th C. A. D.
Courtesy, (National Museum, New Delhi)

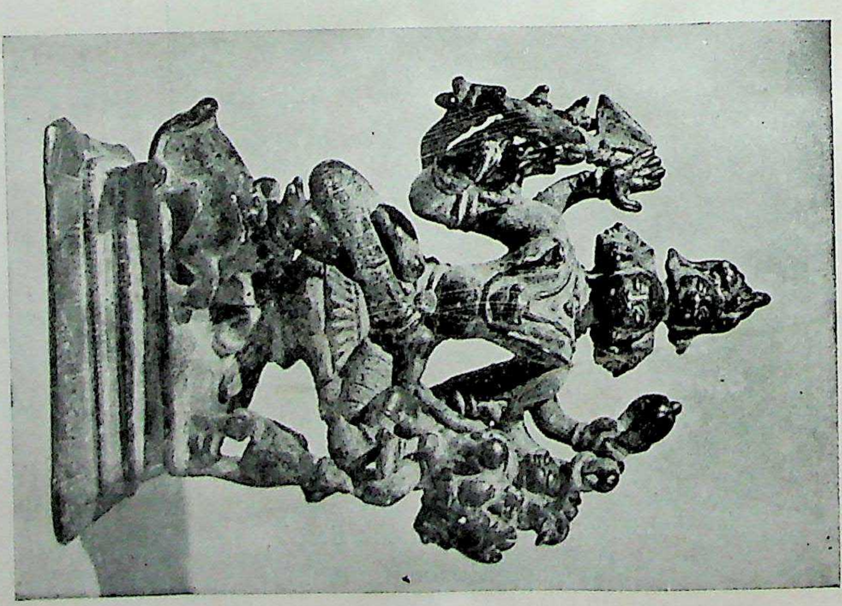

Fig. 14

Sadasiva (Bronze) 12 th C. A, D.
(Courtesy, National Museum, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 15

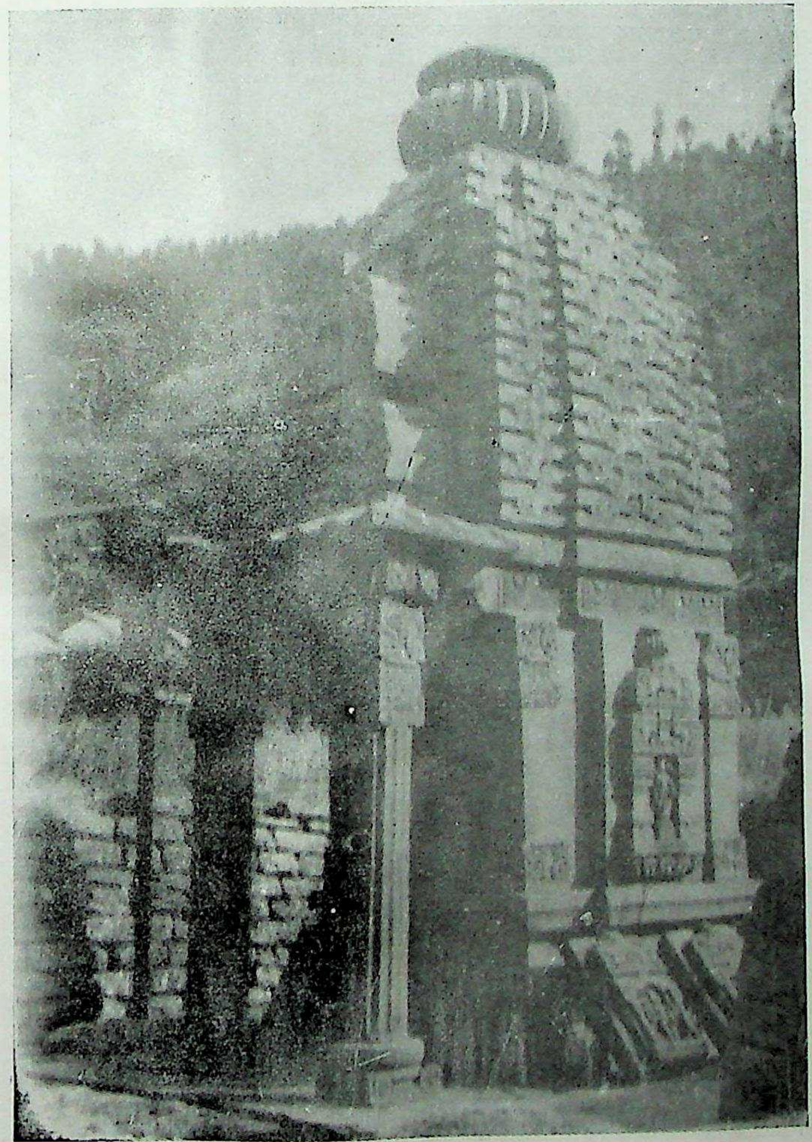

Jagatsukhha (miniature) temple, Kulu
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 16

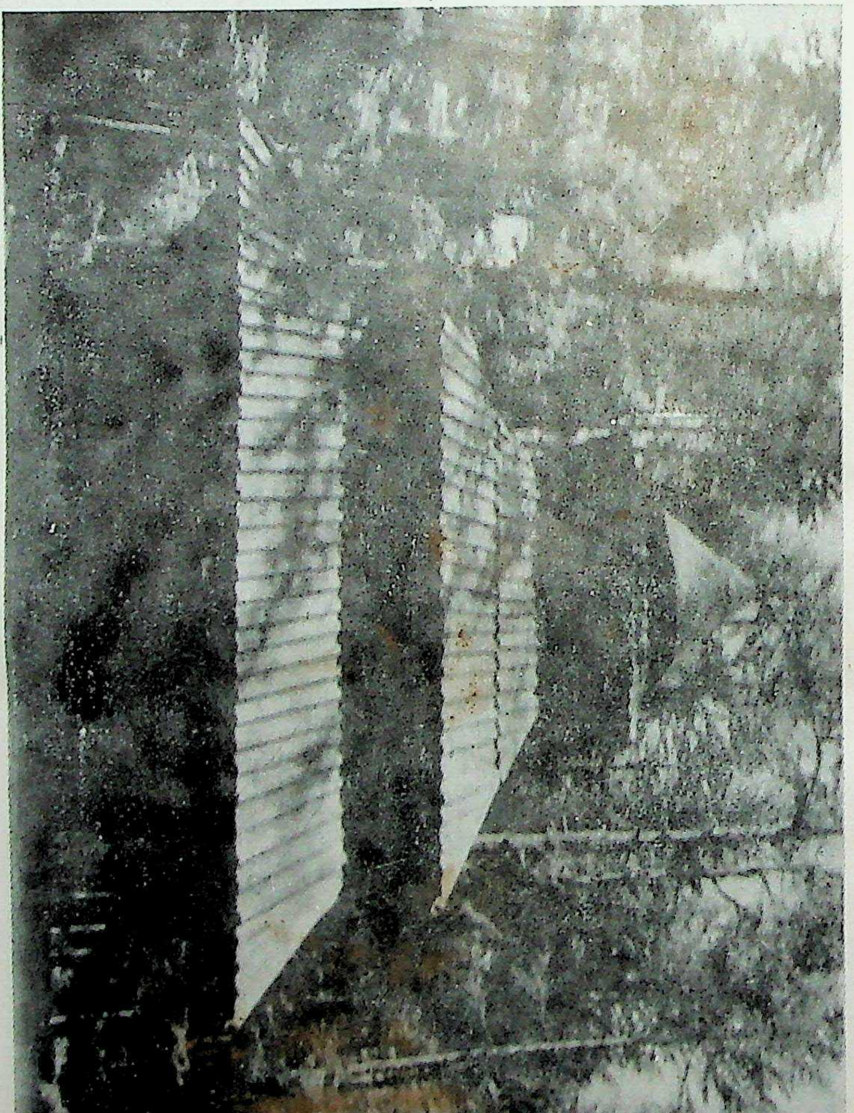

Hidimba Devi Temple, (wooden), Manali
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 17

Wooden Temple of Devi, at Kao, in Mandi
(Courtesy, State Museum, Simla)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 18

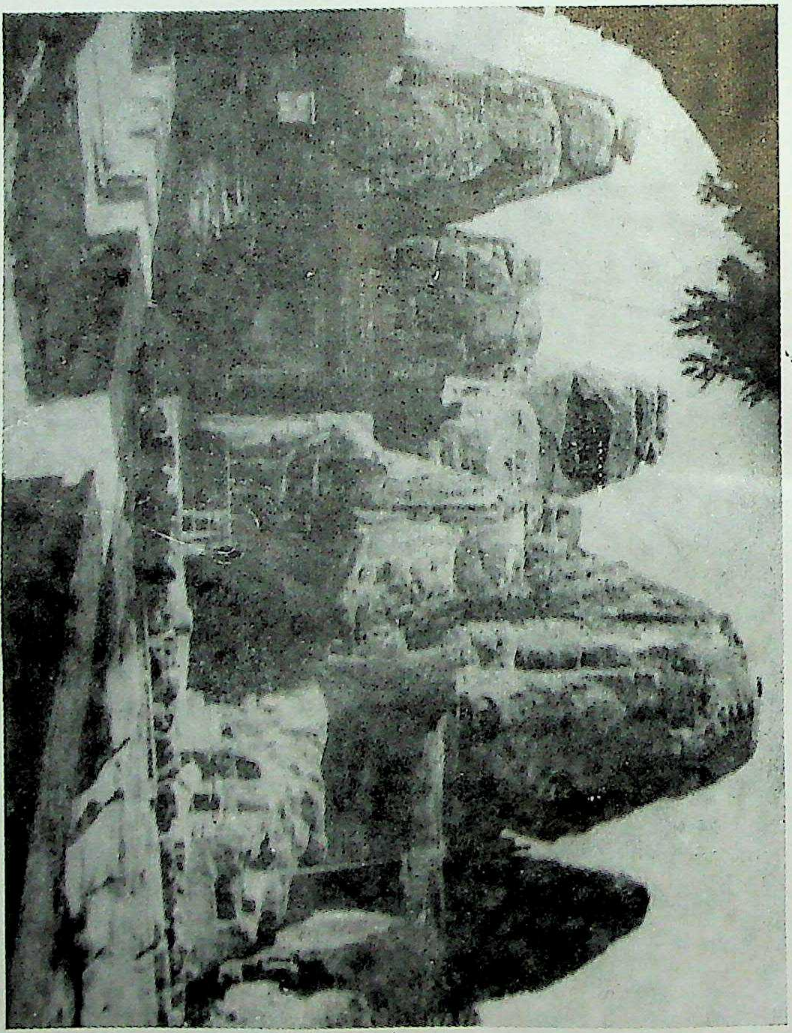

Rock-cut Temple, Masrur, Kangra
(Courtesy, Arch Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 19

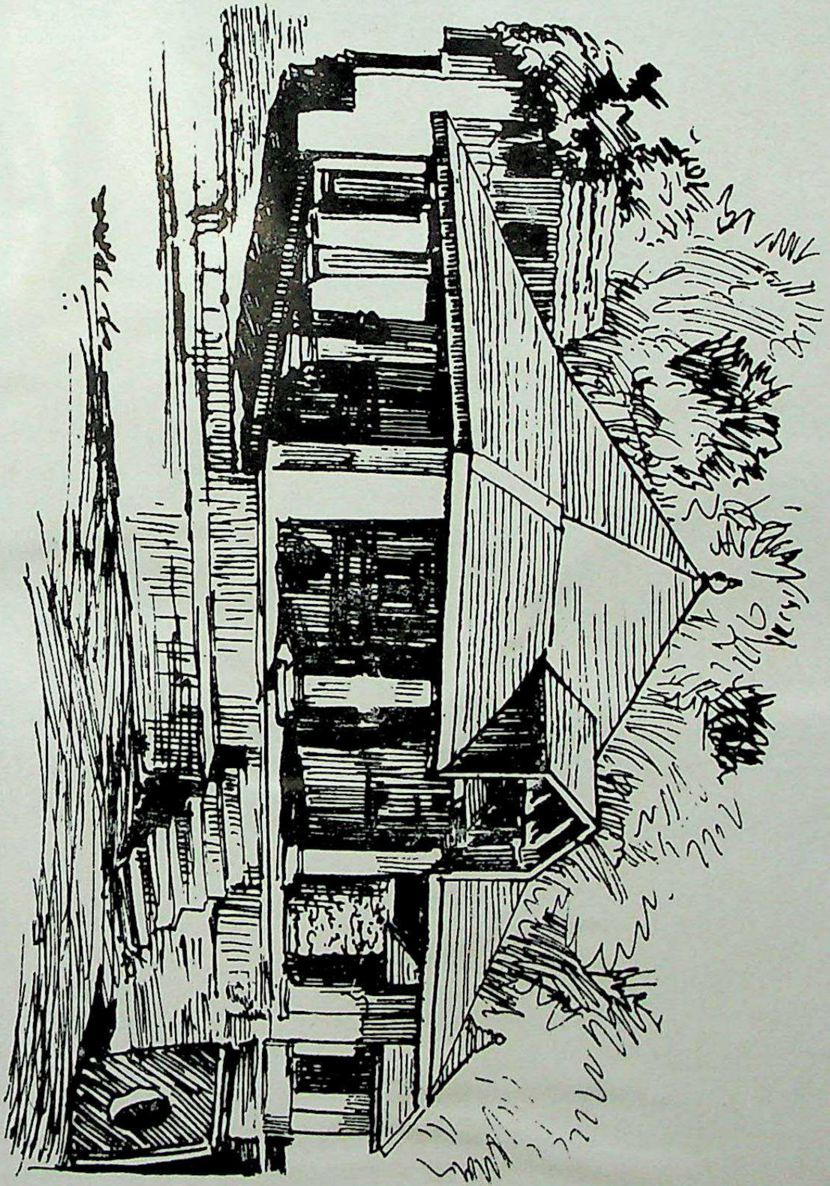

Temple of Chandrasekhara at Saho, Chamba
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 20

Radhakrishna, Basohli Painting
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 21

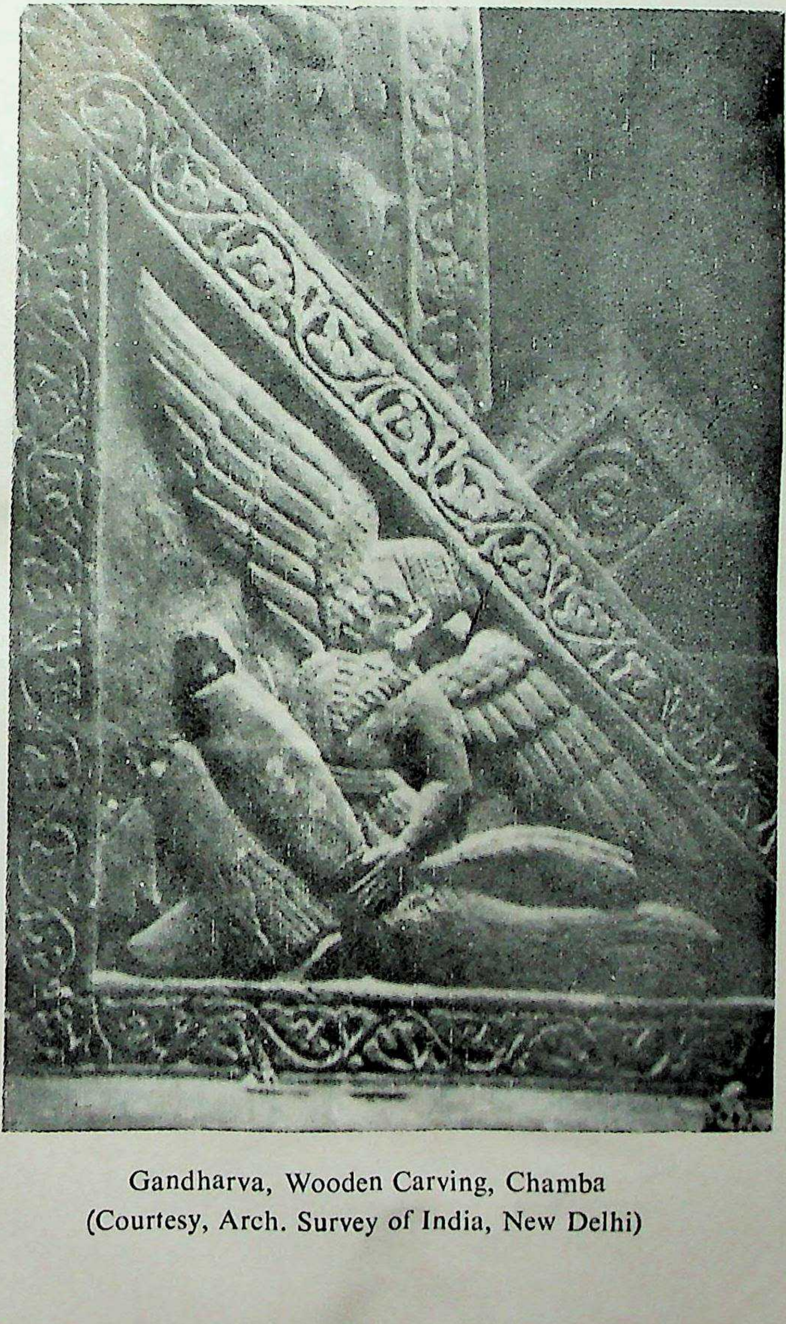

Gandharva, Wooden Carving, Chamba
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 22

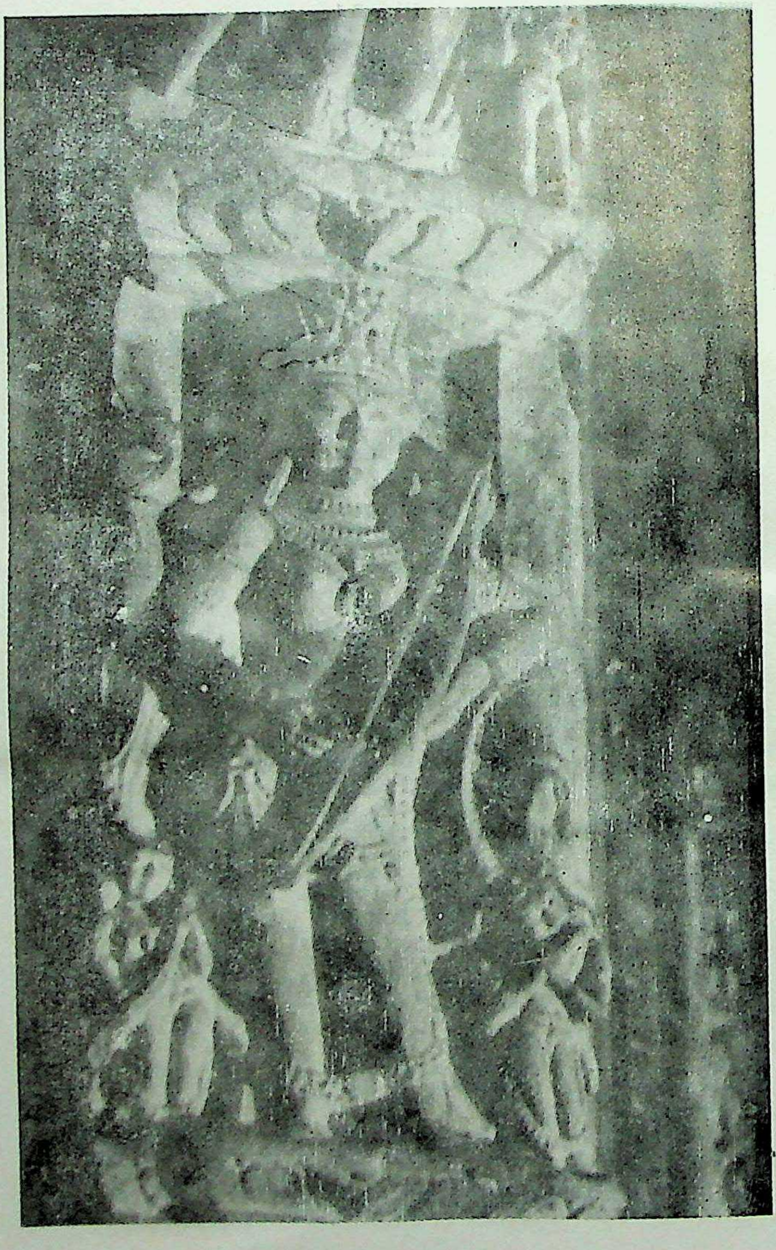

Lady (Kinnari) playing with harp, Baijanatha
(Courtesy, Arch. Survey of India, New Delhi)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig 23

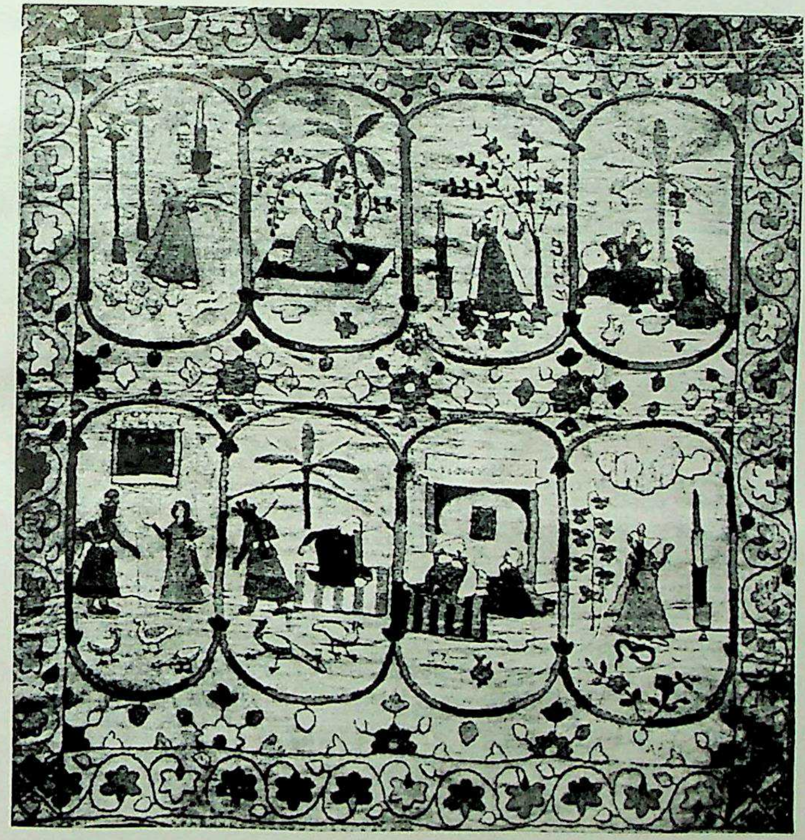

Chamba Rumal, Ashtanayika-theme
(Courtesy, State Museum, Simla)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Fig. 24

(a) Kuninda Coins
(Courtesy, State Museum, Simla)

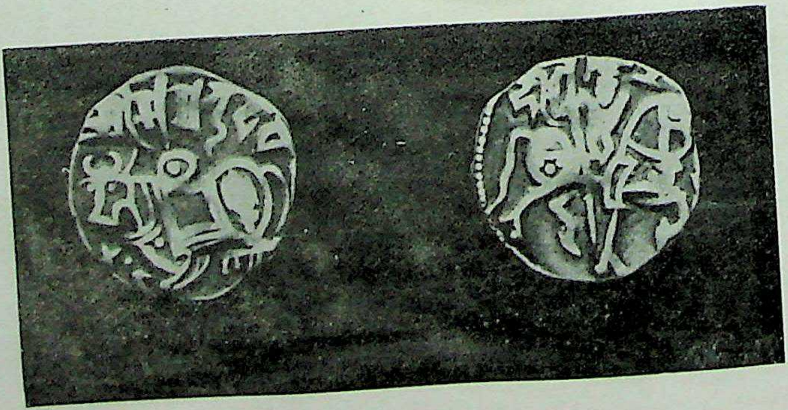

(b) Coin of Samantadeva
(Courtesy, State Museum, Simla)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

1

प्रथम अध्याय

धरती और जन-समुदाय

धरती—

हिमाचल प्रदेश पश्चिमी हिमालय पर्वत की गोद में बसा[1] है। इसमें उसकी शिवालिक पहाड़ियाँ स्थित हैं और चिनाब, रावी, व्यास, सतलज और यमुना नदियाँ बहती हैं। इन नदियों का उद्‌गम-स्थल इसी प्रदेश में स्थित है और जहाँ वे मैदान में आकर गिरती हैं वहीं हिमाचल की सीमा का अन्त होता है। सम्पूर्ण भाग पर्वतीय है, जिसमें पर्वत की अनेक शृङ्खलायें और घाटियाँ आबाद हैं। इन शृङ्खलाओं को शिवालिक पहाड़ियों का विभिन्न भाग माना जाता है। इनमें धौलाधार तथा चूड़-धार आदि शृंखलायें अधिक प्रसिद्ध हैं, जो कहीं ४००० फीट ऊँची है तो कहीं २० या २२००० फीट। इन पर्वत-शृङ्खलाओं से घिरी कई घाटियाँ हैं, जिनमें लाहौल, स्पिति, किन्नौर, कुलू, काँगड़ा और चम्बा के क्षेत्र स्थित हैं। बिलासपुर, शिमला, मण्डी, सोलन तथा सिरमौर आदि जिले पर्वत और छोटी-छोटी घाटियों के ऐसे क्षेत्र हैं, जो कम ऊँचे हैं और जहाँ की घाटियाँ कम चौड़ी और कम लम्बी हैं।

यह प्रदेश उत्तर-पश्चिम और पूर्व के अधिकांश भागों में पहाड़ी क्षेत्रों से घिरा है। इसके पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण में मैदानी भाग स्थित हैं। उत्तर में इसकी सीमा पर जम्मू और कश्मीर, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में पंजाब, दक्षिण में हरियाणा, दक्षिण-पूर्व में उत्तर प्रदेश और पूर्व में तिब्बत से इसकी सीमायें निर्धा-रित होती हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हिमाचल के उत्तर-पश्चिम भाग में प्रधानतः तीन पर्वत-श्रेणियाँ हैं। ऊपर से नीचे की ओर देखने पर जस्कर पर्वत-श्रेणी दिखती[२] है, जिसे प्रमुख हिमालय का विस्तार माना जाता है। यही हिमाचल को कश्मीर और लद्दाख से अलग करती है और इसके एक तरफ चिनाव नदी बहती है, जिसे उद्गम की तरफ चन्द्रभागा कहते हैं। यह चम्बा के एक किनारे को छूती हुई आगे बढ़ती है। चन्द्रभागा वास्तव में दो अलग-अलग नदियाँ हैं, जो इस प्रदेश के दूसरे भाग लाहौल में बहती हैं।

इसके बाद नीचे की तरफ दूसरी ऊँची पहाड़ी दिखती है, जिसे मध्य हिमालय पहाड़ी या पाँगी पर्वत श्रेणी नाम दिया गया[३] है। चिनाव नदी पश्चिम-उत्तर में इस पहाड़ी और उपर्युक्त पहाड़ी के बीच बहती है। नीचे हिमाचल-क्षेत्र में यह पहाड़ दक्षिण-पूर्व को तरफ नीचा होता जाता है। इसो क्षेत्र ने रावी नदी बहती है। इसकी घाटी एक सुहावने और उपजाऊ क्षेत्र का निर्माण करती है, जिसे चम्बा का नाम दिया गया है। इसके एक तरफ धौलाधार की पहाड़ी विद्यमान है, जिसे इस क्षेत्र की तीसरी प्रधान पर्वत श्रेणी मानते हैं। यह यहाँ का काफी ऊँची पहाड़ है, जिसकी चोटियाँ वर्ष में कई महीने बर्फ से ढकी रहती हैं। सम्भवतः इसी कारण इसे धौलाधार (धवल+आधार) नाम दिया गया है। इसके दूसरी तरफ हिमाचल की दूसरी प्रधान नदी व्यास बहती है, जिसके मार्ग पर ऊँचे भागों में कुल्लू का क्षेत्र आवाद है। वहाँ वह दो पहाड़ियों के बीच एक चौड़ी घाटी का निर्माण करती है। इसी नदी के किनारे मंडी का कुछ भाग और काँगड़ा के क्षेत्र आबाद है, जो पैदावार और व्यापार की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

दूसरी प्रमुख पर्वत-श्रेणी चूड़धार है, जो महासू-सिरमौर के क्षेत्रों में उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर फैला हुआ[४] है। इसे कुछ विद्वानों ने संसार की सर्वोत्तम पहाड़ियों में से एक माना है। यह वर्ष में कई महीने बर्फ से ढकी रहती है। इसके दोनों किनारों से छोटी-छोटी पहाड़ियाँ और नदियाँ निकलती हैं। यह वह पर्वत-श्रेणी है, जो हिमाचल की ही नहीं वरन् उत्तर भारत की प्रमुख नदियों का मार्ग निर्धारित करती है। यह एक तरफ टौन्स और यमुना को पूर्व में बहने के लिए मजबूर करती है और दूसरी तरफ सतलज को पश्चिम में जाने के लिए बाध्य करती है। इसकी महत्ता इस बात से लगाई जा सकती है कि अगर यह पहाड़ी न होती तो यमुना शायद अरब की खाड़ी में गिरती और सतलज आकर यमुना में मिलती। इसी के कारण सम्भवतः प्राचीन सरस्वती और घाघरा नदियों को पूरा पानी न मिला, जिसके परिणामस्वरूप राजस्थान में रेगिस्तानी क्षेत्र उत्पन्न हुआ। इस तरह भारत के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इतिहास एवं उसकी अर्थ-व्यवस्था पर इस पर्वत-माला का महान प्रभाव माना जा सकता है।

भौगोलिक दृष्टि से व्यास नदी और यमुना नदियों के बीच स्थित हिमाचल प्रदेश का निचला भाग प्रायः एक-जेसा है। यहाँ मेरा मतलब मैदानों से लगे हुए हिमाचल के उस भाग से है, जो देखने में पहाड़ी है, ऊँचा-नोचा है, और कम ऊँची पर्वतीय श्रेणियों तथा घाटियों से भरा हुआ है। इसी क्षेत्र में सतलज नदी बहती है, जो किन्नोर की पहाड़ियों से निकल कर मण्डी और कुल्लू की सीमा निर्धारित करती हुई और बिलासपुर जिले के बीच से गुजरती हुई पंजाब में आकर मैदान से मिलती है। इस क्षेत्र में स्थित दूसरी प्रमुख नदी गिरि है, जो चूड़धार पर्वत-श्रेणी से निकल कर और पूर्व में जाकर यमुना नदी में मिलती है। यह नदी सिरमौर-क्षेत्र की प्रधान नदी है, जो पूरे जिले को प्रायः दो समान भागों में बाँटती है। इसके द्वारा निर्मित घाटी को कायर्दादून कहते हैं, जिसका पूर्वी भाग अत्यन्त मैदानी है। यह घाटी अपने सुहावने वातावरण के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान[५] है। सिरमौर जिले के उत्तर-पूर्व में या यों कहिए कि हिमाचल की पूर्वी सीमा पर कुछ दूर बहने वाली दूसरी प्रमुख नदी टौन्स है, जो किन्नौर की पहाड़ियों से निकलकर और लगभग ९२ मील चलकर यमुना नदी में आकर मिलती है। इस तरह ये नदियाँ हिमाचल के दक्षिण-पूर्वी भाग में सुन्दर जल-व्यवस्था का प्रबन्ध करती है और साथ ही साथ यातायात में भी सुविधा प्रदान करती हैं। यमुना नदी उत्तर भारत के विशाल मैदानी भाग से मिलाकर एक तरफ इसे भारत की प्रमुख राजनैतिक एवं सांस्कृतिक धारा से जोड़ती[६] है, और दूसरी तरफ वह उत्तर प्रदेश के पर्वतीय भाग से इसे भौगोलिक रूप से अलग करती है।

हिमाचल के उत्तर-पूर्व में किन्नौर का पर्वतीय भाग स्थित[७] है। इसका सम्पूर्ण भाग पहाड़ी है, परन्तु दक्षिणी भाग थोड़ा कम ऊँचा होने के कारण आर्थिक दृष्टि से अधिक उपजाऊ है। सतलज नदी इसी भाग से बहकर वहाँ एक सुन्दर घाटी का निर्माण करती है और जल का प्रबन्ध करके उसे अधिक उपयोगी बनाती है। किन्नौर का शेष भाग सीमावर्ती होने के कारण हिमाचल के लिए ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत के लिए अधिक उपयोगी है। यह कुछ दूर तक तिब्बत से और कुछ दूर तक उत्तर प्रदेश के पर्वतीय भाग से सीमा बनाता है। इससे यहाँ दोनों प्रकार के सांस्कृतिक प्रभावों के आगमन की सम्भावना बनती है। यह क्षेत्र अधिक ऊँचा होने के कारण आर्थिक दृष्टि से कठिनाई उत्पन्न करने योग्य है। कल्पा की घाटी और आस-पास की

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पर्वतीय चोटियों की तुलना यूरोप के आल्प्स पर्वत से की जाती है, क्योंकि प्राकृतिक सौन्दर्य में यह क्षेत्र उससे कम नहीं है।

लाहौल और स्पिति हिमाचल प्रदेश का दूसरा सीमान्त जिला[८] है। दक्षिण में यह कुल्लू और काँगड़ा से लगा हुआ है। इसके पूर्व में किन्नौर तथा उत्तर में लद्दाख के क्षेत्र स्थित हैं और पश्चिम में यह चम्बा से जुड़ा हुआ है। हिमालय के अन्य भागों की तरह यह भी एक पर्वतीय क्षेत्र है। पूरा जिला पहाड़ी चोटियों और घाटियों से आबाद है। यहाँ समतल भाग का एकदम अभाव है। इसमें रावी और व्यास नदियों का उद्गम-मार्ग स्थित है। इसके उत्तर में बारा लाच (१६,५०० फीट) के दर्रे से चन्द्र और भागा नदियाँ निकलती हैं और दोनों प्रायः एक-दूसरे से विपरीत दिशा में बहती हुई तन्डी नामक स्थान पर मिलकर एक संगम का निर्माण करती हैं। आगे इन्हें चन्द्रभागा या चिनाव नदी का नाम दिया जाता है।

लाहौल का उत्तरी भाग तो एकदम ऊँची-ऊँची पर्वत-शृंखलाओं से भरा है, जिनमें कुछ २१,४१५ फीट तक ऊँची हैं। सख्त चट्टानों के कारण बीसों मील तक हरियाली नहीं दिखती है। केवल दक्षिणी लाहौल का वह भाग, जहाँ नदियों की घाटियाँ हैं, हरा-भरा है। अतः यहीं कुछ हद तक कृषि हो सकती है। इस कारण यहाँ कुछ जनसंख्या पाई जाती है। यहाँ गर्मियों में काँगड़ा से चरवाहों और कुल्लू से व्यापारियों के आ जाने से कुछ दिनों के लिए रौनक आ जाती है। इसी समय यहाँ कुछ वर्षा भी होती है, अतः कुछ गाँव हरे-भरे दिखाई पड़ते हैं। कभी-कभी गर्मी में भी यहाँ वर्षा नहीं के बराबर होती है। जाड़ों में जमकर बर्फ पड़ती है, अतः पूरा जिला दिसम्बर से अप्रैल तक बर्फ से ढका रहता है।

स्पिति हिमाचल प्रदेश का दूसरा प्रमुख क्षेत्र[६] है। इसका भी सम्पूर्ण क्षेत्र पर्वतीय चोटियों और नदी-घाटियों से भरा हुआ है। इसके उत्तर में लद्दाख, पूर्व में तिब्बत, दक्षिण में शिमला जिले के बुशहर तथा रामपुर के क्षेत्र और पश्चिम में लाहौल स्थित हैं, जिसे लगभग १८,००० फीट ऊँची पर्वत-चोटियाँ इससे अलग करती हैं। इसके मध्य से स्पिति नदी बहती है, जो आगे चलकर सतलज में मिल जाती है। स्पिति में मिलने वाली पार नदी भी इसी क्षेत्र से होकर बहती है। इसाम्प और ऊपरी चन्द्र नदियों की घाटियाँ भी इसी क्षेत्र में स्थित हैं। चीन स्पिति की सहायक नदी है। यहाँ के पहाड़ बड़े ऊँचे हैं और इनमें से कुछ तो लगभग २४,००० फीट तक ऊँचे हैं। इन्हीं कारणों से यहाँ की जनसंख्या बहुत कम है। कुछ ग्राम तो १४,००० फीट की ऊँचाई पर भी मिलते हैं, जो छोटे-छोटे पठार पर स्थित हैं। यहाँ की

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

आर्थिक दशा अच्छी नहीं है क्योंकि पत्थर और चट्टान के अतिरिक्त यहाँ बहुत कम हरियाली दिखाई पड़ती है। यहाँ वर्षा का भी अभाव है और शीत ऋतु में बहुत बर्फ पड़ती है।

जन-समुदाय—ऐसे भौगोलिक वातावरण के बावजूद भी मनुष्य यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से रहने लगा था। भारत का सबसे प्राचीन मनुष्य इसी प्रदेश में निवास करता[१०] था। बाद में जब सिन्धु आदि नदियों के किनारे सभ्यता का जन्म हुआ, तब भी मानव-बस्तियाँ यहाँ सम्भवतः आबाद रहीं। आर्यों ने भी इसे अपनी कर्म-स्थली[११] चुना। भाषा-शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह मालूम होता है कि लाहौल और स्पिति आदि अत्यन्त ऊँचे और कठिन क्षेत्रों में भी आर्य रहते थे, जहाँ की सीमान्ती जनसंख्या में मंगोल नस्ल के लोगों की भी संख्या आधुनिक काल की तरह नगण्य न थी।

इस क्षेत्र में अनेक आदिम जातियाँ भी रहती[१२] थीं, जिन्हें कुछ विद्वानों ने मुण्डों के समान माना है और कुछ ने उनसे अभिन्न माना है। अन्य आदिम जातियों में कोलों, किरातों एवं निषादों को गिनाया जा सकता है, जो प्राचीनकाल से इस प्रदेश में निवास[१३] करती आई हैं। इनका वर्णन महाभारत, पुराण तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में किया गया है। बैजनाथ प्रशस्ति[१४] तथा कुछ अन्य अभिलेखों में यहाँ रहने वाली प्राचीन जाति कीर का उल्लेख मिलता है, जो काँगड़ा-क्षेत्र में निवास करती थी।

खश यहाँ की दूसरी प्रमुख और पुरानी जाति-विशेष थी, जो पूरे हिमाचल में फैली मालूम होती[१५] है। इसका विस्तार भारत के सम्पूर्ण उत्तरी सीमा-रेखा के साथ-साथ हुआ मालूम होता है। किन्नौर के प्राचीन लोगों का भी साहित्य में बहु-चर्चित वर्णन किया गया[१६] है। यहाँ की अन्य जातियों का वर्णन पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिलता[१७] है। इनका उल्लेख उस पर लिखे टीका ग्रन्थों में भी किया गया है। इनमें त्रिगर्तों, औदुम्बरों, कुलूतों तथा कुनिन्दों का वर्णन विशेष रूप से किया जाना चाहिए, क्योंकि उन्हें हम उनके कुछ सिक्कों से भी जानते[१८] हैं। वे राज जातियाँ थीं। उन्होंने समय-समय पर इस प्रदेश के कई भागों में अपने-अपने जनपदों या राज्यों की स्थापना की थी, जैसा कि आगे के वर्णन से स्पष्ट होगा।

इनमें औदुम्बरों को कुछ विद्वानों ने अनार्य जाति माना है, जिसके सम्बन्ध में विशेष प्रमाण उपस्थित करना सम्भव नहीं है। यह एक प्राचीन जाति[१९] थी, जो हिमाचल के काँगड़ा-हमीरपुर क्षेत्र में मूल रूप से निवास करती थी। इनके कार्यक्षेत्र

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में सतलज नदी से पश्चिम में स्थित मैदानी पंजाब का भी काफी भाग सम्मिलित था, जैसा कि उनके द्वारा चलाये गये सिक्कों की प्राप्ति से मालूम होता है। उनका उल्लेख पाणिनि के गणपाठ में राजन्यवर्ग में किया गया है। महाभाष्य, काशिका, महाभारत, बृहत्संहिता तथा पुराणादि अन्य अनेक ग्रन्थों में भी उनका उल्लेख मिलता है, लेकिन कहीं भी उन्हें अनार्य नहीं कहा गया है। वैसे शैवाधर्म में उनका अटूट विश्वास उन्हें सैन्धव घाटी संस्कृति के निर्माताओं से सम्बन्धित बताता है। पंजाब के मैदानी भागों में उथल-पुथल होने के कारण सैन्धव घाटी के लोगों का इन पर्वतीय क्षेत्रों में आकर रहना तर्क सम्मत लगता है। बाद में इनका विस्तार सम्भवतः चम्बा-क्षेत्र में भी हो गया। ईसवी सन् की शताब्दियों में वहाँ शैवधर्म का विस्तार हुआ। इसका श्रेय उन्हें देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

साहित्य में उदुम्बरों को ऋषि विश्वामित्र से जोड़ा गया है और उनकी उत्पत्ति उदुम्बर वृक्ष से बतलाई गई है। कालिका पुराण के अनुसार भृगु ऋषि के कहने पर विश्वामित्र की माँ ने उदुम्बर वृक्ष से लिपटने के कारण उन्हें जन्म दिया था। इसने बाद में वेदों को पढ़ा, धनुष-विद्या सीखी और अपनी तपस्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। यद्यपि वृक्ष से मानव की उत्पत्ति असम्भव है, फिर भी इससे इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इस जाति के लोगों के पूर्वजों में विश्वामित्र हुए थे। उन्होंने उनका रूप भी अपने सिक्कों पर बनवाया था। उदुम्बर नामक पेड़ों से उनके सम्पर्क का ज्ञान हमें उनके सिक्कों से भी होता है, जिन पर इस वृक्ष-विशेष का चित्र अंकित है। इससे स्पष्ट है कि ये लोग इस क्षेत्र के मूल निवासी थे, जहाँ यह वृक्ष अधिक उगता था और उनके आर्थिक जीवन में अधिक स्थान रखता था। इसी कारण वह उनका प्रतीक बन सका। यहाँ यह ध्यातव्य है कि वैदिक साहित्य में इस वृक्ष का अत्यधिक वर्णन किया गया है।

कुनिन्द यहाँ के दूसरे लोग थे, जो इस क्षेत्र में प्राचीन काल से रहते आये हैं। इनका ज्ञान हमें सहित्य[२०] और पुरातत्व[२१] दोनों स्रोतों से मिलता है। महाभारत, पुराण, और बृहत्संहिता में उनका उल्लेख है। यहाँ उन्हें कुनिन्द, कुलिन्द और कौलिन्द कहा गया है। महाभारत में वर्णन मिलता है कि अर्जुन ने इन पर विजय प्राप्त की थी। अतः यह सिद्ध है कि ये लोग इस पर्वतीय क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीन काल से रहते थे। टालमी ने भी इनका उल्लेख किया है। वह इन्हें कुलिन्देने कहता है। उसके अनुसार ये लोग हिमाचल के उस क्षेत्र में रहते थे, जहाँ से व्यास, सतलज और यमुना नदियाँ निकलती हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय कि इसी क्षेत्र में वे आदिम जातियाँ भी रहती थीं,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जिन्हें साहित्य में किन्नर कहा गया है। अतएव यह कहना तर्कसम्मत मालूम होता है कि ये दोनों एक ही जाति-विशेष थीं, जिन्हें दो अलग-अलग नामों से पुकारा जाता था। ऐसा लगता है कि ऊँचे सीमान्तो क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को किन्नर कहते थे, जिनमें मंगोलियन नस्लों के लोगों से वर्णशंकर की सम्भावना पाई जाती है। मैदानों से लगे पहाड़ी भागों में रहने वालो जाति के लोगों को कुनिन्द कहते थे। सम्भवतः इसलिए विष्णु पुराण में उन्हें "कुलिन्दोपत्यकाः" (पर्वतीय घाटियों में रहने वाले कुनिन्द) कहा गया है। इनका विस्तार सम्भवतः आर्यों में मिलने के कारण अधिक हुआ। यहाँ कुछ विद्वानों का यह मत विचारणीय लगता है कि हिमाचल की पहाड़ियों के आधुनिक कनेत लोग आदिम जाति 'तर्तरों' और आर्यों के वर्णशंकर के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं, जो वास्तव में प्राचीन कुनिन्दों के वंशज मालूम होते हैं। इनकी संख्या हिमाचल की जनसंख्या में अत्यधिक है।

प्राचीन काल में इनका निवास और कार्य-क्षेत्र सतलज नदी से लेकर पूर्व में यमुना नदी के उस पार गढ़वाल और कुमायूँ के क्षेत्रों तक विस्तृत था। असंभव नहीं कि उनका विस्तार नेपाल के पश्चिमी भागों तक भी रहा हो। कुछ भी हो, यमुना नदी की उपरली घाटी, टौन्स तथा गिरि नदियों की घाटियाँ उनकी विशेष कार्यस्थली थीं, जहाँ आधुनिक सिरमौर और किन्नौर के जिले आबाद हैं। पश्चिम में सोलन, शिमला और बिलासपुर के क्षेत्र भी उनके कार्यक्षेत्र में सम्मिलित मालूम होते हैं। इन क्षेत्रों से कुनिन्दों के भी सिक्के मिले हैं। वैसे यमुना घाटी से उनके सिक्के अत्यधिक संख्या में पाये गये हैं। वास्तव में, इन्हीं क्षेत्रों में उनका गणराज्य विस्तृत था, जिसकी राजधानी स्रुघ्न नामक स्थान पर बसाई गई थी[२२]। वह संभवतः इसी क्षेत्र में स्थित एक प्राचीन नगर था, जिसके राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रभाव में उत्तर-प्रदेश और आधुनिक हरियाणा के कुछ भाग भो सम्मलित थे।

इस क्षेत्र के अन्य लोगों में त्रिगर्तों का नाम उल्लेखनीय है, जिनका भारत के प्राचीन साहित्य में बार-बार उल्लेख किया गया[२३] है। यह शब्द जाति-विशेष का सूचक न हो कर क्षेत्र-विशेष का परिचायक है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में त्रिगर्त-षष्ठ का उल्लेख[२४] किया है, जो एक भौगोलिक ईकाई के रूप में वर्णित है। इसमें छोटे-छोटे छः लघु राज्य स्थित थे।

उस समय त्रिगर्त से वास्तव में क्या अर्थ लगाया जाता था, यह कहना कठिन है। इसका वैसे शाब्दिक अर्थ है तीन गड्ढे, तीन निचले भाग या तीन घाटियाँ। हमने पहले ही लिखा है कि हिमाचल प्रदेश मुख्य रूप से तीन नदी-घाटियों में स्थित है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इनमें रावी, व्यास और सतलज नदियाँ प्रमुख हैं, जो पाँच पहाड़ियों की सहायता से बड़ी-बड़ी तीन घाटियाँ बनाती[२५] हैं। वैसे कुछ विद्वानों ने त्रिगर्त-क्षेत्र में चिनाव नदी-घाटी को भी सम्मिलित किया है, जिसमें कश्मीर का जम्मू-क्षेत्र आबाद है। बाद के साहित्य में इस भौगोलिक इकाई में पंजाब का जलन्धर क्षेत्र और उससे लगा हुआ हिमाचल का काँगड़ा-क्षेत्र गिना जाता था। हेमचन्द्र ने (तेरहवीं शदी) लिखा है कि जलन्धर के लोग ही त्रिगर्त-जन कहे जाते[२६] हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस क्षेत्र का प्राचीन नाम त्रिगर्त था और जलन्धर उसके मैदानी भाग के लिए प्रसिद्ध था। नदियों का जल सिंचाई आदि के लिए पर्याप्त मात्रा में मिलता था। इस भौगोलिक इकाई के मैदानी भाग में जलन्धर एक प्रधान सांस्कृतिक, आर्थिक तथा प्रशासकीय केन्द्र था और लगा हुआ कुछ पर्वतीय क्षेत्र उसी इकाई का एक प्रमुख भाग था, जहाँ शासन का एक और केन्द्र स्थित था, जिसे प्राचीन काल में कीरग्राम कहते थे।

यह स्थिति संभवतः मौर्यों, कुषाणों और गुप्तों के काल में ज्यों की त्यों बनी रही। उनके पतन के बाद राजनैतिक अशान्ति के काल में जहाँ एक ओर जलन्धर को एक राजनैतिक इकाई के रूप में विकसित होने का अवसर मिला, वहीं मिले हुए पहाड़ी भाग को एक राजनैतिक इकाई मिली और उस क्षेत्र के लिए त्रिगर्त नाम ज्यों का त्यों प्रयुक्त होता रहा। ऐसी ही परिस्थितियों में संभवतः चम्बा भी अलग हो गया, जो अत्यन्त अतीत में त्रिगर्त का एक भाग था। इन बातों के लिए प्रमाणिक तथ्य हमें कल्हण[२७] की राजतंरगिणी और चम्बा के अभिलेखों में मिलते हैं। चम्बा के ग्यारहवीं शदी के एक अभिलेख में वर्णन मिलता है कि जब कीरों ने चम्बा पर दुर्गरों (जम्मू के लोग) और सौमत को (बसोहली के लोग) की सहायता से आक्रमण किया, तो त्रिगर्त और कुल्लू ने उसकी मदद की। इससे स्पष्ट है कि इस समय तक त्रिगर्त से तात्पर्य केवल त्रिगर्त के हृदय-पटल से था, जिसमें आधुधिक काँगड़ा बसा हुआ है। वास्तव में, इस क्षेत्र में भी तीन नदियाँ बहती हैं, जिनका नाम बानगंगा, कुरली और नयगुल है। ये व्यास की सहायक नदियाँ हैं, और इन्हीं की घाटियों में त्रिगर्त-जैसा भौगोलिक वातावरण विद्यमान है। यहाँ यह उल्लेखनीय हैं कि हरिपुर नामक स्थान को, जहाँ ये तीनों नदियाँ व्यास नदी में मिलती हैं, आज भी त्रिगर्त (त्रिगर) कहते हैं।

इस क्षेत्र के लिए यह नाम मध्य और आधुनिक काल में भी कभी-कभी लिया जाता रहा, लेकिन बारहवीं शताब्दी के बाद यह क्षेत्र काँगड़ा नाम से विख्यात हुआ और लोग त्रिगर्त नाम धीरे-धीरे भूल गये। वास्तव में, यह स्थिति सातवीं शदी से प्रारम्भ हो गई थी, क्योंकि ह्वेन साँग[२८] इस क्षेत्र को 'त्रिगर्त' न कह कर जलन्धर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नाम देता है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महमूद और उसके साथी इतिहासकार इसे काँगड़ा नाम से पुकारते हैं।

उत्बी और अलबरुनी जो महमूद के आक्रमण (१००८ ई०) के समय इस क्षेत्र में आये थे, इस राज्य की राजधानी नगरकोट का उल्लेख[२९] करते हैं। बाद के इतिहासकारों में अबुलफजल और फरिश्ता भी नगरकोट का ही वर्णन करते हैं। अबुलफजल इसके साथ ही निकट में स्थित काँगड़ा के किले का भी उल्लेख करता है, जिसे किसी भीम नामक राजा ने एक नगर के पास बनवाया था। एक को भीम नगर कहते थे और दूसरे को भीमकोट। बाद में दोनों को मिलाकर नगरकोट कहने लगे। मध्यकाल में यह नाम राजधानी होने के कारण अधिक प्रचलित हो गया और कभी-कभी पूरे राज्य के लिए भी प्रयुक्त किया जाने लगा। लेकिन कोट या किला क्योंकि प्रशासन का प्रधान केन्द्र था और राजा वहीं रहता था, इसलिए राज्य का नाम भी उसी से प्रचलित हो गया। उसका नाम काँगड़ा कैसे पड़ा, यह समस्या रहस्यपूर्ण है। कुछ विद्वानों का कहना है कि इस किले को प्रारम्भ में 'कानगढ़' कहते थे, जो 'कर्णगढ़' का बिगड़ा रूप है। यह धीरे-धीरे और भी बिगड़ कर 'काँगड़ा' बन गया। इस नाम का उल्लेख पृथ्वीराजरासो में भी किया गया है। दिल्ली के अन्तिम तौमर राजा अनंगपाल को वहाँ काँगड़ा और दूसरे पहाड़ी राजाओं का सम्राट बताया गया है। सोलहवीं शताब्दी के बाद आने वाले यूरोप के यात्री इसे काँगड़ा नाम से ही पुकारते हैं। इस तरह मध्यकाल से लेकर आज तक यह किला, स्थान, नगर और क्षेत्र इसी नाम से प्रसिद्ध रहा। इस नाम को अत्यधिक प्रसिद्ध करने में यहाँ स्थित एक देवी-मन्दिर ने भी बड़ा योगदान दिया, जिसे यहीं के एक राजा ने प्राचीन काल में बनवाया था।

त्रिगर्त-जन से क्या तात्पर्य था, यह कहना कठिन है, क्योंकि उदुम्बरों का कार्य-क्षेत्र भी उसी के आस-पास स्थित था। हो सकता है कि त्रिगर्तों का एक जन-समुदाय प्राचीन काल में उदुम्बर नाम से प्रसिद्ध था। भौगोलिक इकाई के कारण त्रिगर्त के लोग लगे हुए मैदानी पंजाब से भिन्न न थे। लगता है कि उन्हीं में से निकले हुए कुछ लोग, जो लगे हुए पहाड़ी भाग में रहते थे, त्रिगर्तों के नाम से प्रसिद्ध हुए। वैसे यह नाम क्षेत्रीय तथा भौगोलिक अधिक है और इससे किसी जन-विशेष या नस्ल-विशेष का अर्थ लगाना उचित नहीं मालूम होता है।

कुलूत इस क्षेत्र के दूसरे जन-विशेष थे, जो व्यास की उपरली घाटी में अत्यन्त प्राचीन काल से रहते आये हैं। इनका प्राचीन साहित्य में विशेष उल्लेख किया गया[३०]

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हैं। महाभारत तथा पुराणों में और वराहमिहिर की वृहत्संहिता में वे वर्णित हैं। कुछ विदेशी यात्रियों ने भी उनका उल्लेख किया है। गुप्तोत्तर साहित्य में उनके राज्य का विविध वर्णन मिलता है। बाणभट्ट द्वारा लिखित कादम्बरी, राजशेखर के प्रचण्ड पाण्डव तथा भोज के शृङ्गार प्रकाश में उनका उल्लेख है। चम्बा के अभिलेखों में उनका, उनके शासक, देश और राज्य का वर्णन मिलता है। अन्य पुरातात्विक स्रोतों में एक अनूठा रजत सिक्का उल्लेखनीय[३१] है, जो ईसवीं सन् के आस-पास की शताब्दी में प्रचलित किया गया है। इसमें कुलूतों के एक राजा का उल्लेख है।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि कुलूत लोग यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से रहते आये हैं। ये लोग यहाँ की कुल्लू घाटी के आदिम निवासी मालूम होते हैं। पुराणों में इन्हें आर्येतर माना गया है। विशाखदत्त द्वारा लिखित मुद्राराक्षस में वहाँ के एक प्राचीन शासक चित्रवर्मा को 'म्लेच्छ' की श्रेणी में रक्खा गया[३२] है। ये स्थितियाँ अतीत कालीन सांस्कृतिक विकास की विविध दशायें हैं, जो इतिहास के विभिन्न कालों से होकर गुजरी हैं। वास्तव में, आर्यों के विस्तार के समय उनके समीप आने वाली जन-जातियों को प्रमुख सांस्कृतिक धारा से अलग समझा जाता था। लगता है कि कुलूत लोग अतीत में कभी प्राचीन कोल नामक जाति से सम्बन्धित थे। वे धीरे-धीरे अन्य जातियों एवं उनकी संस्कृतियों के सम्पर्क में आये और वे कुल्लू की उपजाऊ और सुरक्षित घाटी में सदैव के लिए बस गये। उन्हें व्यास नदी का पहाड़ी जल उपलब्ध था। पहाड़ियों के चारों ओर से घिरे होने के कारण अत्यन्त सुरक्षित और निश्चिन्त होकर रहने की सुविधा उन्हें थी ही। साथ ही साथ इस क्षेत्र के प्रमुख व्यापार-मार्ग पर रहने के कारण यहाँ आर्थिक सम्पन्नता भी थी। व्यापार के माध्यम से भारत के अन्य भागों में रहने वाले सुसंस्कृत लोगों के सम्पर्क में आने के कारण उनके सांस्कृतिक विकास के अन्य अवसर भी उन्हें मिलते रहे। इन्हीं कारणों से इस क्षेत्र में सांस्कृतिक विकास के लिए उत्तम वातावरण बन सका। परिणामतः उसके विभिन्न पक्षों की यहाँ बड़ी उन्नति हुई।

हिमाचल प्रदेश में इन जातियों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के लोग समय-समय पर आते रहे। मैदानों से लोग अपने धर्म-प्रचारार्थ इधर आये। कभी वे वहाँ से भागकर अपने धर्म और संस्कृति को बचाने के लिए यहाँ आये। इनमें बौद्धों को विशेष रूप से गिनाया[३३] जा सकता है। इस प्रकार के स्थानान्तरण के प्रमाण न केवल उत्तर भारत तथा पंजाब से मिलते हैं, वरन् उनके कश्मीर से भी इधर आने के अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इसी तरह हिमाचल के उत्तरी भाग में तिब्बत से भी मध्यकाल में अनेक बौद्धों का आगमन हुआ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मैदानी भागों से तथा गढ़वाल-कुमायुं आदि क्षेत्रों से भी अनेक हिन्दू धर्म-प्रचारकों ने भी इधर आकर अपने-अपने धर्म का प्रचार किया। इनमें से अनेक ने इन घाटियों को अपना घर बना लिया और वे कभी वापस नहीं गये। काँगड़ा और चम्बा-क्षेत्रों में ब्राह्मण पुरोहितों को संरक्षण दिया गया। अभिलेखों में वर्णन मिलता है कि बनारस के कुछ विद्वान पंडित आकर काँगड़ा में[२४] बस गये थे। गुजरात से आने वाले कुछ धर्माधिकारियों को भी यह स्थान बड़ा[२५] प्रिय लगा था। कश्मीर के राज पंडितों, पुरोहितों एवं विद्वानों का इस क्षेत्र में बड़ा स्वागत हुआ। कभी-कभी इन क्षेत्रों के वैवाहिक सम्बन्ध भी उधर होते थे, इसके परिणामस्वरूप भी लोगों का आगमन इस क्षेत्र से निरन्तर बना रहा।

इस क्षेत्र में लोगों के आगमन के दूसरे प्रमुख कारण व्यापार और विजय-अभियान थे, क्योंकि ऐसे अनेक राजमार्ग या व्यापार-मार्ग इस क्षेत्र से होकर गुजरते थे, जिनसे भारत के अन्य भाग एक तरफ चीन और तिब्वत से जुड़े थे और दूसरी तरफ मध्य एशिया और लद्दाख से। अतएव अनेक लोग व्यापार के सिलसिले में मैदानों से इधर आये और धन के प्रमुख स्रोत-स्थानों में सदैव के लिए बस गये। इनमें सिरमौर का क्षेत्र तथा सतलज और व्यास नदियों की घाटियों वाले व्यापार-स्थान गिनाये जा सकते हैं। मण्डी की जनसंख्या इसी कारण बढ़ती गई और इसी कारण कुल्लू में प्राचीन नगरों का बड़ा विकास हुआ। ऐसे ही कारणों से जन्में और बढ़े अन्य अनेक स्थान गिनाये जा सकते हैं, जो हिमाचल के अन्य भागों में स्थित हैं। हो सकता है, इन में से कुछ ने आर्थिक और सामाजिक कारणों से अपने पेशे को बदला हो। इस जनसंख्या के स्थानान्तरण में कुछ श्रमिक भी थे, जो अपने मालिकों के साथ इस क्षेत्र में आये।

श्रमिक वर्गीय लोग विजेताओं और प्रशासकों के साथ भी इस क्षेत्र में आये। यह सिलसिला बहुत प्राचीन काल से शुरू हुआ होगा, जिसकी सही सूचना देना तथ्यों के बिना बड़ा कठिन है। मौर्यों, कुषाणों और गुप्तों के काल में मैदानों से लोग सैनिकों, प्रशासकों और विजेताओं के रूप में इस क्षेत्र में अवश्य आये, जैसा कि अगले पृष्ठों से ज्ञात होगा। ऐसा ही हर्ष और हर्षोत्तर काल में भी हुआ। बाद में मध्य प्रदेश, राजस्थान और बंगाल से आये राजन्य वर्गीय लोगों के इस क्षेत्र में आगमन की सूचना तो ज्ञात तथ्यों पर[२६] आधारित है। उत्तर प्रदेश के लगे हुए पहाड़ी भागों से भी ऐसे अनेक लोग आये। संभवतः नेपाल से भी लोग इस क्षेत्र में काफी संख्या में आये, क्योंकि वहाँ का भौगोलिक और सांस्कृतिक वातावरण यहाँ से मिलता-जुलता था। वहाँ के प्राचीन राना और ठाकुर आदि प्रशासकवर्गीय लोग सम्भवतः इन्हीं

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

क्षेत्रों से यहाँ कभी आये और यहीं के हो गये। इसी प्रकार विजय-अभियान में तिब्बत और लद्दाख से आये लोग हिमाचल के उत्तरी भाग में बस गये, जहाँ उन्हें व्यापार के सिलसिले में भी अनेक प्रकार के आकर्षण विद्यमान थे।

हिमाचल के प्राचीन लोगों में इनके अतिरिक्त अन्य किसी जन या जाति का उल्लेख प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता है। वैसे आधुनिक काल में इस क्षेत्र में पाई जाने वाली जन-जातियों में गद्दी और गूजरों का उल्लेख करना[३७] आवश्यक है। क्या ये ऐसी प्राचीन परन्तु उपेक्षित जातियाँ थीं, जिनके विषय में प्राचीन पढ़े-लिखे लोगों को कोई सूचना नहीं थी, या ये लोग इस क्षेत्र में बाद में आये। ये ऐसे प्रश्न है, जिनका सही उत्तर देना बड़ा कठिन है। इतना जरूर है कि ऐसे काम करने वाले लोग और ऐसे पेशे में लगी जातियाँ वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र वर्णित हैं। ये दोनों चरवाहों के पेशे में निरन्तर लगी हुई मालूम होती है। हो सकता है कि ये इन्हीं पहाड़ी क्षेत्रों में प्राचीन काल से रहती आई हैं, जिन्हें किसी लेखक ने उल्लेख नहीं किया। वैसे यह भी सम्भव है कि ये दोनों जातियाँ मैदानी भाग से या कहीं बाहर से इस क्षेत्र में आई हों। हमें दूसरी सम्भावना अधिक सही लगती है, क्योंकि सांस्कृतिक विकास की विधि और उसके स्तर को देखने से यह लगता है कि मैदानी जाति ऊँचे पहाड़ों, दुर्गम घाटियों और अत्यन्त शीत क्षेत्रों में रहना कम पसन्द करेगी। इनमें से गद्दी जाति प्राचीन धर्म या हिन्दू धर्म में आस्था रखती है और गूजर जाति इस्लाम धर्म में। सम्भवतः दोनों सभ्यता के विकास के किसी स्तर पर मध्य एशिया या पामीर की पहाड़ियों से इधर आई हों। कश्मीर से होकर उनका इधर आना अधिक सम्भव जान पड़ता है, क्योंकि गूजर जाति के लोग वहाँ की घाटियों में अब भी बड़ी संख्या में पाये जाते हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

2

द्वितीय अध्याय

इतिहास जानने के स्रोत

किसी भी देश या प्रदेश विशेष का प्राचीन इतिहास लिखने के लिए कुछ तथ्यों या प्रमाणों का होना अनिवार्य है। विशेष करके इनकी आवश्यकता तब और भी महसूस होती है जब वहाँ का क्रमबद्ध और वैज्ञानिक तरीके से लिखा गया समकालीन इतिहास-ग्रन्थ नहीं मिलता है। इस दृष्टि से हिमाचल प्रदेश ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण रहा है, क्योंकि इससे सम्बन्धित कोई इतिहास-ग्रन्थ आज तक नहीं उपलब्ध हो सका है। वेद, उपनिषद, महाकाव्य, कथा, पुराण तथा संस्कृत या प्राकृत में लिखे अन्य प्रकार के जो ग्रन्थ मिलते हैं उन्हें आज के इतिहास के सिद्धान्त एवं स्वरूप को ध्यान में रखकर इतिहास साहित्य नहीं माना जाता है। इस प्रकार के साहित्य से तत्कालीन सांस्कृतिक दशा पर प्रचुर रूप से प्रकाश पड़ता है। उनकी सहायता से आधुनिक काल में भारत की संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने वाले अगणित शोधग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनमें प्राचीन काल में लिखाये गये सहस्रों अभिलेखों, सिक्कों, मुहरों तथा अन्य पुरातात्विक साधनों से भी सहायता ली गई है।

वास्तव में प्राचीन भारत में इतिहास का स्वरूप' कुछ और ही था। अत्याधुनिक काल की तरह इससे राजनैतिक और सांस्कृतिक सभी दशाओं पर प्रकाश डालने वाले साहित्य-ग्रन्थों से अर्थ लगाया जाता था, जिनमें धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, पुराण,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

आख्यान तथा अन्य प्रकार के साहित्य ग्रन्थ गिने जाते थे। विशुद्ध काव्य ग्रन्थों को इससे बाहर रक्खा जाता था। सम्भवतः ऐसे ही अर्थ में यहाँ के प्राचीन ग्रन्थों में 'इतिहासपुराण' का उल्लेख किया गया है, जिनमें विभिन्न राजाओं, महापुरुषों, तथा राजवंशों से सम्बन्धित आख्यान प्रमुख स्थान रखते थे। इसमें तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का बहिष्कार नहीं किया जाता था। सम्भवतः इसीलिए महाभारत और पुराण-ग्रन्थों में राज-वंशावलियों के साथ-साथ उस समय की अन्य बातों का विस्तृत वर्णन है, जिनसे तत्कालीन समाज, धर्म, अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा प्रशासन का गम्भीर रूप से अध्ययन किया जा सकता है, लेकिन इनके क्रमिक विकास की गति जानने के लिए अन्य प्रमाणों को ढूँढ़ना पड़ता है, क्योंकि इनके विकास-क्रम में तिथियों का वर्णन नहीं है। यह कभी पुरातात्विक साधनों की सहायता से पूरी की जाती है, जिनमें प्रधान रूप से अभिलेख, सिक्के, मुहरे, मृण्मयमूर्तियाँ, मृद्भाण्ड तथा स्मारकों की गणना की जाती है। परन्तु ये ऐतिहासिक प्रमाण अपने में अपूर्ण होते हैं और उनमें इतिहास की दृष्टि से अनेक दोष देखे जाते हैं। उदाहरणार्थ, अभिलेखों में कभी-कभी लम्बी-चौड़ी प्रशस्तियाँ मिलती हैं, क्योंकि वे सरकारी लेखकों द्वारा लिखी जाती हैं। अतः उनके अध्ययन से वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं मिलता है। इसी तरह उपर्युक्त अन्य पुरातात्विक प्रमाणों से भी अपूर्ण सूचनायें मिलती हैं। फिर भी समकालीन साक्ष्य होने के कारण आज के इतिहास-लेखन में उनको अनूठा स्थान दिया जाता है।

प्राचीन-काल के इतिहास-लेखन में ऐसी ही कुछ अपूर्ण सूचनायें विदेशी यात्रियों के यात्रा-विवरण में भी मिलती है, लेकिन समकालीन साक्ष्य होने के कारण इतिहास-लेखन में उन्हें बड़ा ऊँचा स्थान दिया जाता है। भारत में विदेशी यात्रियों के आने का सिलसिला सिकन्दर महान के आक्रमण के बाद से प्रारम्भ[२] होता है। प्राचीन काल के इन यात्रियों में मेगस्थनीज, नियार्कस, प्लिनी, फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग तथा अलबरूनी आदि का नाम मुख्य रूप से गिनाया जा सकता है, जिन्होंने भारत में कुछ समय तक रहकर यहाँ के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दशा पर अत्यधिक प्रकाश डालने वाले विवरण प्रस्तुत किया है। समकालीन साक्ष्य होने के कारण इन्हें बड़ा महत्वपूर्ण इतिहास-स्रोत माना जाता है। लेकिन, ये भी अपूर्ण होते हैं, क्योंकि तत्कालीन समाज की कुछ ही बातें उनका ध्यान आकृष्ट करती हैं। वे दोष पूर्ण भी होते हैं, क्योंकि यात्री कभी-कभी सुनी-सुनाई बातों को भी लिखता है और देश या प्रदेश के एक भाग का ही वर्णन कर पाता है। उपर्युक्त यात्रियों में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ह्वेनसांग प्राचीन हिमाचल को जानने के लिए अधिक सहायक सिद्ध हुआ है। वह सातवीं शताब्दी ई० में चीन से चलकर इस क्षेत्र से होता हुआ सम्राट हर्षवर्धन की राजधानी कन्नौज गया था। उसके यात्रा-विवरण से मालूम होता है कि वह कश्मीर में कुछ दिन रहा और वहाँ से चलकर जलन्धर होते हुए उसने हिमाचल के कई क्षेत्रों और बौद्ध केन्द्रों का भ्रमण किया।

मध्यकाल में यहाँ आये अरब यात्रियों ने भी[३] ऐसा ही किया। फिर भी इनके वर्णन से भारतीय राजनीति, संस्कृति, शासन एवं अर्थ-व्यवस्था पर दूसरी ही दृष्टि से प्रकाश डाला जाता है। इस दृष्टि से आधुनिक काल में आये पाश्चात्य यात्री अधिक विश्वसनीय माने[४] जाते हैं। उन्होंने जो लिखा है, उसमें सच्चाई और आलोचना अधिक मिलती है, क्योंकि वे देख और सुनकर ही नहीं लिखे हैं, वरन् उन्होंने यहाँ के लोगों से पाठ्य-सामग्री तथा इतिहास-साक्ष्यों को माँगकर पढ़ा है और उनकी टिप्पणियों के साथ अपना विवरण प्रस्तुत किया है।

इन पाश्चात्य यात्रियों में विलियम फिन्च और थामस कोर्याट का नाम लिया जा सकता है, जिसने जहाँगीर के राज्य-काल में भारत के कुछ भाग का भ्रमण किया था। फ्रेन्सिस बर्नियर दूसरा पाश्चात्य यात्री था, जो औरङ्गजेब के राज्य-काल में भारत आया था। उसे एक अच्छा-खासा इतिहासकार भी माना जाता है। वह भारत में कई वर्ष रहा। वह उत्तर मुगलकालीन भारत के ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दशा में विशेष रुचि रखता था। उसके वर्णन से हिमाचल के इस पर्वतीय प्रदेश की भी कहीं-कहीं सीधे और कहीं-कहीं विषयान्तर से सूचनायें मिलती हैं।

इसके बाद अंग्रेज सरकार की देखरेख में कुछ विद्वानों ने इस क्षेत्र का भ्रमण किया, जिनमें फोर्स्टर (१७८३ ई०) का नाम उल्लेखनीय[५] है। यह ईस्ट इन्डिया कम्पनी में नौकरी करता था। उसने सरकार के आदेश पर नहान से लेकर कश्मीर तक के क्षेत्र का भ्रमण किया। वह बिलासपुर, हरिपुर, नूरपुर, बसोहली तथा जम्मू होते हुए गया था। उसने इस क्षेत्र की राजनैतिक विच्छिन्नता पर अधिक लिखा है। इसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस क्षेत्र को देखने के लिए मूरक्राफ्ट को भेजा[६], जिसने १८२० ई० से लेकर १८२२ ई० तक में नहान से लेकर बिलासपुर, मण्डी, कुल्लू, लाहौल तथा लद्दाख होते हुए कश्मीर तक देखा। वह एक सुशिक्षित और साहसी पुरुष था, अतएव उसने राजपरिवारों में जाकर प्राचीन लिखित सामग्री को भी खोजने और पढ़ने-पढ़वाने पर ध्यान दिया। इसलिए उसका यात्रा-विवरण इस क्षेत्र का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास जानने के लिए सूचनाओं का भण्डार है। वह एक

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सरकारी अफसर था और उसके भ्रमण करने का विशेष तात्पर्य था। आगे विजय करने के लिए क्षेत्र-विशेष की राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक परिस्थिति का ज्ञान जरूरी होता है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने व्यक्तिगतरूप से भी इस पहाड़ी क्षेत्र का भ्रमण किया। इसमें विग्ने का उल्लेख किया जा सकता है, जो एक सही यात्री की तरह इस क्षेत्र में आया[७] था। हचिन्सन का कहना है कि वह अत्यधिक शिक्षित नहीं था, इसलिए उसका यात्रा-विवरण विद्वतापूर्ण और साहित्यिक नहीं है। इसमें सरकारी अभिप्रेत वांछित नहीं है। इस क्षेत्र से सम्बन्धित अनेक सूचनाएँ इसमें मिलती हैं, जिनका इतिहासकार सावधानी से प्रयोग कर सकता है। हमारे लिए उनकी उतनी उपयोगिता नहीं है, क्योंकि ये सभी यात्रा-विवरण आधुनिक कालीन हिमाचल प्रदेश की राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दशा पर अधिक प्रकाश डालते हैं। फिर भी विषयान्तर से अनेक प्राचीन तथ्यों पर भी उसके मत बिखरे हुए मिलते हैं, जो यहाँ के प्राचीन कालीन संस्कृति और इतिहास या कला पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। ऐसे ही ग्रन्थों में एक अमरीकी महिला का 'कुल्लू' नामक ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी है, जो एक आधुनिक यात्रा-विवरण होते हुए भी कहीं-कहीं प्राचीन संस्कृति और कला का कुछ विवरण प्रस्तुत करता[८] है।

विशुद्ध साहित्यिक साक्ष्यों में संस्कृत, पालिप्राकृत या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में लिखे ग्रन्थ इतिहासकार को किसी न किसी रूप में मदद[९] करते ही हैं। इसमें विशेषकर प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति पर लिखने वाले इतिहासकार को विशेष मदद मिलती है। वैसे उसे सम्पूर्णरूप का कोई भाग यहाँ से मिलता है तो कोई भाग वहाँ से ढूंढ़ना पड़ता है। फिर वह अपनी लेखनशक्ति और आधारभूत सिद्धान्तों की सहायता से उन्हें पूर्ण रूप देने का प्रयास करता है और शब्दों तथा वैज्ञानिक तर्क के माध्यम से उसमें जान डालता है। यह ऐसा ही काम है जैसे कलाकार अपनी तूलिका और मिले रंगों के माध्यम से एक सुन्दर तारतम्यपूर्ण और सजीव चित्र उकेरता[१०] है। दोनों में अन्तर केवल दृष्टि का होता है। कलाकार जहाँ मनोवाञ्छित या आदर्श रूप निर्माण के पीछे भागता है और पूर्णता के चक्कर में रहकर कृति का निर्माण करके भी उसमें पूर्णता और आदर्श की कमी महसूस करता ही रहता है, वहाँ इतिहासकार अपने मिले ऐतिहासिक तथ्यों से बँधा होता है और ऐतिहासिक एवं सामाजिक वस्तुस्थिति को ज्यों का त्यों यथार्थ रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इसमें तथ्यों को वह पैदा नहीं करता है, परन्तु अपने ज्ञान,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

तर्क,-विज्ञान, पहुँच एवं दृष्टि के अनुसार उन्हें देख कर और अपनी विधि एवं प्रशिक्षण के अनुसार ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं एवं धाराओं की सामाजिक, आर्थिक अथवा भावात्मक व्याख्या देकर उन्हें एक पठनीय कृति के रूप में प्रस्तुत करता है[११]।

इस तरह प्राचीन कालीन संस्कृति और राजनैतिक विकास के लिखने में सभी प्रकार की साहित्यिक कृतियाँ मदद करती हैं[१२]। यदि वेदों के कुछ बिखरे वर्णन से यहाँ की नदियों और उनकी जल-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है, तो लौकिक संस्कृत साहित्य एवं बौद्ध साहित्य से यहाँ की कुछ जन-जातियों और उनकी राजनैतिक रूपरेखा एवं संस्कृति के कुछ पक्षों पर सूचनायें मिलती हैं। उदाहरणार्थ, पाणिनि की[१३] उष्टाध्यायी से यहाँ की कुछ जन-जातियों एवं उनकी राजनैतिक मान्यताओं की सूचनायें मिलती हैं। महाभारत से यहाँ की जन-जातियों और उनकी संस्कृति पर थोड़ा-सा प्रकाश पड़ता है। पुराणों में यहाँ की आदिम-जातियों का कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है। ऐसी ही सूचना बराहमिहिर की वृहत्संहिता में विद्यमान है। विशाखदत्त के नाटक मुद्राराक्षस में यहाँ के मौर्यकालीन कुछ राजाओं के नाम मिलते हैं। बाद के पुराणों में ब्रह्माण्ड पुराण में एक छोटा-सा अंश कुलान्तपीठ माहात्म्य नाम से उपलब्ध होता है, जिससे हिमाचल के कुल्लू तथा पार्वती नदी-घाटी के भौगोलिक तथा धार्मिक दशा के सम्बन्ध में कुछ सूचनायें मिलती हैं। बाणभट्ट के हर्षचरित में भी हिमाचल के किसी खश राजा की तरफ संकेत मिलता है और उसकी कादम्बरी में भारत के अन्य भागों के साथ कुल्लू के सांस्कृतिक एवं राजनैतिक सम्बन्धों की ओर संकेत किया जाता है।

वास्तव में, गुप्तकाल के बाद इतिहास-लेखन में एक नई धारा का जन्म होता है, जिसका प्रारम्भ बाणभट्ट अपना हर्षचरित लिखकर करता है। इसके लिए प्रेरणा उसे सम्भवतः प्राचीन काल से लिखे जाते प्रशस्ति-प्रधान अभिलेखों[१४] से मिलती है। गुप्तकालीन प्रयाग-प्रशस्ति, मन्दसौर अभिलेख तथा जूनागढ़ आदि अभिलेखों में समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त आदि सम्राटों का क्रमशः चरित्र वर्णित है, जो श्लोकों में लिखे गये लघु चरित्र-काव्य लगते हैं। अतएव सातवीं शताब्दी ई० में और उसके बाद के काल में जहाँ एक ओर प्रशस्ति प्रधान अभिलेखों की बाढ़ आ गई, वहीं पद्य में अनेक चरित्रग्रन्थ[१५] भी लिखे गये, जिनमें रामपाल चरित, विक्रमांक देव चरित, कुमारपाल चरित आदि प्रधान हैं। इनमें अपने सम्राट् के सम्बन्ध में दरबारी कवियों ने कुछ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों को प्रस्तुत किया, लेकिन राजकवि

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

होने से उन्होंने सम्राटों के गुणों को बहुत बढ़ा-बढ़ा कर वर्णन किया और उनकी विजयों को अपने वर्णन में अधिक स्थान दिया। उन्होंने उनके अवगुणों पर कम ध्यान देते हुए उनके पराजय का प्रायः उल्लेख भी करना उचित न समझा। इसी प्रकार उनमें तत्कालीन अन्य राज्यों के आपसी सम्बन्धों पर भी अधिक वर्णन नहीं मिलता है।

बाद में इतिहास-लेखन-विधा में कुछ और उन्नति हुई। हेमचन्द्र का द्वयाश्रय महाकाव्य[१६] तथा मेरुतुंग का प्रवन्ध-चिन्तामणि ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ अधिक महत्वपूर्ण हैं, जो पश्चिमी भारत, मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दशा पर अधिक प्रकाश[१७] डालते हैं। उनके अध्ययन से चालुक्यवंश का इतिहास अधिक ज्ञात होता है, लेकिन कहीं-कहीं विषयान्तर से भारत के अन्य भागों के सम्बन्ध में भी कुछ सूचनायें मिलती हैं। उदाहरणार्थ, मेरतुंग के एक वर्णन से हिमाचल के काँगड़ा-क्षेत्र को प्राचीन त्रिगर्त मानने में बड़ी मदद मिलती है। फिर भी ये ग्रन्थ हिमाचल प्रदेश के इतिहास जानने में हमारी अधिक सहायता नहीं करते हैं। ऐसा ही कुछ चौहानों के इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थों के विषय में भी कहा जा सकता है। इनमें हम पृथ्वीराज-विजय और पृथ्वीराज-रासो के कुछ ऋणी हैं, क्योंकि उनमें पर्वतीय क्षेत्रों और उससे लगे मैदानी भागों के इतिहास पर कहीं-कहीं प्रकाश डालने वाले कुछ तथ्य विद्यमान[१८] हैं। प्रतिहार-दरबार में लिखे गये ग्रन्थों में लक्ष्मीधर का कृत्यकल्पतरु और राजशेखर का प्रचण्डपाण्डव उल्लेखनीय[१९] हैं, जिनसे तत्कालीन इतिहास, समाज एवं संस्कृति पर सामान्य रूप से प्रकाश पड़ता है। इनसे हिमाचल के साथ प्रतिहारों के आपसी सम्बन्धों को जानने में भी कुछ मदद मिलती है।

इस दृष्टि से हमारे लिए कल्हण की राजतरंगिणी विशेष उपयोगी है, क्योंकि यह भारत का पहला ग्रन्थ है, जिसे हम सही अर्थ में इतिहास की सफल कृति[२०] मानते हैं। इसमें वैसे कश्मीर का क्रमबद्ध इतिहास वर्णित है, जिसे कल्हण ने ११४८ ई० और ११५० ई० के मध्य लिखा था। वह कश्मीर-नरेश राजा जयसिंह (११२८–११५५ ई०) के दरबार में रहता था, अतएव उसे लिखने-पढ़ने की सभी सुविधायें प्राप्त थीं। उसमें इतिहास लिखने की मेधा भी थी। उसने अपने ग्यारह पूर्वजों के इतिहास-ग्रन्थों को पढ़ा था, तत्कालीन और पहले लिखे अभिलेखों को देखा था और सभी सरकारी लेखों का प्रयोग किया था। सम्भवतः अरब देशों में लिखे इतिहास-ग्रन्थों की शैली से भी वह परिचित था। इस तरह उसने भारत की प्राचीन इतिहास

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लेखन-शैली से प्रेरणा लेकर और अपनी मेधा और मौलिकता का प्रयोग करके एक अनूठे ग्रन्थ की रचना की, जिसे पाश्चात्य विद्वानों ने भी एक सही इतिहास-ग्रन्थ माना है। फिर भी आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर इसकी विधि और व्याख्या की कुछ आलोचना की जा सकती है। उदाहरणार्थ, ऐतिहासिक घटनाओं में भी वह दैवी शक्ति और अलौकिक कारणों को महत्व देता है।

हिमाचल प्रदेश का इतिहास जानने में इस ग्रन्थ से सबसे अधिक मदद मिलती है। यह प्रदेश जम्मू और कश्मीर से लगा हुआ है। इसने अपने भौगोलिक स्थिति और आर्थिक वैभव के कारण वहाँ के शासकों का ध्यान सदैव आकृष्ट किया है। इसमें इस क्षेत्र की अनेक राजनैतिक और सांस्कृतिक घटनायें वर्णित हैं। इसमें काँगड़ा, चम्बा तथा कुल्लू पर हुए कश्मीरी आक्रमणों का वर्णन मिलता है और हिमाचल के शासकों के साथ आपसी सम्बन्धों को भी यत्र-तत्र स्थान दिया गया है। इसमें इन घटनाओं की कुछ तिथियाँ भी उल्लिखित हैं, इसलिए यहाँ के राजनैतिक इतिहास को अधिक सही जानने में इससे सचमुच बड़ी मदद मिलती है। जम्मू और कश्मीर तथा हिमाचल का भौगोलिक, सांस्कृतिक और आर्थिक वातावरण समान होने के कारण उसके वर्णन से यहाँ की समस्यायें भी प्रकाश में आती हैं। अतएव इस दृष्टि से भी उसकी उपयोगिता कुछ अधिक है।

बाद में लिखे कश्मीर के अन्य इतिहास-ग्रन्थों से भी हिमाचल का इतिहास लिखने में मदद[२१] मिलती है। इनमें जोनराज की राजतरंगिणी प्रमुख है, जिसमें ११५० ई० से लेकर १४५८ ई० तक के कश्मीर का इतिहास वर्णित है। यहाँ श्रीवर की राजतरंगिणी भी उल्लेखनीय है, जो १४५९ ई० से लेकर १४८६ ई० तक के कश्मीर का इतिहास जानने के लिए उपयोगी है। यहाँ प्राज्यभट्ट और उसके शिष्य शुक के इतिहास-ग्रन्थ का भी उल्लेख करना आवश्यक है, जिसमें सोलहवीं शताब्दी ई० तक के कश्मीर के इतिहास का वर्णन किया गया है। लेकिन ये ग्रन्थ प्राचीन काल में नहीं लिखे गये हैं, अतएव उनका उपयोग हम अपने वर्तमान ग्रन्थ में नहीं कर सकते हैं। वैसे साहित्य और शैली की दृष्टि के ये कल्हण के ग्रन्थ के समान अच्छे और उपयोगी नहीं है। परन्तु इनसे यह समझा जा सकता है कि हिमाचल से लगे हुए राज्य कश्मीर में इतिहास लिखने की यह परिपाटी निरन्तर होती रही, जिसका प्रभाव हिमाचल प्रदेश में स्थित विभिन्न राज्यों की साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधि पर पड़ना अवश्यम्भावी था। कश्मीर के अनेक विद्वान् इस क्षेत्र में आकर बसते ही रहते थे, उनमें से अनेक यहाँ के राज्यों के दान और कृपा की कामना करते

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ही थे। यहाँ के अनेक लोग जम्मू और कश्मीर जाते थे और वहाँ से अनेक बातें सीख कर वापस लौटते थे। राजनैतिक प्रभावों के विस्तार के कारण इसमें और भी गति रही। अतएव कश्मीर की इतिहास-लेखन-कला धीरे-धीरे यहाँ आई। सम्भवतः इसी वातावरण में यहाँ के लघु क्षेत्रीय राजाओं की विभिन्न वंशावलियाँ लिखी गईं, जो हिमाचल प्रदेश के क्षेत्रीय राज्यों का इतिहास लिखने में हमारी बड़ी सहायता करती हैं।

वंशावलियाँ, जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, विभिन्न राजवंशों के राजाओं का उल्लेख[२२] करती है। ये संस्कृत भाषा में राजगुरुओं द्वारा लिखे गये साहित्यिक साक्ष्य है, जिन पर इतिहास-लेखन में कुछ सीमा तक विश्वास किया जाता है। कहीं-कहीं तो यही एक मात्र साक्ष्य होते हैं, जिनकी सहायता से राजनैतिक इतिहास लिखा जाता है। ऐसी वंशावलियों का लेखन मध्यकाल में प्रारम्भ हुआ, जब इतिहास लिखने की परम्परा का जन्म हो चुका था। उस समय जहाँ सम्प्रभु सम्राट् के सम्बन्ध में पुस्तकें लिखी जाती थीं, वहीं सामान्य राजघरानों के राजपुरोहितों ने अपने शासकों के सम्बन्ध में तुलनात्मक रूप से कुछ लिखना उचित समझा। यह बात बाद में एक परिपाटी बन गई, जिससे मध्यकाल में पश्चिमी भारत में वंशावलियों का लेखन विकसित हुआ। यह बात सम्पूर्ण अरब और यूरोप के देशों के लिए भी लागू होती है, क्योंकि वहाँ भी मध्यकाल में ऐसी वंशावलियों के लिखने की मूल परम्परा मिलती है। हिमाचल के इन क्षेत्रों में तो वंशावलियों के लिखे जाने की परम्परा अधिक प्रचलित मालूम होती है। चम्बा, काँगड़ा और कुल्लू सभी क्षेत्रों में बसे हुए विभिन्न राजवंशों की वंशावलियाँ हमें उपलब्ध हैं।

ये वंशावलियाँ एक वंश में पैदा हुए राजाओं के नामों का क्रमानुसार उल्लेख करती है, ये कभी-कभी अत्यन्त संक्षेप में उनके कार्यों पर प्रकाश डालती है और उनके राज्य-काल में घटी कुछ घटनाओं का उल्लेख करती है। हिमाचल की इन वंशावलियों की ओर हमारा ध्यान सबसे पहले विलियम मूरक्राफ्ट ने दिलाया और इतिहास-लेखन में उनकी महत्ता और उपयोगिता पर प्रकाश डाला। इन्होंने काँगड़ा की वंशावली को खोजवाने की सलाह दी। परिणामतः वहाँ के मध्यकालीन और आधुनिक शासकों ने उन्हें ढूंढ़वाया और संस्कृत-पंडितों की मदद से उन्हें संस्कृत न जानने वाले इतिहासकारों के लिए भी उपयोगी बनवाया। बाद में जब कनिंघम ने इस क्षेत्र के इतिहास और पुरातत्व पर काम करना प्रारम्भ किया तो उन्होंने भी हिमाचल के काँगड़ा, नूरपुर, मण्डी, सुकेत, चम्बा और राजौरी की राज-वंशावलियाँ खोज निकालीं

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और उनके आधार पर इन क्षेत्रों के अतीत कालीन राजाओं के नामों की तालिका प्रकाशित की। कुल्लू की वंशावली की सूचना वहाँ के सहायक कमिश्नर कैप्टेन हरकोर्ट ने दी और बाद में उन्होंने इसे सम्पादित करके उसके आधार पर कुल्लू के राजाओं का संक्षिप्त इतिहास अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया। पं० हीरानन्द[२३] शास्त्री ने भी अपने शोधपत्र में इनका उल्लेख किया है। बाद में फागेल और हचिन्सन ने उन सभी वंशावलियों की मदद से इस क्षेत्र के विभिन्न राजवंशों का विस्तृत इतिहास लिखा, जिसमें उन्होंने अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों में वर्णित तथ्यों का प्रयोग करके उन्हें शुद्ध करने की भी चेष्टा की।

ये वंशावलियाँ किसी एक व्यक्ति-विशेष के द्वारा नहीं लिखी गईं। विभिन्न राजवंशों के पुरोहितों ने उन्हें समय-समय पर लिखा और अतीत कालीन राजाओं के नाम और कार्यों की तालिका को अपने उत्तराधिकारी को सौंप दिया। राजगुरु का पद भी वंशानुगत होता था, अतएव ऐसी वंशावलियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रहीं और समय-समय पर उनमें विस्तार होता रहा[२४]। पुरानी वंशावली में परवर्ती पुरोहित, कवि या लेखक ने विस्तार, परिष्करण या परिवर्द्धन किया। जननांतर का लेखक पूर्व लिखे अक्षरों को अपने ढंग से पढ़कर पुनः कुछ लिखता रहा और इस तरह घटनाओं के परिवर्तन के अतिरिक्त नामों में भी परिवर्तन होता रहा। अतः इनमें कभी-कभी राजाओं का कुछ परिवर्तित या संशोधित नाम भी मिलता है। तत्कालीन अभिलेखों में या अन्य साहित्यिक साक्ष्यों में उन्हें कुछ और तरीके से लिखा गया है। अतएव वंशावलियों में प्राप्त नामों को अन्य साक्ष्यों की मदद से शुद्ध करना पड़ता है। हरमन गोएट्ज का कहना है कि १३०० ई० के बाद लिखी गई वंशावलियाँ अधिक सही मालूम होती हैं और इससे पूर्व हुए राजाओं के नामों में भी प्रायः अशुद्धियाँ मिलती हैं।

इसके अतिरिक्त इनमें अन्य अनेक दोष[२५] हैं। एक तो ये बहुत संक्षिप्त हैं। इनमें केवल राजाओं के नाम और उनके प्रधान कार्यों का उल्लेख मात्र किया गया है। इनमें भाषा और व्याकरण की दृष्टि से भी अनेक अशुद्धियाँ मिलती हैं, क्योंकि ये ऐसे काल में लिखी गई हैं जब संस्कृत भाषा का पतन होना प्रारम्भ हो गया था और साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में अवनति हो गई थी। इस समय नई रचनाएं कम लिखी जाती थीं और टीका-ग्रन्थ या प्रबन्ध-ग्रन्थ लिखने की परम्परा चल पड़ी थी। पंडित लोग राजघरानों को प्रसन्न रखने के लिए ज्ञात संस्कृत भाषा और शैली में उनके पूर्वजों और उनके कार्यों को लिख छोड़ते थे। इसी कारण इनमें प्रशस्ति मिलने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

की सम्भावना अधिक है। विभिन्न राजा के उत्तम गुणों का वर्णन, उसकी विजयों का उल्लेख और उसके प्रधान कार्यों की चर्चा करना उनका प्रधान विषय था। दरबारी कवि या राजगुरु होने के कारण छोटे कार्यों को बढ़ा-चढ़ाकर कहना उन्हें अधिक वांछित था। वे उनकी पराजयों या अवगुणों को बताना उचित नहीं समझते थे, अतएव अनेक राजनैतिक और साहित्यिक घटनाओं से युक्त राज्यकाल का वर्णन केवल कुछ ही शब्दों में किया गया है। वंशावलियों में उल्लिखित प्रारम्भ के अनेक राजाओं को जानने में बड़ी कठिनाई पड़ती है, क्योंकि वे हमें किसी अन्य स्रोत से ज्ञात नहीं हैं। इनमें से अनेक नाम तो केवल पुराकथाओं में मिलते हैं। विभिन्न राजवंशों ने अपना मूल सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण तथा अन्य प्राचीन राजवंशों में ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है। अतः इनमें से अनेक काल्पनिक हैं और कुछ लोककथा के पात्र हैं। इनका लेखन भी वैज्ञानिक तरीके से समालोचनात्मक नहीं है। हरमन गोएट्ज का तो यहाँ तक कहना है कि इनमें सम्पूर्ण भारत के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण घटनाओं को कभी-कभी क्षेत्रीय एवं सामान्य युद्ध के रूप में वर्णित किया गया है और इनमें प्राचीन जातियों और नगरों के नामों को बदल कर परवर्ती नाम लिखे गये हैं। इनमें कभी-कभी किसी सम्राट् के अधीनस्थ सामन्तों की विजयों का वर्णन इस ढंग से किया गया है कि उन्हें एक स्वतन्त्र और सम्प्रभु सम्राट् प्रमाणित करने का असफल प्रयास स्पष्ट झलकता है।

इनमें दूसरा प्रधान दोष शासकों की तिथियों की अप्राप्ति है। उनमें न तो उनके सिंहासन पर आसीन होने की तिथि वर्णित है और न उनके मरने या सिंहासन से उतरने के काल का कोई उल्लेख किया गया है। ऐसा अगर हुआ है तो बहुत कम मात्रा में। इसी तरह एक ही समय में राज्य करने वाले दो राजाओं को एक-दूसरे के बाद लिखा गया है, अतएव कालक्रम को समझने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इस दृष्टि से दूसरी बड़ी कठिनाई यह है कि ये वंशावलियाँ मूल रूप में अब उपलब्ध नहीं है, अतएवं हमें पूर्व हुए इतिहासकारों के सन्दर्भ और वर्णन का ही सहारा लेना पड़ता है और अपने इतिहास-लेखन में हमें उनके व्यक्तिगत ज्ञान और उनके आलोचनात्मक उपयोग का अवसर प्रायः नहीं मिलता है। वास्तव में, आधुनिक इतिहास-लेखन में वे हमारी मदद अधिक नहीं कर पाते हैं और उनमें वर्णित घटनाओं या राजाओं की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए हमें हर दशा में साहित्यिक या पुरातात्विक स्रोतों की सहायता लेनी पड़ती है।

इतिहास-लेखन में पुरातात्विक साक्ष्यों में अभिलेख बड़े ही महत्वपूर्ण[२६] माने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जाते हैं, क्योंकि उन्हें समकालीन साक्ष्यों की कोटि में रक्खा जाता है। ये एक प्रकार के फरमान या सनद हैं, जिनके लिखाये जाने की परम्परा भारत में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। सम्राट् अशोक के राज्यकाल में उन पर बहुत जोर दिया गया था। वैसे उसके पहले भी लिखाये गये अभिलेख भारत के उत्तरी भागों में स्थित कई स्थानों से मिले हैं। अशोक का साम्राज्य बड़ा विस्तृत था, और उसे उन्हें चिर-काल तक स्थित रखने की इच्छा थी, अतएव उसने अपने अभिलेख शिलाओं, गुफाओं, शिलाखण्डों और शिलास्तम्भों पर लिखवाया, जिनमें से कुछ पहले से विद्यमान थे और कुछ को उसने स्थापित करवाया था। यह परम्परा परवर्ती काल में विकसित होती रही और अभिलेख विभिन्न कालों में विभिन्न वस्तुओं पर लिखाये जाते रहे। शुंगों, कुषाणों, शकों, सातवाहनों, गुप्तों और हूणों ने इस परामपरा को बनाये रक्खा। उत्तरगुप्त नरेशों ने और मौखरि सम्राटों ने भी अपना-अपना लेख लिखवाया। बाद में हर्षवर्द्धन तथा प्रतिहारों और पूर्वमध्यकाल में हुए सभी क्षेत्रीय संप्रभु सत्ताओं ने अपने-अपने अभिलेख लिखवाये। इस युग में एक महत्वपूर्ण विकास इस दृष्टि से यह हुआ कि अभिलेख अब ताम्रपत्रों पर अधिक लिखवाये जाने लगे, क्योंकि सनद के रूप में उनका रखना अधिक सरल था।

इन अभिलेखों के लिखे जाने के अनेक प्रयोजन और अवसर[२७] होते थे। कुछ अभिलेख अफसरों, नौकरों या सर्वसाधारण जनता को कुछ सरकारी आदेश बताने के लिए लिखवाये जाते थे, तो कुछ में सम्राटों, सामन्तों या अन्य प्रशासकों के कार्यों एवं चरित्र का वर्णन किया जाता था। वे प्रायः किसी विशेष विजय के अवसर पर लिखाये जाते थे। कभी-कभी उत्तराधिकारी अपने पिता या पूर्वज के विशेष कार्यों या गुणों को चिरस्थायी बनाने के लिए उन्हें अभिलेख के रूप में लिखाता था। कभी-कभी अभिलेख किसी गुफा, मंदिर या स्थान-विशेष की संस्था-पना के समय लिखाये जाते थे और कुछ उनके जीर्णोद्धार के अवसर पर लिखाये जाते थे। कुछ ऐसे भी अभिलेख होते थे, जो किसी मंदिर या ब्राह्मण के लिए दिये दान का उल्लेख करने के लिये लिखाये जाते थे, क्योंकि शासकों या धनी लोगों के द्वारा दिये गये दान में केवल द्रव्य ही नहीं होते थे, वरन् ग्राम आदि भी दान के रूप में दिये जाते थे, जिनका चिरस्थायी महत्व होता था। ऐसे लेख अधिकतर ताम्रपत्रों पर बाद में लिखाये जाने लगे। अन्य प्रकार के अभिलेखों में मूर्तियों की वेदिका और मंदिरों के द्वार-बिम्ब पर लिखाये गये अभिलेख हैं, जिनमें देवों की प्रतिष्ठा प्रधान वर्ण्य विषय होता था। इनमें कभी-कभी मूर्तिकार के नाम और देव-विशेष का भी नाम लिखा जाता था। इस तरह अभिलेखों के लिखाने के अनेक प्रयोजन और

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अवसर होते थे, अतएव उनकी महत्ता न केवल ऐतिहासिक होती है, वरन् वे सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके वर्ण्य विषय और प्रयोजन से तत्कालीन प्रशासन प्रणाली और विधि भी जानी जा सकती है। साहित्यिक विकास, भाषा तथा लिपि पर तो वे प्रकाश डालते ही है।

हिमाचल प्रदेश में विभिन्न क्षेत्रों से अनेक अभिलेख[२८] मिले हैं, जिनमें कुछ तो प्राचीन काल में और कुछ मध्यकाल में लिखवाये गये। प्राचीन अभिलेख शिलाओं, मन्दिरों, मूर्तियों तथा ताम्रपत्रों पर लिखाये गये थे। यहाँ से मिले कुछ सिक्कों पर लिखाये गये अभिलेख भी उल्लेखनीय है। शिलाओं पर लिखाये गये अभिलेख कन्हिआरा तथा पथिआर नामक स्थानों से मिले है जो काँगड़ा में स्थित हैं। इन दोनों अभिलेखों को लिपि की विशेषताओं और बनावट के आधार पर तीसरी या दूसरी शदी ई० पू० में रक्खा गया है। ये उस समय की धार्मिक तथा आर्थिक दशा पर प्रकाश डालते हैं, क्योंकि एक में एक बौद्ध विहार के निर्माण का उल्लेख है और दूसरे में एक तालाब बनवाने का उल्लेख किया गया है। सिक्कों पर मिले अभिलेख त्रिगर्त, कुनिन्द तथा उदुम्बरों के अर्द्ध गणराज्य और उनके राजाओं का उल्लेख करते हैं। बैजनाथ (काँगड़ा) से प्राप्त गुप्तोत्तर कालीन अभिलेख एक मन्दिर के निर्माण का उल्लेख करता है और सालरू (कुल्लू) से प्राप्त गुप्तकालीन अभिलेख एक प्रशासक तथा विजेता का उल्लेख करता है, जिसने वहाँ एक नगर का निर्माण करवाया था। सतलज नदी पर स्थित निर्मण्ड (कुल्लू) नामक स्थान से प्राप्त ताम्रपत्र एक मन्दिर के व्यय के लिये दिये गये एक ग्राम दान का वर्णन करता है, जिसे सातवीं शदी ई० में किसी समुद्रसेन नामक प्रशासक ने एक ब्राह्मण को दान में दिया था, जो मन्दिर का पुरोहित था। इससे उस स्थान और क्षेत्र के धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति का ज्ञान मिलता है। अन्य अभिलेखों में चम्बा और कुल्लू से प्राप्त ताम्रपत्रों का उल्लेख किया जा सकता है। जिनकी संख्या लगभग दो सौ से अधिक है। इनमें चम्बा से प्राप्त कुछ ताम्रपत्र दसवीं शदी ई० में लिखाया गया मालूम होता है। ये ताम्रपत्र वहाँ के मन्दिरों और ब्राह्मणों के लिए दान का वर्णन करते हैं जिनसे तत्कालीन धार्मिक दशा पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इनमें दान देने वाले राजा, उसके पूर्वज तथा राजगुरु एवं उसकी रानी का उल्लेख किया गया है जिससे वंशावलियों और साहित्यिक ग्रंथों में उल्लिखित राजाओं के नामों को सही-सही जाना जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इनमें से अधिकांश अभिलेख मध्यकाल में लिखवाये गये, अतएव उनकी सहायता से मध्यकालीन चम्बा और कुल्लू का इतिहास अधिकृत रूप से लिखा जा सकता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

चम्बा[२९] के अधिकांश अभिलेख १४वीं शदी या उसके बाद लिखाये गये। इसी तरह कुल्लू के अधिकांश अभिलेख १६वीं शदी या उसके बाद के हैं, जिनकी सूचनायें हमें कागेल, हचिन्सन और हरकोर्ट के ग्रन्थों से मिलती[३०] है और कुछ को कागेल ने केन्द्रीय पुरातत्व विभाग के 'सर्वे रिपोर्ट्स' में प्रकाशित[३१] किया है। इन क्षेत्रों से प्राप्त कुछ अभिलेख मूर्तियों की वेदिका पर भी उत्कीर्ण है जिनमें चम्बा की सबसे प्राचीन मूर्ति आठवीं ई० में रक्खी जाती है। काँगड़ा से प्राप्त बौद्धमूर्ति की वेदिका पर प्राप्त अभिलेख सम्भवतः छठीं या सातवीं शदी ई० का है, जो तत्कालीन बौद्धधर्म एवं संस्कृति पर प्रकाश डालता है। कुल्लू के बजौरा महादेव के द्वार-बिम्ब पर लिखा अभिलेख बहुत बाद में लिखवाया गया।

हिमाचल के इन भागों में कुछ ऐसे शिला-स्मारकों पर अभिलेख मिलते हैं, जिन्हें किसी की स्मृति में स्थापित किया[३२] जाता था। इन्हें कहीं-कहीं पन्हिआर कहते हैं और कहीं-कहीं सती-प्रस्तर शिला। इस क्षेत्र में, भारत के कुछ अन्य भागों की तरह, मध्यकाल में किसी राजा की मृत्यु के बाद उसकी रानी उसका अनुगमन करती थी और अपनी अन्य सौतेली रानियों सहित मृत पति के साथ सती हो जाती थी। उसके साथ कभी-कभी उसकी अन्य रखैल औरतें और दासियाँ भी सती हो जाती थीं। इन सती प्रस्तर–स्तम्भों पर ऐसी अनेक मूर्तियाँ बनाई जाती थीं, जो उनकी द्योतक हैं। इन पर इसीलिए प्रायः अभिलेख भी उत्कीर्ण करा दिये जाते थे, जिससे उस राजा और पारिवारिक रानियों की स्मृति बनी रहे। इस प्रस्तर-स्मारकों और उन पर खुदे अभिलेखों का इस तरह बड़ा सामाजिक महत्व है और उनकी सहायता से मध्यकालीन हिमाचल की सामाजिक दशा का इतिहास लिखा जा सकता है। हो सकता है कि यह सामाजिक रीति-रिवाज प्राचीन हिमाचल में भी प्रचलित रहा हो, अतएव उनका उपयोग प्राचीनकाल का इतिहास लिखने वाले भी कर सकते हैं।

यहाँ इन अभिलेखों के कुछ अवगुणों का भी उल्लेख करना[३३] आवश्यक है। हम पहले ही लिख चुके हैं कि समकालीन साक्ष्य होकर भी इतिहास-लेखन में अभिलेखों का उपयोग बड़ी सावधानी से करना पड़ता है, क्योंकि अतिशयोक्ति के साथ-साथ उनमें अपूर्ण सूचनायें भी मिलती हैं। यहाँ के अभिलेखों में एक दोष यह है कि उनमें प्रायः तिथियों और संवत् का उल्लेख नहीं है। यह बात यहाँ के प्राचीन अभिलेखों के विषयों में अधिक लागू होती है। अतः उनका काल–निर्णय हम उसमें प्रयुक्त लिपि और उसकी विशेषताओं के आधार पर[३४] करते हैं। बाद के अभिलेखों में शास्त्र संवत् सप्तर्षि सम्वत् और कच्चा संवत् का प्रयोग किया गया है, जिसके विषय में हमें बहुत

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कम जानकारी है। उनमें कहीं-कहीं ज्ञात विक्रम संवत् और शक संवत् का उल्लेख है, अतएव उनकी सहायता से हम अन्य अभिलेखों में उल्लिखित संवतों को कुछ कठिनाई और प्रयत्न के बाद जान लेते हैं। लिपियों में ब्राह्मी, खरोष्ठी, शारदा और टांकरी का प्रयोग हुआ है, अतएव उनके विषय में पूर्व जानकारी के कारण अभिलेखों का भी सम्भव काल जान लिया जाता है और उनमें वर्णित विषयों एवं घटनाओं के आधार पर उन्हें सही किया जाता है। कुछ भी हो, ये साक्ष्य यहाँ के इतिहास-लेखन में हमारी बड़ी मदद करते हैं और यहाँ की संस्कृति के विकास का इतिहास इनकी सहायता से अच्छी तरह लिखा जा सकता है।

पुरातात्विक स्रोतों में सिक्कों को भी प्रधान स्थान दिया[१५] जाता है, क्योंकि मिला हुआ एक भी सिक्का किसी राजा या राजवंश का सही परिचायक होता है और उसकी स्थिति मात्र ही वहाँ के आर्थिक विकास पर काफी हद तक प्रकाश डालती है। सिक्कों पर प्रायः कुछ प्रतीक बने होते हैं या शासक विशेष के चित्र बनाये जाते हैं। उन पर अभिलेख लिखवाया जाता है। उनमें प्रयुक्त धातु इतिहास-लेखन में बड़ी मदद देता है। सिक्कों के प्राप्ति-स्थान और उनकी संख्या आदि से राजनैतिक विस्तार या व्यापार की स्थिति जानी जाती है। कभी-कभी उनमें तिथियों का उल्लेख किया रहता है जो इतिहास-लेखन में बड़ा सहायक होता है। उन पर बने हुए अलंकरण, उनकी काट-छाँट तथा उनके आकार-प्रकार आदि विशेषतायें इतिहासकार को उसके कार्य में मदद करती है और उनकी सहायता से वह वहाँ की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्थितियों पर सप्रमाण प्रकाश डालता है।

हिमाचल प्रदेश से कुछ सिक्के मिले हुए हैं। इनमें कुल्लू से प्राप्त वीरयश नामक राजा के द्वारा चलाया सिक्का विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि यह कुल्लू क्षेत्र का सबसे प्राचीन सिक्का माना जाता है। कुछ विद्वान उसे प्रथम शदी ई० पू० में रखते हैं और कुछ प्रथम या दूसरी शताब्दी ई० में हिमाचल के शिमला और काँगड़ा क्षेत्रों से इससे भी पुराने सिक्के मिले हैं, जिन्हे 'आहत सिक्के' कहा जाता है। वे भारत के सिक्कों के इतिहास में सबसे प्राचीन सिक्के माने जाते हैं। ये ताँबे से निर्मित हैं। यहाँ से कुछ काँसे के भी सिक्के मिले हैं, जिन्हें कुषाणों द्वारा चलाया गया सिक्का माना जा सकता है। अन्य प्राचीनसि क्कों में कुछ अन्य ताँबे, चाँदी या काँसे के सिक्के गिनाये जा सकते हैं, जिन पर उत्कीर्ण अभिलेख से यहाँ के प्राचीन अर्द्ध गणराज्यों में त्रिगर्त, उदुम्बर, कुनिन्द तथा यौधेयों के गणराज्य के विषय में प्रमाणित जानकारी मिलती है। इन पर मिले प्रतीकों, लेखों तथा चित्रों

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

से हमें तत्कालीन धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थितियों का ज्ञान होता है। यहाँ के काँगड़ा और शिमला क्षेत्र से हिन्द-युनानी शासकों और कुषाणों के कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनसे हमें इन विदेशी शासकों के इस क्षेत्र में साम्राज्य-विस्तार का ज्ञान होता है।

हिमाचल से परवर्तीकालीन सिक्के बहुत कम मिले हैं। इस क्षेत्र से हमें गुप्त सम्राटों के सिक्के नहीं मिले हैं। इसी प्रकार इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म, हूण तथा प्रतिहार सम्राटों के भी सिक्कों के मिलने की कोई सूचना नहीं है। वैसे प्रतिहारों के सिक्के यहाँ प्रचलित[३६] थे, जैसा कि अभिलेखों से ज्ञात है। साहित्यिक स्रोतों में नगरकोटि के सिक्कों का उल्लेख है जिन्हे महमूद गजनवी लूट ले गया था। बाद के सिक्कों में केवल काँगड़ा के राजाओं के सिक्के मिले हैं। इन्हें वृषभ और अश्वसवार प्रकार के सिक्के कहा जाता है, जो मध्यकाल के प्रारम्भिक भाग में चौहानों, शाही-सम्राटों और मुसलिम सुल्तानों द्वारा चलाये गये थे। काँगड़ा में इस प्रकार के सिक्कों की परम्परा मध्यकाल में प्रचलित थी। मध्यकाल में चम्बा के भी अपने सिक्के चलाये गये थे, जिन्हें बाद में चकली कहा जाता था। इस क्षेत्र में गुप्तकाल से लेकर मध्य काल के प्रारम्भ तक सिक्कों की अप्राप्ति के कई कारण हो सकते हैं। एक तो इनसे यहाँ के क्षेत्रीय शासकों की पराधीनता द्योतित होती है और दूसरे आर्थिक क्षेत्र में विनिमय प्रणाली का भी प्रचलन रहना द्योतित होता है। इस क्षेत्र में उत्खनन कार्यों का न होना यहाँ से सिक्कों के न मिलने का दूसरा कारण हो सकता है। मिले सिक्के भी अब दुर्लभ हैं। कनिंघम ने[३७] इस क्षेत्र से जो सिक्के ढूंढ़-ढूंढ़ कर प्राप्त किये थे, वे सब जहाज के डूबने के कारण खो दिये गये हैं। अतएव किसी भी संग्रहालय में उनकी सूचना अब नहीं मिलती है।

स्मारकों तथा कला-कृतियों से भी किसी भी देश के प्राचीन इतिहास एवं सांस्कृतिक विकास पर प्रकाश[३८] पड़ता है। सांस्कृतिक विस्तार से राजनैतिक विस्तार जाना जा सकता है, क्योंकि राजनैतिक प्रयासों के घनीभूत होने के कारण किसी भी क्षेत्र में संस्कृति के विभिन्न पक्षों का समान विकास होता है। हिमाचल प्रदेश में ऐसी मूर्तियाँ मिलती है, जिन्हें कुषाणकालीन मूर्तिकला के प्रभाव में उत्पन्न माना जाता है। ऐसे ही हिमाचल के अधिकांश प्राचीन मन्दिरों और उनके खण्डहरों के अवशेषों में गुप्तकालीन भवन निर्माण-कला की विशेषतायें देखी जाती है जिससे एक ओर गुप्तकालीन साम्राज्य के इस ओर विस्तार की ओर संकेत मिलता है और दूसरी ओर तत्कालीन भारत के विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों के इस ओर विस्तार के प्रमाण मिलते

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हैं। इससे हर्षकालीन संस्कृति भी सम्मिलित की जानी चाहिए, क्योंकि गुप्तों के काल में उत्पन्न सांस्कृतिक धारायें सातवीं और कहीं-कहीं आठवीं शताब्दी ई० तक पूर्णरूपेण विकसित हुई। हिमाचल से मिली मूर्तिकला के कुछ उदाहरण इस धारा की देन हैं। ऐसी ही धारा-विशेष प्रभाव में काँगड़ा, चम्बा, निर्मण्ड तथा जगत्सुख के प्राचीन मन्दिर और उनके अवशेष गिनाये जा सकते हैं। बाद में प्रतिहारों के काल में विकसित यहाँ की कला तो एकदम स्पष्ट परिलक्षित होती है, जिनके प्रधान उदाहरणों में बजौरा तथा हाटकोटी के शिवमन्दिरों को गिनाया जा सकता है। ऐसे ही उदाहरणों में पूरे हिमाचल से प्राप्त प्रतिहार-शैली में निर्मित मूर्तियाँ गिनाई जा सकती हैं। कुछ जगहों पर यह सांस्कृतिक प्रभाव कुछ देर में पहुँचा होगा, ऐसा भी सोचा जा सकता है। इन सांस्कृतिक सम्पतियों को भी इतिहासकार भारत की प्रमुख राजनैतिक धारा के साथ यहाँ के क्षेत्रों का सम्बन्ध जानने के लिए स्वीकार करें तो इसमें कोई आपत्ति न होगी।

ऐसा करने के लिए पुरातात्विक सर्वेक्षण और उत्खनन आवश्यक होता है, क्योंकि, इससे ऐतिहासिक काल के लिए ही नहीं वरन् प्रागैतिहासिक संस्कृति पर भी प्रकाश डाला जा सकता है।

प्रगतिहास और आदिकालीन संस्कृतियों के ज्ञान के लिए तो पुरातत्व प्रायः सबसे प्रमुख ज्ञान-स्रोत होता[२६] है। पुरातात्विक सर्वेक्षण और उत्खनन दोनों इस दृष्टि से बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। इसी विज्ञान के माध्यम से हिमाचल प्रदेश का प्राचीनतम सांस्कृतिक वातावरण जाना जाता है।

इसमें भूगर्भशास्त्रियों और नृतत्वशास्त्रियों ने समान रूप से योगदान किया है, क्योंकि मानव-इतिहास जानने के लिए पृथ्वी का इतिहास और साथ-ही-साथ तत्कालीन जलवायु एवं भौगोलिक वातावरण जानना भी आवश्यक होता है। सौभाग्य से इस क्षेत्र का भूगर्भशास्त्रीय और नृतत्वशास्त्रीय सर्वेक्षण कुछ सीमा तक किया गया है। इससे इस क्षेत्र के लगभग २०० लाख वर्षों तक का मानव-इतिहास जानना सम्भव हो सका है, जिसका अध्ययन हम अगले अध्याय के प्रारम्भ में विशेष रूप से करेंगे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

3

तृतीय अध्याय

इतिहास की रूपरेखा : राजनैतिक और सांस्कृतिक

(प्रारम्भ से लेकर लगभग १५०० शती ई० पूर्व तक)

प्राचीनतम युग—

हिमाचल प्रदेश का प्राचीनतम इतिहास भारत के अन्य भागों की तरह प्रायः अज्ञात ही है। वैसे एशिया के दक्षिणी भूखण्ड में प्रारम्भिक जीवन के प्रमाण प्रायः इसी क्षेत्र से अब तक प्रकाश में आये हैं, क्योंकि जहाँ आजकल हिमालय की पहाड़ियाँ और घाटियाँ आबाद है, वहाँ अत्यन्त अज्ञात अतीत में धरातल था और पानी से भरी दलदली जमीन थी, जो वनस्पतियों के उगने तथा बढ़ने के लिए उपयुक्त होती है। इसलिए इस क्षेत्र से भूगर्भशास्त्रियों को अनेक ऐसे फासिल्स (पत्थर बनी हड्डियाँ और जीव-अवशेष) प्राप्त हुए हैं, जिनके जीवन का काल आज से लगभग २०० लाख वर्ष प्राचीन माना जाता है। पंजाब विश्व-विद्यालय के भूगर्भशास्त्र विभाग ने तथा केन्द्रीय सरकार के भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग ने इस क्षेत्र से जो फासिल्स ढूंढ़ निकाले हैं उनसे इन बातों की पुष्टि होती है कि सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश जिसमें शिवालिक पर्वत श्रेणियाँ स्थित है, अत्यन्त प्राचीनकालीन जीवों का शरण स्थान था, जिसमें हाथी, गैंडा, घोड़ा, मगर तथा अन्य दलदली जमीनों और ऐसे जंगली प्रदेशों में होने वाले जीव गिनाये जा सकते हैं।

ऐसे ही भौगोलिक और आर्थिक वातावरण में इस क्षेत्र के प्राचीन मनुष्य ने यहां जन्म[1] लिया, जिसके विषय में हमें अभी अधिक ज्ञान नहीं है। हिमाचल के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नालागढ़-क्षेत्र में स्थित हरितालयनगर के पास से ऐसे मानव का फासिल्स रूप मिला है जिसे नृतत्वशास्त्रियों ने 'रामापिथेकस' नाम दिया है, जिससे मानव-जाति का सम्भवतः जन्म हुआ था। इसके जीवन की तिथि लगभग १४० लाख वर्ष पूर्व मानी गई है। अतएव हम कह सकते हैं कि हिमाचल प्रदेश का इतिहास भारत का ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति का इतिहास बताने की क्षमता रखता है।

हिमाचल में पाषाणकालीन संस्कृतियों के भी अवशेष ढूँढ़ निकाले गये हैं। १८५५ ई० में प्रो० बी० बी० लाल ने काँगड़ा क्षेत्र में बानगंगा और उसकी सहायक नदियों के किनारे पुरातात्विक सर्वेक्षण[२] किया और काँगड़ा तथा गुलेर नामक स्थानों के पास स्थित तथा उपयुक्त नदी के किनारे पर बने प्राचीन स्तरों से लगभग ५० ऐसे प्रस्तर निर्मित अस्त्र ढूँढ़ निकाले जिन्हें बनावट और टैक्नीक के आधार पर पूर्व पाषाणकालीन मानव का हथियार माना जाता है। बाद में पुनः दकन कालेज के पुरातत्व के प्रोफेसर आर० वी० जोशी तथा पोलैन्ड के कुछ पुरातत्वविदों ने इसी क्षेत्र का प्रगितिहास जानने के लिये पुनः खोजबीन[३] की। इन्होंने प्रो० लाल की उपलब्धियों की पुष्टि की और कुछ नये प्रस्तरनिर्मित हथियार ढूँढ़ा। बाद में सोलन जिले में स्थित नालागढ़ क्षेत्र में सिरसा सतलज घाटी में पुरातात्विक और नृतत्व-शास्त्रीय सर्वेक्षण किया गया, जिसके परिणामस्वरूप प्रस्तर औजार मिले जो मांस काटने के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। इनमें चापर्स, स्क्रेपर्स तथा फ्लैक्स नामक औजार प्रमुख है, जिनमें अश्यूलियन विशेषतायें पाई जाती है। इसी तरह सिरमौर जिले में स्थित सुकेती खड्ड में भी नहान और नादौन के बीच कुछ हद तक पुरातात्विक सर्वेक्षण किया गया है। प्रो० आर० वी० जोशी और भूगर्भशास्त्रीय सर्वेक्षण विभाग ने मिलकर यहाँ की मानव-बस्तियों को जानने का प्रयत्न किया और उनके उपकरणों की खोज की। यहाँ से भी उपर्युक्त औजार मिले हैं। इन खोजों से इस क्षेत्र को प्राचीनतम संस्कृति पर काफी सीमा तक प्रकाश पड़ा, क्योंकि इन उपकरणों को प्रायः मध्यपाषाण काल के प्रारम्भ में होने वाले मनुष्यों का अस्त्र माना गया है। कुछ विद्वानों ने इनकी समानता पाकिस्तान में स्थित पोटवार क्षेत्र की सोहन नदी घाटी से प्राप्त पूर्वपाषाणकालीन हथियारों से की है। यह निर्णय थोड़ा-सा विवादस्पद है, क्योंकि यह समानता अस्त्रों की टैकनिक और बनावट के आधार पर ही स्थापित की गई है। परन्तु इससे इतना की सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र के मैदानी भागों से लगी पहाड़ी नदी-घाटियों में प्रस्तर कालीन भारतीय मानव रहता था। वह आस-पास उगने-बढ़ने वाली वनस्पतियों तथा जंगली जानवरों से अपनी जरूरत की चीजें प्राप्त करता था। छोटे-बड़े सभी प्रकार के जानवर उसके लिए उपयोगी थे। कुछ को

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वह प्रस्तर निर्मित हथियारों से मारता था और कुछ बड़े तथा खौफनाक जानवरों को भगाकर तथा पहाड़ों से गिराकर या उन्हें दलदल में फंसाकर मारता था। फिर अपने वनाये हथियारों से उनके चमड़ों को छीलता था और उनके मांस को अलग करता था। वही उसका भोजन था। पीने का पानी नदियों से मिल ही जाता था और आस-पास हथियार बनाने के लिए मजबूत पत्थरों की कमी न थी। नदी-घाटी और पहाड़ की कन्दरायें उसके रहने और सोने के लिए उपयुक्त थी। वे जहाँ एक ओर उसे जंगली जानवरों से बचाती थी, वहीं दूसरी ओर वे शीत, वर्षा एवं धूप से भी उसकी रक्षा करती थी। सम्पूर्ण क्षेत्र न तो इतना गर्म था कि वह वहाँ रह ही न सके और न इतना शीतल कि वहाँ पेड़-पौधे ही न उग सके। ऐसे भौगोलिक वातावरण में प्राचीन मानव ने संभवतः यहाँ रहना पसन्द किया। दुर्भाग्य से उसके रहने के स्थान अर्थात् गुफायें अभी प्रकाश में नहीं आई है; अतएव उसकी संस्कृति के अन्य पक्षों पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता है। अनुमानतः अन्य पाषाण-कालीन संस्कृतियों से यह अधिक भिन्न न था।

हिमाचल से नये पाषाणकालीन संस्कृति का विस्तृत ज्ञान हमें नहीं मिलता है। वैसे डा० जी० सी० महापात्रा काँगड़ा जिले में स्थित रोड़ नामक स्थान से कुछ नये पाषाणकालीन प्रस्तर औजार ढूंढ़ निकला[१] है। इससे ऐसा लगता है कि अन्य क्षेत्रों में संभवतः मनुष्यों ने जब पशु-पालन और खेती करना सीखा तो वह वहाँ भी उनसे पीछे न था। इन पहाड़ी घाटियों में भी उसने आस-पास मिली जमीन का उपयोग किया, क्योंकि भोजन-सामग्री इधर-उधर जुटाने से ही उसका काम न चला और उसे खाने की वस्तुएँ उत्पन्न करनी पड़ी। हो सकता है कि उनमें से कुछ पास में स्थित मैदानी भागों में चले गये और वहाँ उन्होंने अपनी एक नई दुनिया को जन्म दिया। कुछ भी हो, हिमाचल के प्राचीन इतिहास की यह कड़ी अभी तक पूर्णरूपेण नहीं जुड़ पाई है और साक्ष्यों के कारण इस ओर हमारा ज्ञान अगर अपूर्ण नहीं तो अधूरा अवश्य है।

कुछ ऐसी स्थिति अभी यहाँ के उस काल की भी है जिसे सैन्धव घाटी संस्कृति कहते हैं। ऐसा लगता है कि पश्चिमोत्तर भारत, अफगानिस्तान तथा विलोचिस्तान में जब ग्रामीण बस्तियाँ पनपने लगी थी और देहाती जीवन एवं संस्कृतियों का वहाँ सूत्रपात होने लगा था तो भारत के ये क्षेत्र भी शायद किसी-न-किसी रूप में मनुष्यों से आवाद रहे। तदनन्तर जब सिन्धु नदी तक उसकी सहायक नदियों तथा अन्य अनेक भागों और स्थानों में नगरीय संस्कृति का जन्म हुआ और हड़प्पा, मोहनजोदड़ो,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कालीवेगा, लोथल तथा तारोपड़ जैस स्थानों पर मैदानी संस्कृति का विकास हुआ तो हिमाचल की ये घाटियाँ प्रायः चरवाहों की श्रेणी में गिनी जाने वाली मानव-जातियों से बसी रही और कहीं-कहीं विशेषकर प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर सभ्य कही जाने वाली बस्तियों से अछूती न रहीं। वैसे इस स्तर की हिमाचल-संस्कृति का ज्ञान हमें प्रायः नहीं के बराबर है और कुछ भी कहना केवल अनुमान करना ही है।

सैन्धव घाटी संस्कृति के विस्तार के प्रमाण हिमाचल के विलासपुर जिले से लगे हुए रोपड़ से प्राप्त हुए हैं। उत्खनन में यहाँ से उस संस्कृति के अवशेष मिले हैं, जिससे उसका विस्तार पहाड़ों की ओर भी इंगित होता है। लेकिन नगरीय और मैदानी होने के कारण पहाड़ों में इस संस्कृति के विस्तार और प्रसार की सम्भावना कम मालूम होती है। फिर भी वह असम्भव नहीं है कि व्यापार के मार्ग से होकर वह इस क्षेत्र में पहुँची हो और कहीं भी थोड़ा-सा मैदानी भाग पाकर उसने वहाँ ठहरने की सोची हो। आक्रमण और मानव जनित आपत्ति-काल में, परवर्तीकाल में मैदानी संस्कृति भागकर पर्वतीय भागों में आकर छिपी है, अतएव ऐसा सम्भव लगता है कि उस युग में भी मनुष्य मैदानों से भागकर यहाँ आया हो और एक नयी संस्कृति का प्रारम्भ किये हो। इसी प्रकार इस क्षेत्र में उत्पन्न वस्तुओं का इस सभ्यता के केन्द्रों से पाया जाना भी इस सम्भावना की पुष्टि करता है।

उत्तरकालीन सैन्धव संस्कृति के इस ओर विस्तार की अत्यधिक सम्भावना है, क्योंकि आलमगीरपुर तथा उत्तर भारत के मैदानी भागों में स्थित यमुना तथा घाघर नदियों के किनारे विकसित इस संस्कृति के नगरों का सम्पर्क पहाड़ी भागों से भी हुआ। यहाँ की काष्ठ-सम्पदा तथा अन्य प्रकार की बेश-कीमती चीजों ने तत्कालीन व्यापारियों को आकृष्ट किया। आवागमन में वृद्धि ने इसमें सहायता की। इसी प्रकार उस संस्कृति के लोग सुरक्षा के हेतु भी इधर आये। ऐसी सम्भावनाओं की पुष्टि इस बात से भी होती है कि ऐतिहासिक युग में यहाँ शैवधर्म का अत्यधिक विकास हुआ। यह धार्मिक परम्परा सैन्धव संस्कृति की ही देन मानी जाती है। प्रसन्नता की बात है कि श्री लालमन द्वारा किये गये थोड़े-बहुत सर्वेक्षण-कार्य से शिवालिक घाटियों में स्थित ऊना तहसील से उत्तरकालीन सिन्धु-सभ्यता की बस्तियाँ खोजी गई हैं तथा यहाँ के अनेक स्थलों पर पेन्टेट ग्रे वेयर (चित्रित धूसर पात्र) भी प्राप्त हुए हैं, जिन्हें प्राचीन आर्यों के साथ सम्बन्धित किया जाता है। भगवानपुरा में जगतपति जोशी द्वारा किया गया उत्खनन इस ओर संकेत करता है और आर्यों तथा सैन्धव घाटी के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लोगों के आपसी सम्बन्धों को कुछ हद तक बताता है। वैदिक साहित्य में इन पर्वतीय क्षेत्रों की जिस भौगोलिक एवं आर्थिक वातावरण का वर्णन है उनसे भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

वैदिक काल

(लगभग १५०० ई० पू० से लेकर ७०० ई० पू० तक)

वैदिक साहित्य में विशेषकर ऋग्वेद इस दृष्टि से अधिक उपयोगी मालूम होता है। इससे यहाँ को जल-व्यवस्था, वनस्पति-जगत और विषयान्तर से अर्थ-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। यह यहाँ की अधिकांश नदियों से परिचित है। रावी, सतलज और व्यास नदियाँ जो इस प्रदेश से होकर बहती हैं, इसमें वर्णित है और कहीं-कहीं यहाँ पनपते और फलते-फूलते उपयोगी वृक्षों का भी इसमें वर्णन है। उदाहरणार्थ, इसमें इस प्रदेश के कुल्लू और लाहौल में उगने वाले कुष्ठ नामक पौधे का उल्लेख मिलता है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि यह पौधा हिमाचल के इन क्षेत्रों में अब भी अत्यधिक मार्ग में मिलता है और औषधि के काम में आने वाला इसका तेल अत्यधिक मात्रा में विदेश भेजा जाता है, जिससे यहाँ के निवासियों को द्रव्य लाभ होता है। इस तरह आर्थिक दृष्टि से यहाँ की संस्कृति में इसका बड़ा योगदान है। सम्भवतः यही हाल प्राचीन काल में भी था। इन क्षेत्रों में लोग इससे अपना जीवन-निर्वाह कुछ अंश में अवश्य करते थे। इसी तरह अन्य पेड़-पौधे भी तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था में मदद करते थे। लकड़ी का व्यापार सम्भवतः कुछ हद तक किया जाता था।

वैदिक ग्रन्थों में ऊनी कपड़ों तथा भेड़-बकरियों का भी उल्लेख है। इस पेशे के लिए ये पहाड़ी क्षेत्र अधिक उपयुक्त थे और भेड़-बकरियों के पालने के अतिरिक्त अन्य कोई व्यवसाय उनके लिए अधिक सुगम नहीं था। आज भी इस प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में गद्दी आदि जनजातियों का यही प्रधान पेशा है। असम्भव नहीं है कि ये जननांतर से इसी क्षेत्र में रहते आये हैं।

इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य में हिमाचल के सन्दर्भ में अधिक सूचनायें नहीं मिलती हैं। वह यहाँ की राजनैतिक दशा के विषय में प्रायः मौन ही है। अनुमानतः संस्कृति के कुछ पक्षों का विकास यहाँ हो चुका था और शासन की कुछ इकाइयाँ और विधियाँ उत्पन्न हो गई थीं। इसकी सूचनायें हमें वेदोतर-कालीन साहित्य से मिलती है, जिसमें पाणिनि को अष्टाध्यायी अधिक सहायक मालूम होती है।

इस ग्रन्थ से हिमाचल के इतिहास के सम्बन्ध में पहली बार अधिक विश्वसनीय

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सामग्री उपलब्ध होती है। इसमें त्रिगर्त नामक जनपद का उल्लेख किया गया है, जिसमें आधुनिक काँगडा और आस-पास का क्षेत्र सम्मिलित था। ऐसा लगता है कि उत्तर-वैदिक-कालीन महाजन पदों के काल में इस क्षेत्र में भी एक छोटे-से जनपद का विकास हो चुका था। इसमें जाति के आधार पर सम्भवतः एक लघुराज्य की स्थापना की गई थी, जिसमें काँगड़ा के पहाड़ी भू-भाग के साथ-साथ कुछ मैदानी भाग भी सम्मिलित था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महाभारत में वर्णित सुशर्मचन्द्र यहाँ का सबसे प्राचीन शासक था, जिसे त्रिगर्त राज्य का संस्थापक माना गया है।

महाभारत में कुछ अन्य गणराज्यों का भी उल्लेख किया गया है जो अत्यन्त प्राचीन काल से इस क्षेत्र में विकसित हो[५] रहे थे। इस साक्ष्य में त्रिगर्तों का उल्लेख यौधेयों. शिवियों, राजन्यों तथा कुछ अन्य गणराज्यों के साथ किया गया है। इसके अनुसार नकुल ने शिवियों और मालवों के साथ इन पर भी विजय प्राप्त किया था। यह स्थिति सम्भवतः सातवीं शताब्दी ई० पू० या उससे भी पूर्व महाभारत-युद्ध के काल में थी, जो साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर दशवीं शदी या उससे कुछ पूर्व घटी ऐतिहासिक घटना मानी जाती है। वास्तव में, हिमाचल का प्रत्येक भाग पाण्डवों से सम्बन्धित पुराकथाओं, जनश्रुतियों और पुरातात्विक स्थानों से भरा पड़ा है। इससे यह मालूम होता है कि उत्तर वैदिक काल में जब जंगलों को काटकर कृषि के लिए नये-नये क्षेत्र प्राप्त करने की कोशिश की जा रही थी और उत्तर-भारत में गङ्गा-यमुना द्वाबे में नगरीय संस्कृति और साम्राज्यवाद का विकास हो रहा था, तथा साथ-ही-साथ कहीं-कहीं अर्द्ध गणतान्त्रिक राज्यों का विकास और विस्तार हो रहा था, तभी इस क्षेत्र में और विशेषकर उससे लगे हुए पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के मैदानी भागों में भी संस्कृति का विकास हुआ था। ऐसा लगता है कि यहाँ उस समय की प्रशासन एवं राजसत्ता की उत्पत्ति और विकास के साथ-साथ सभ्यता के अन्य पक्षों का उदभव और विकास हुआ।

इन राज्य इकाइयों–विशेषकर त्रिगर्त राज्य के सही निर्माण, प्रशासन-पद्धति और स्वभाव के विषय में कुछ कहना प्रमाणस्वरूप नहीं है। ऐसा लगता है कि यह एक अर्द्ध प्रजातन्त्रात्मक जनपद था, जिसका गणाधीश यहाँ का प्रधान शासक होता था। हो सकता है कि प्रारम्भ में यह राजतन्त्रात्मक रहा हो और बाद में अन्य छोटी-छोटी शक्तियों के उदभव के कारण इसे गणतन्त्रात्मक रूप लेना पड़ा हो। वैसे बाद में चलकर मौर्योत्तर काल में यहीं एक लघु गणतन्त्रात्मक राज्य का विकास हुआ था, जिसके सिक्के उसे "त्रकत जनपद" (त्रिगर्त जनपद) कहते[६] हैं। यह बहादुर लोगों

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

का एक जनपद था, जिनका पेशा ही अस्त्र-शस्त्र चलाना था। त्रिगर्त के लोगों को "आयु-जीवी" कहा जाता था। इससे मालूम होता है कि त्रिगर्त के लोग लड़ने के शौकीन होते थे। वे वीर होते थे और आस-पास के राज्यों में जाकर उनकी फौज में नौकरी करते थे। यह असम्भव भी नहीं है क्योंकि जिन क्षेत्रों में कृषि के लिए अधिक जमीन नहीं होती है और जीविका के अन्य साधन कम या नहीं होते हैं वहाँ के लोग अन्य क्षेत्रों में जाकर नौकरी करते हैं और अवसर पाकर फौज में भरती हो जाते हैं।

पाणिनि ने अपने ग्रन्थ में 'त्रिगर्त-षष्ठ' का उल्लेख किया है, जिसका अर्थ अधिक स्पष्ट[७] नहीं है। कुछ विद्वानों ने इसे एक संघ राज्य के लिए प्रयुक्त शासन-इकाई माना है, जिसमें त्रिगर्त का जनपद प्रधान था। यह अर्थ सत्य के निकट जान पड़ता है, क्योंकि यहाँ की पर्वतीय घाटियों में अनेक लघुराज्यों के विकास की जोरदार सम्भावना है। सम्भवतः ज्ञात कुल्लूतों[८] और कुनिन्दों के प्राचीन पूर्वज यहाँ राज्य कर रहे थे। कुल्लू क्षेत्र में निश्चित रूप से कोई राज्य-इकाई थी, क्योंकि वहाँ का सांस्कृतिक वातावरण सुचारु रूप से विकसित हो रहा था। इसमें भगवान बुद्ध ने बाद में जाकर अपना योगदान दिया, जिसका वर्णन हम थोड़ा आगे करेंगे। कुनिन्दों के भी राज्य की स्थापना सातवीं शताब्दी ई० पू० में या उसके कुछ वर्ष पूर्व हो चुकी थी। यह राज्य सम्भवतः इस काल में भी सतलज नदी के पूर्व और यमुना नदी के दोनों ओर स्थित था, जिसमें आधुनिक हिमाचल का सिरमौर-क्षेत्र सम्मिलित है। इस राज्य की राजधानी सम्भवतः स्रुहन थी, जहाँ भगवान बुद्ध गये थे, जैसा कि ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से हमें मालूम होता[९] है। कनिंघम ने इस स्थान को जगाधरी के पास स्थित 'सुघ' नामक ग्राम माना है, जो हमारी समझ से कम सम्भव मालूम होता है। क्योंकि ह्वेनसांग द्वारा वर्णित स्रुहन नामक राज्य की राजधानी यमुना नदी के ठीक पश्चिमी किनारे पर ऐसे स्थान पर स्थित थी, जो कालसी नामक स्थान से दूर नहीं थी। हमारा अनुमान है कि यह स्थान सिरमौर जिले की कायर्दादून घाटी में स्थित था। वह आधुनिक पोन्टा साहिब नामक स्थान के समीप ही कहीं स्थित होना चाहिये। हो सकता है वह सिरमौर की सीमा के पास ही हरियाणा में यमुना नदी के किनारे कहीं स्थित रहा हो।

'त्रिगर्त-षष्ठ' राज्यों में संघटित दूसरा राज्य सम्भवतः शिवियों का था, जिसका उल्लेख महाभारत में किया गया है। साथ ही निकटवर्ती पंजाब के कुछ भागों में भी विकसित जनपद इस संघराज्य के भाग थे, जिनमें औदुम्बरों को भी गिनाया जा सकता है। अन्य दो जनपद सम्भवतः कालकूट और युगन्धर थे, जिनके विषय में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हमें अधिक जानकारी नहीं है। इन सभी जनपदों को पाणिनि ने "पर्वतआयुध जीवी" संघ[१०] कहा है, जो हथियार चलाने में दक्ष होते थे और लड़-भिड़ कर तथा पर्वतीय क्षेत्रों में शिकार आदि करके अपनी जीविका चलाते थे।

बुद्ध युग और मौर्य-काल

(६०० ई० पू० से लेकर १५० ई० पू० तक)

वास्तव में ईसा पूर्व छठी-पाँचवीं शताब्दी में भारत का यह प्रदेश भी सम्य हो चला था और मैदानों में रहने वाले राजाओं, तपस्वियों एवं महापुरुषों के लिए आकर्षण का क्षेत्र बन चुका था। सम्भवतः इसीलिए महात्मा बुद्ध भी इस क्षेत्र में आये थे। ऐसी सूचना हमें ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण में मिलती है। उसके अनुसार उन्होंने आधुनिक काँगड़ा, कुल्लू तथा अन्य क्षेत्रों में अपने धर्म का प्रचार किया था। इस तरह उनके साथ भारत के मैदानी भागों की संस्कृति एवं अर्थ-व्यवस्था का इस क्षेत्र में पदार्पण हुआ और पर्वतीय तथा मैदानी भागों का सम्पर्क धीरे-धीरे बढ़ा। इन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्तरों की ओर संकेत हमें प्रधानतः ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण[११] से मिलता है, जिसका हम आगे चलकर सविस्तार वर्णन करेंगे। पाणिनि द्वारा उल्लिखित राजनैतिक स्थिति पाँचवीं शताब्दी ई० पू० तक चलती रही।

इसके बाद के हिमाचल का इतिहास भारत के अन्य भागों की तरह कुछ अधिक ज्ञात है। ई० पू० चौथी और तीसरी शताब्दियों में इस प्रदेश में पहले विकसित जनपदों की सूचनायें नहीं मिलती हैं। यह भी सम्भवतः अन्य भागों में विकसित छोटे-छोटे गणतन्त्रात्मक और राजतन्त्रात्मक राज्यों की तरह मगध के साम्राज्य में विलीन हो गये। चन्द्रगुप्त मौर्य ने शायद पंजाब के अन्य गणराज्यों के साथ इन्हें भी समाप्त कर दिया और इस तरह यह प्रदेश भी उसके साम्राज्य का एक भाग बन गया। यहाँ की तत्कालीन ऐतिहासिक बातें प्रायः अज्ञात हैं। केवल मुद्राराक्षस में, जिसे विशाखदत्त ने गुप्त काल में लिखा था, विषयान्तर से कुछ सूचनाएँ[१२] मिलती हैं। यद्यपि इसे समकालीन साक्ष्य न होने के कारण अधिक विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता है, फिर भी इसमें प्राप्त सूचनाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसके अनुसार इस समय कुल्लूत का शासक चित्र वर्मा था, जो राक्षस के पाँच सहायक संघ राज्यों में एक था। इसे यहाँ 'म्लेच्छ' कहा गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस समय तक कुल्लूत का राज्य भारत के अन्य भागों के समान राजनैतिक और सामाजिक स्तर तक नहीं पहुँचा था। यद्यपि हीरानन्द शास्त्री ने मुद्राराक्षस में उल्लिखित इस राज्य को अनैतिहासिक व्यक्ति माना है, फिर भी इसे एकदम निराधार

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और कल्पना-प्रसूत कहना सम्भावना से दूर लगता है। इसमें उल्लिखित राक्षस के पाँच सहायक उस संघ राज्य की ओर संकेत करते हैं, जिसे पाणिनि के काल में 'त्रिगर्त-षष्ठ' कहा जाता था। उनमें से कुल्लूतों का राज्य भी एक था। ऐसा लगता है कि मौर्यकाल में यह संघराज्य टूटकर बिखरने लगा था और चन्द्रगुप्त के समय में इस संघराज्य में केवल पाँच ही राज्य सम्मिलित थे, जो बाद में मौर्य सम्राटों की विस्तारनीति और राजतन्त्रात्मक केन्द्रीय सत्ता के कारण बिल्कुल बिखर गये और वे मौर्य साम्राज्य में धीरे-धीरे विलीन कर लिये गये।

कुछ भी हो, अशोक ने जिस साम्राज्य को उत्तराधिकार में प्राप्त किया था, वह हिमाचल तक विस्तृत जान पड़ता है। इस तथ्य के सम्बन्ध में साहित्यिक और पुरातात्विक दोनों साक्ष्य मिलते हैं। ह्वेनसांग के कथनानुसार सम्राट अशोक ने काँगड़ा तथा कुल्लू में बुद्ध भगवान की स्मृति में स्तूप बनवाया था। वास्तव में इन क्षेत्रों में भी अनेक बौद्ध तीर्थ स्थान तब तक विकसित हो चुके थे। भगवान बुद्ध के चरण-रज से यह क्षेत्र पहले ही पवित्र कर दिया गया था। अतएव अशोक ने इन क्षेत्रों में भी कई स्थानों पर बौद्ध स्मारकों का निर्माण कराया। इनमें काँगड़ा और कुल्लू के स्तूप हर्ष के समय तक पूजा के स्थान बने हुए थे, जैसा कि ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से मालूम होता है। इसमें काँगड़ा (चैतड़ू) का स्तूप ह्वेनसांग के समय में २०० फीट ऊँचा था। यह स्तूप चैतड़ू नामक स्थान पर आज भी देखा जा सकता है, जो धर्मशाला से लगभग ५-६ मील दूर है। कुल्लू का स्तूप केवल ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से ही ज्ञात है और उसके अवशेष का ज्ञान हमें नहीं है। हो सकता है कि यह कलथ नामक आधुनिक ग्राम में या आस-पास ही विद्यमान रहा हो।

अशोक के समय में हिमाचल की संस्कृति के विभिन्न पक्षों का विशेष रूप से विकास हुआ जान पड़ता[१२] है। उसके राजकीय संरक्षण में बौद्ध धर्म ही नहीं विकसित हुआ, वरन् उसके साथ दर्शन, लिपि, साहित्य और कला की भी उन्नति हुई। ह्वेनसांग का कहना है कि हिमाचल के काँगड़ा क्षेत्र में भगवान बुद्ध के महा-परिनिर्वाण के ३०० वर्ष पश्चात् महापंडित कात्यायन ने अभिधर्मज्ञान प्रस्थान शास्त्र की रचना की थी। निकट ही जालन्धर, जो बाद में बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र बना, इस समय में भी बौद्ध दर्शन और कला के एक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ जान पड़ता है। यहाँ पर बौद्ध बिहारों और स्तूपों का ही निर्माण नहीं हुआ, वरन् दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में भी बौद्ध विद्वानों ने यहाँ बड़ा योगदान दिया। यही स्थिति कुल्लू घाटी की भी थी। अशोक के संरक्षण के फलस्वरुप यहाँ भी बौद्ध

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

धर्म, दर्शन, कला और साहित्य के क्षेत्र में अतीव उन्नति हुई, जैसा कि ह्वेनसांग कि यात्रा-विवरण से मालूम होता है। आधुनिक शिमला और सिरमौर के क्षेत्रों में और उसके लगे हुए भागों में बौद्धधर्म का प्रचार काफी सीमा तक हो चुका था। निकटवर्ती स्थान अम्बाला और काल्सी बौद्धधर्म के प्रधान केन्द्र बने हुये थे। इसीलिए वहाँ पर अशोक ने स्तूपों का निर्माण करवाया था और ब्राह्मी लिपि में अपने अभिलेख लिखवाये थे, जिसमें हमें उसके शासन की सांस्कृतिक नीतियाँ मालूम होती है। सिरमौर और शिमला के मैदानी सीमा से लगे हुए क्षेत्रों का सम्भवतः ह्वेनसांग ने सुहन नामक राज्य के अन्तर्गत माना है, जो काल्सी से बहुत दूर नहीं था। वहीं आस-पास ही उसकी राजधानी भी स्थित थी, जिसका ज्ञान संदिग्ध है। इस क्षेत्र में भी अशोक के काल में कला का बड़ा विकास हुआ। ह्वेनसांग के अनुसार यहाँ कई संधा-राम बनवाये गये थे और राजधानी में ही अशोक ने स्वयं एक स्तूप का निर्माण करवाया था। ह्वेनसांग का कहना है कि तथागत् बुद्ध यहाँ भी आये थे और अपने धर्म का प्रचार किये थे। मौदगल्यायन और कुछ अन्य अकत् भी अशोक के समय में इस क्षेत्र में धर्म का प्रचार करने के लिये आये थे। ह्वेनसांग का तो यहाँ तक कहना है कि सिंहल देश से भी एक बौधिसत्व (बौद्धभिक्षु) यहाँ धर्म के प्रचारार्थ आया था।

इन क्षेत्रों में इन धर्म प्रचारकों के आगमन के साथ-साथ दर्शन, साहित्य, लिपि और शिक्षा का भी प्रचार हुआ। इसके लिये कई प्रमाण हैं। सबसे बड़ा साक्ष्य तो काँगड़ा जिले में स्थित धर्मशाला से बारह मील दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित पथिआर नामक स्थान से मिला प्राचीन अभिलेख है, जो ब्राह्मी और खरोष्ठी में लिखाया गया था। यह अभिलेख अशोक के राज्यकाल में लिखवाया जान पड़ता है। इसकी ब्राह्मी तीसरी शताब्दी ई० पू० की मालूम होती है, क्योंकि इसके अक्षरों का रूप और उनकी निर्माण-प्रक्रिया मौर्यकालीन ब्राह्मी की ही है। खरोष्ठी लिपि भी मौर्यकाल की ही है, क्योंकि इसका रूप उसके सहबाज गढ़ी तथा अन्य उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों से मिले अभिलेखों के समान है। ऐसा लगता है कि उस समय इस क्षेत्र में ब्राह्मी और खरोष्ठी दो लिपियाँ प्रचलित थी और सम्भवतः लोग संस्कृत और पालि नामक दो भाषायें बोलते, लिखते और पढ़ते थे। इस क्षेत्र से मिले मौर्योत्तर कालीन सिक्कों से भी ऐसी ही सूचनायें मिलती हैं।

इस अभिलेखीय साक्ष्य से तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। इसमें एक तालाब के निर्माण का उल्लेख है, जिसे संभवतः काँगड़ा क्षेत्रीय शासक ने खोदवाया था। यह संभवतः सिंचाई की व्यवस्था के लिये किया गया था। मौर्यकालीन

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सम्राटों ने कृषि पर बड़ा जोर दिया था। इस समय खेती के लिये नई-नई जमीनों को प्रयोग में लाने के लिए सरकारी प्रोत्साहन दिया गया था और अच्छी फसल के लिए नहरों और तालाबों की व्यवस्था की गई थी, जिससे सिंचाई के लिए किसानों को सभी प्रकार की सुविधायें मिल सकें। ये मौर्यकालीन सरकारी नीतियाँ, सुविधायें और व्यवस्थायें कौटिल्य के अर्थशास्त्र और रुद्रदामा के जूनागढ़ अभिलेख से भी ज्ञात होती है।

हिमाचल प्रदेश में जनता की भलाई के लिए की गई इन सरकारी सुविधाओं को भारत की केन्द्रीय सरकार की प्रमुख देन मानना चाहिए। सम्भवतः ऐसी ही आर्थिक व्यवस्था हिमाचल के अन्य भागों में भी की गई थी। परिणामतः कृषि के विकास के साथ-साथ लोगों की आर्थिक दशा भी अच्छी हो गई थी। सम्भवतः लोग अन्य व्यवसायों और उद्योग में भी लगे थे, जिनमें फलोत्पादन, साग और सब्जियों का उगाना, लकड़ी का व्यवसाय, ऊन और औषधियों का व्यापार जो प्राचीन काल से चले आ रहे थे, इस काल में अत्यधिक विकसित हुए, जैसा कि साहित्य में मिले छिट-पुट साक्ष्यों से ज्ञात होता है। ऐसा लगता है कि कुछ व्यापारिक केन्द्र, लघु नगर और कस्बे भी इस समय स्थापित किये गये थे, जिनके विषय में हमें ज्ञान प्रायः नहीं के बराबर है। लेकिन राज्य के विकास तथा संस्कृति एवं व्यापार की उन्नति के कारण ऐसा होना स्वाभाविक और अवश्यम्भावी है।

शुङ्ग-युग और क्षेत्रीय लघुराज्यों का उत्थान और पतन

(लगभग १५० ई० पू० से लेकर लगभग २५ ई० तक)

मौर्योत्तर काल में हिमाचल प्रदेश की यह राजनैतिक इकाई सम्भवतः अधिक दिन तक न चल सकी। मौर्यों के पतन के बाद शुङ्ग वंशीय सम्राट पुष्यमित्र ने सम्भवतः कुछ वर्षों तक इस क्षेत्र को अपने अधीन रखा, जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में ब्राह्मण धर्म और विशेषकर शैव धर्म का बड़ा विकास हुआ। पुरातात्विक साधन तत्कालीन इतिहास लिखने में अधिक[१४] सहायक है। वे साहित्यिक ग्रन्थों में उल्लिखित राजनैतिक दशा की पुष्टि तो करते ही हैं, साथ ही साथ कुछ नई सूचनायें भी देते हैं।

इसमें सिक्के विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो द्वितीय शताब्दी ई० पू० से लेकर द्वितीय शताब्दी ईसवी तक के समय प्रचलित थे। ये हिमाचल के किसी न किसी भाग से अवश्य मिले हैं। लेकिन इनसे फिलहाल इस भाग में शुङ्ग शासकों की गतिविधियों का ज्ञान हमें नहीं मिलता है। ऐसा लगता है कि मौर्य के पतन के बाद मगध का केन्द्रीय

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

शासन हिमाचल तक बहुत दिनों तक नहीं चल सका और पुष्यमित्र शुङ्ग की मृत्यु के बाद ही जैसे भारत के कुछ भाग स्वतन्त्र हो गये और कुछ भाग विदेशी हिन्द-युनानी शासकों के अधीन हो गये, वैसे ही हिमाचल की भी राजनैतिक दशा कुछ बिगड़ गई। संभवतः डेमोट्रियस और मिनेन्डर के पंजाब विजय के बाद शुङ्गों का शासन इस क्षेत्र में समाप्त हो गया और उसके कुछ भाग पर इन विदेशी शासकों ने अधिकार कर लिया और यहाँ के मैदानी भागों से मिले क्षेत्रों के शासकों को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। इसके लिए सबसे बड़े प्रमाण हिन्द-युनानी सिक्के हैं, जो काँगड़ा-क्षेत्र में स्थित कुछ स्थानों से मिले हैं। उदाहरणार्थ, अपालोडोट्स के अत्यधिक रजत सिक्के ज्वालामुखी से मिले हैं, जो हिन्द-युनानी राज्य के इस क्षेत्र में विस्तार के द्योतक हैं। प्रो० एलन के अनुसार, जिन्होंने भारत के प्राचीनतम सिक्कों का विस्तार से अध्ययन किया है, अन्टिआकस द्वितीय, फिलोजेनस, लीसिअस, अन्टिआलकाइडस और मिनेण्डर के भी कुछ रजत सिक्के काँगड़ा से मिले हैं। इन सिक्कों के प्रचलन का समय द्वितीय शताब्दी ई० पू० का उत्तरार्द्ध जान पड़ता है, क्योंकि इन पर युनानी सिक्कों का प्रभाव है और ये ऐसे कब्रगाह से मिले हैं, जिसका समय लगभग एक सौ ई० पू० माना[१५] गया है। इन साक्ष्यों से यह प्रमाणित होता है कि हिन्द-युनानी विजेताओं ने पंजाब के मैदानी भागों के साथ-साथ हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया था। वे वहाँ कुछ समय तक अधिकार किये रहे और शासन करते रहे। ऐसा लगता है कि यह क्षेत्र कुछ समय के लिए उनके उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त भारतीय साम्राज्य का अभिन्न अंग बन गया था।

परिणामतः हिमाचल का यह भाग विदेशी सभ्यता के सम्पर्क में भी आया और उससे भी इसने कुछ सीखा। देशी संस्कृति के पोषक ये हिन्द-युनानी विजेता साहित्य, दर्शन, कला तथा अन्य सांस्कृतिक पक्षों में दक्ष थे। इनके आगमन से इस क्षेत्र के व्यापार में भी प्रगति हुई और हिमाचल प्रदेश ने विदेशी आर्थिक व्यवस्था में भी भाग लिया। इस क्षेत्र की उत्तम वस्तुएँ, जिनमें इस क्षेत्र का ऊन प्रमुख था, इसके और इनके साम्राज्य के माध्यम से वैक्ट्रिया होते हुए पश्चिमी एशिया, युनान, रोम तथा मध्य एशिया के बाजारों तक पहुँची। यह भाग बौद्धधर्म एवं संस्कृति का भी केन्द्र था, अतएव इनके सम्पर्क से यह धर्म और कला भी विदेशों में गई। लेकिन इस क्षेत्र के अन्य पहाड़ी भागों में इनके साम्राज्य का विस्तार संभवतः न हो सका, क्योंकि इनकी शक्ति और दृष्टि स्वभावतः भारत के समृद्ध मैदानी भागों की ओर अधिक थी। यातायात के साधनों की कमी के कारण यह पर्वतीय क्षेत्र विदेशी प्रभाव से कुछ हद तक दूर ही रहा।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

क्षेत्रीय लघुराज्यों का उत्थान और पतन—

इस राजनैतिक उथल-पुथल के कारण इस क्षेत्र की प्राचीन जनजातियों को अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने का अवसर मिल गया। सम्भवतः इसीलिए रामायण और महाभारत में हम उनका उल्लेख पाते हैं। इन दोनों ग्रन्थों में कूल्लूत लोगों का उल्लेख है। रामायण में कैकेयदेश का वर्णन है, जिसे कुछ विद्वानों ने काँगड़ा से अभिन्न माना है। यहाँ ध्यातव्य है कि इसी क्षेत्र में पूर्वोल्लिखित त्रिगर्त जनपद के बहादुर लोग रहते थे, जो अस्त्र-शस्त्र चलाकर और युद्धों में भाग लेकर अपनी जीविका चलाते थे। वे स्वभावतः वीर और लड़ाकू थे, अतएव वे विदेशी शासकों की अधीनता बहुत दिनों तक न सह सके। समय पाकर इस समय उन्होंने अपने गण-राज्य की स्थापना की और अपना सिक्का चलाकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता घोषित की। इनके सिक्कों पर ब्राह्मी अक्षरों में 'त्रकत जनपद' लिखा है, जिन्हें लिपि-शास्त्र के विकास के आधार पर द्वितीय शताब्दी ई० पू० के पूर्वार्द्ध में रक्खा जाता[१६] है। सिक्कों की प्राचीनता उनके रूप, आकार एवं प्रकार से भी द्योतित होती है। वे आकार में चौकोर हैं और उनके एक तरफ चार मंजिल का स्तूप बना है। उन पर खरोष्ठी में भी संभवतः वही लेख लिखा गया है।

यह जनपद सम्भवतः आधुनिक जलन्धर क्षेत्र के समान विशाल था और रावी तथा सतलज नदियों के बीच में स्थित था। उसका कुछ भाग मैदानी था और कुछ भाग पहाड़ी। जलवायु उत्तम होने के कारण और धरती के उपजाऊ होने के कारण वहाँ उत्तम कृषि होती थी। लोग परिश्रमी होते थे, अतएव इनका जनपद समृद्धि था। उनकी आर्थिक दशा अच्छी थी, जिससे वे विदेशी सत्ता को ललकार करके तथा राजतन्त्रात्मक राज्यों को यथासम्भव उपेक्षित करके अपने गणराज्य की सत्ता को बीच-बीच में कुछ समय को छोड़कर कई शताब्दियों तक स्थापित रखने में सफल रहे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस जनपद का उल्लेख सातवीं शताब्दी ई० में लिखे गये दण्डी के दशकुमार चरित में भी है।

एक अन्य राज्य का ज्ञान हमें मूलतः सिक्कों से ही हुआ है, जिनकी न तो संख्या अधिक है और न जिनके कई प्रकार ही हैं। लेकिन उन पर लिखा छोटा-सा अभिलेख इस प्रदेश के कुल्लू क्षेत्र के इतिहास पर अमूल्य प्रकाश डालता है। इस पर कुल्लूतों के राजा वीरयश का उपाधिसहित उल्लेख[१७] है। मूल अभिलेख है 'राज्ञो कोलूतस्य वीरयशस्य' जिसका अर्थ यह है कि यह सिक्का कुल्लूतों के राजा वीरयश द्वारा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

चलाया गया, जो कुल्लूत लोगों से सम्बन्धित था। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इन शताब्दियों में 'राजा' की उपाधि स्वतन्त्र और सम्प्रभु शासकों द्वारा धारण को जाती थी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि कुल्लूत घाटी में विकसित यह एक राजतन्त्रात्मक राज्य था जिसका राजा वीरयश था। हो सकता है कि कुल्लू घाटो में पहले से ही चले आ रहे कुल्लूतों के गणराज्य का जब मौर्य-साम्राज्य में विलय हो गया तो उसके पतन के बाद वहाँ के लोगों ने राजतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली को स्वीकार कर लिया। यह भी सम्भव है कि पहले वीरयश के पूर्वज मौर्य और शुङ्ग वंशीय सम्राटों के अधीन यहाँ शासन कर रहे थे। बाद में उन्हीं के वंशज ने समय पाकर स्वतन्त्र अधिसत्ता की घोषणा की और परिणामस्वरुप नया सिक्का चलाया। इस नये स्वतन्त्र राज्य की स्थिति का ज्ञान सर्वप्रथम हमें मान्य पुरातात्विक[१८] स्रोत से होता है, अतएव हिमाचल की वादियों में ऐसे राजनैतिक विकास को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। कुल्लू की उपजाऊ घाटी और उत्तम जलवायु ने राज्य की आधारभूत अर्थव्यवस्था को सुलभ बनाया और परिणामस्वरुप सांस्कृतिक और आर्थिक विकास के लिए रास्ता साफ किया। कुल्लू घाटी में राजनैतिक विकास की यह दशा सम्भवतः ईसा पूर्व द्वितीय या प्रथम शताब्दियों में थी, यद्यपि रेप्सन ने लिपिशास्त्र के विकास के आधार पर इन सिक्कों को प्रथम या दूसरी शताब्दी ईसवीं में प्रचलित बताया है, जिसे अन्य विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। एलन महोदय ने इसे हिमाचल का अत्यधिक प्राचीन सिक्का माना है और उसके आधार पर वीरयश को द्वितीय या प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व का राजा स्वीकार किया[१९] है। यह स्थिति तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों के विकास को देखते हुए अत्यन्त सही मालूम होती है।

ईसा पूर्व इन्हीं शताब्दियों में हिमाचल के किन्नौर, सिरमौर और सम्भवतः शिमला क्षेत्रों में एक-दूसरे अर्द्ध गणराज्य की स्थापना हुई, जिसे इतिहासकार कुनिन्दों का गणराज्य मानते हैं। इनकी स्थिति और इतिहास का ज्ञान हमें कई स्रोतों से होता है। महाभारत में उनका उल्लेख है और उन्हें हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों का निवासी बताया गया है। उनका उल्लेख टालमी ने भी 'कुनिन्द्रिने' कहकर किया[२०] है और उन्हें व्यास, सतलज तथा यमुना नदियों के उद्गम स्थान का निवासी कहा है। बाद के साहित्य में भी कुनिन्दों का उल्लेख है। उदाहरणार्थ, बराहमिहिर की बृहत्संहिता में उन्हें भारत के उत्तरी क्षेत्र में रहने वाले कश्मीरी, कुल्लूतों और सैन्धव लोगों के साथ वर्णित किया गया[२१] है। इसमें इन्हें कुलिन्द कहा गया है, जिसका वर्णन विष्णुपुराण में भी मिलता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

परन्तु सिक्के इनके इतिहास और हिमाचल को इनकी देन जानने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण साधन[२२] है। इनके प्राप्त सिक्कों की संख्या अत्यधिक है, जो हिमाचल के विभिन्न भागों से मिले हैं। (देखिये चित्र २४) एलन महोदय ने इन्हें क्रम और प्रचलन-काल की दृष्टि से दो उपविभागों में बाँटा है, जिसमें प्रथम विभाग के सिक्के प्रथम शताब्दी ई० पू० में प्रचलित थे और दूसरे विभाग के सिक्के तीन शताब्दी बाद चलाये गये थे। इनके इस प्रकार के विभाजन से ही कुनिन्दों का इतिहास जाना जाता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि हिमाचल के इन भागों में शुङ्गकाल के पतन के बाद और हिन्द-युनानी शासकों के पराजय के पश्चात् कुनिन्दों ने अपने राज्य की स्थापना की और अपने स्वतन्त्र सिक्कों का प्रचार किया।

इनके प्रारम्भिक सिक्के चाँदी और तांबे के बने हैं। विद्वानों की धारणा है कि ऐसे सिक्कों के आकार एवं प्रकार हिन्द-युनानो शासकों के सिक्कों से प्रभावित है। इस तथ्य से भी उनके प्रचलन का समय और उनके निर्माता कुनिन्दों का शासन-काल हिन्द-युनानी शासकों के पतन के बाद ही जान पड़ता है। इस तरह यह प्रमाणित होता है कि ये शासक प्रथम शताब्दी में ही अपनी राजसत्ता को स्वतन्त्र घोषित कर सके।

यह राज्य सम्भवतः अर्द्धराजतन्त्रात्मक या अर्द्धगणतन्त्रात्मक था। इन सिक्कों पर महाराज अमोघभूति के नाम का उल्लेख है, जो इस राज्य का ज्ञात प्रथम प्रतापी शासक मालूम होता है। वह कुनिन्द जाति से सम्बन्धित था और उन्हीं लोगों की सहायता से वह राज्य का प्रशासक था। 'महाराज' की उपाधि ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों लिपियों में उत्कीर्ण हैं। इससे यह सन्देह होता है कि इस समय कुनिन्दों का गण-प्रशासक राजतन्त्रात्मक नीतियों का पालन कर रहा था। यह वास्तव में हिन्द-युनानी शासन-पद्धति और राजनीति का प्रभाव जान पड़ता है। यह तथ्य इस बात से भी परिलक्षित होता है कि 'महरजस' उपाधि खरोष्ठी में सिक्कों पर उसी प्रकार लिखी गई है, जैसे वह हिन्द-युनानियों के सिक्कों पर उनके लिए लिखी जाती थी। कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि अमोघभूति कुनिन्दों का राजा था। उसने इन सिक्कों को प्रचलित किया था और समय पाकर अपनी शक्ति को काफी दूर तक फैलाने का प्रयत्न किया था। वैसे डा० के० पी० जायसवाल ने 'अमोघभूति' शब्द को राजा का नाम न मान कर उसकी एक सरकारी उपाधि मानी है, जिससे उनके अनुसार यह लक्षित होता है कि वह अत्यन्त समृद्ध एवं शक्तिवान् था। परन्तु एक ही सिक्के पर 'राजा' का दो बार प्रयोग और साफ-साफ यह कथन कि वह कुनिन्दों

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

का राजा है--इस बात के लिए कोई सन्देह ही नहीं छोड़ता कि वह एक स्वतन्त्र प्रशासक का नाम है। अतः एलन जैसे विद्वानों का यह मत अधिक उपयुक्त मालूम होता है कि अमोघभूति कुनिन्दों का प्रधान प्रशासक था। उसके नाम के अर्थ से उसके राज्य का शक्तिमान् और समृद्ध होना तो व्यञ्जित होता ही है। संभवतः उसका साम्राज्य पहाड़ी और लगे हुए पंजाब के कुछ उपजाऊ मैदानी भागों तक विस्तृत था। अतः उसे साधनों की कमी नहीं थी। कुनिन्दों की जाति बहादुर तो थी ही। अतएव समय पाकर तथा साधनों को जुटाकर उन लोगों ने अपनी एक विशाल सेना का निर्माण किया, जिसकी सहायता से उन्होंने न केवल विदेशी हिन्द-युनानी शासकों को हराया, वरन् आस-पास के क्षेत्रों का विजय भी किया।

कुनिन्दों के सिक्के हिमाचल के कई भागों से मिलते हैं, जिससे उनके राज्य के विस्तार और उनके प्रभाव-क्षेत्र के फैलाव का ज्ञान होता है। से ५४ रजत सिक्के हिमाचल के हमीरपुर जिले में स्थित पलपमेवा नामक स्थान से अपोलोडोट्स के इक्कीस सिक्कों के साथ मिले हैं। ज्वालामुखी से भी तीन रजत सिक्के उसी के तीस सिक्कों के साथ प्राप्त हुए हैं। वैसे इनके सिक्के अधिकतर और अधिक संख्या में अम्बाला और सहारनपुर के बीच के क्षेत्रों से मिले हैं। लेकिन ये सिक्के बाद में विकसित कुनिन्द राज्य के सिक्के मालूम होते हैं। कुछ भी हो, कुनिन्दों के राज्य के विकास का क्षेत्र शिवालिक पहाड़ियों की तलहटी में स्थित यमुना और सतलज नदियों के बीच और व्यास तथा सतलज नदियों की ऊपरी घाटियों में सुरक्षित था और वहीं उनका मूल निवास-स्थान था। हिमाचल का किन्नौर जिला, शिमला तथा सिरमौर का कुछ भाग कुनिन्दों का कार्य-क्षेत्र मालूम होता है। परन्तु दुर्भाग्य से उनके सिक्के इन क्षेत्रों से अब तक प्रायः नहीं खोजे गये हैं, केवल अर्की से ही कुछ कुनिन्द सिक्के मिले हैं जो शिमला से लगभग तीस मील दूर स्थित है। इससे भी उपयुक्त कथन की पुष्टि होती है।

अमोघभूति वास्तव में इस क्षेत्र का एक प्रतापी शासक ही नहीं वरन् अपने समय का सम्भवतः सबसे बड़ा महत्वाकांक्षी और विजेता भी था। उसने चारों तरफ विजय करके अपने राज्य का विस्तार करना चाहा। मैदानी भागों में उसने शकों को पराजित किया और अपने राज्य का विस्तार किया तथा काँगड़ा क्षेत्र में औदुम्बरों को पराजित करके कुछ समय के लिए उनके राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। यह बात इस क्षेत्र से उसके सिक्कों की प्राप्ति से ही नहीं सिद्ध है, बल्कि औदुम्बर शासकों के द्वारा उससे सिक्कों के अनुकरण से भी यह बात सिद्ध होती है। औदुम्बरों

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के रजत सिक्के उसके सिक्कों के समान है। ज्वालामुखी से उनका एक सिक्का अमोघभूति के तीन सिक्कों तथा अपोलोडोट्स के अट्टाइस सिक्कों के साथ प्राप्त हुआ है। उसका राज्य-काल वास्तव में बड़ा ही समृद्ध था जैसा कि उसके रजत सिक्के के प्रचलन और उनकी उत्तम बनावट और संख्या से ज्ञात होता है। उसने, वास्तव में, ऐसे सिक्के चलाकर बाजार में प्रचलित युनानी रजत सिक्कों का सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से न केवल समानता करने की चेष्टा की, वरन् ऐसा करके विदेशी प्रताप और व्यवस्था को इस क्षेत्र से समाप्त करने का भी प्रयत्न किया।

यह स्थिति शायद बहुत दिनों तक न चल सकी। आर्थिक दृष्टि से कुछ समय बाद उसका पतन प्रारम्भ हो गया, जैसा कि उसके ताम्रनिर्मित सिक्कों के प्रचलन से मालूम होता है। ऐसा लगता है कि औदुम्बरों की बढ़ती शक्ति और शकों की विस्तार नीति के कारण उसे अपने राज्य-काल के अन्त में कुछ समय तक युद्धों में लगा रहना पड़ा। उसके उत्तराधिकारी कुनिन्द शासकों को और भी आपत्तियों का सामना करना पड़ा, जैसा कि बाद के कुछ ताम्र-सिक्कों से मालूम होता है, जो बनावट में और भी खराब है। उन पर उनके अपूर्ण अभिलेख मिलते हैं। यह स्थिति उनको बुरी आर्थिक दशा के परिचायक है और उनके पतन और विलय की ओर संकेत करते हैं। वास्तव में ई० पू० प्रथम शताब्दी के अन्तिम दशक तक एक ओर शकों का विस्तार हो रहा था और दूसरी ओर प्रथम शदी ईसवी में कुषाणों का आक्रमण शक्तिशाली हो गया था। हुविष्क और कनिष्क विजयों के फलस्वरूप कुषाण-साम्राज्य के विस्तार के सामने कुनिन्दों की न चल सकी और अन्त में कुछ समय के लिए उनका पतन अवश्यम्भावी हो गया।

कुनिन्दों का यह राज्यकाल हिमाचल के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्तर मालूम होता है जहाँ एक ओर राजनैतिक दृष्टि से इस क्षेत्र के लोगों को चेतना मिली वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ सम्भव हो सकी। उन्होंने कम से कम एक शताब्दी के लिए संस्कृति के विभिन्न अंगों के विकसित होने का अवसर प्रदान किया। भाषा और लिपि, शिक्षा और साहित्य, धर्म तथा कला सभी का इस क्षेत्र में बड़ा विकास हुआ, जिसका विशद वर्णन हम आगे करेंगे।

इस समय औदुम्बरों के राज्य की पुनः स्थापना इस क्षेत्र के राजनैतिक इतिहास का दूसरा महत्वपूर्ण विकास है। शुङ्ग राजाओं के पतन के बाद और हिन्द-युनानी शासकों के पराजय के पश्चात् काँगड़ा और आस पास के मैदानी भागों में इस जाति

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के शासकों का राज्य स्थापित किया गया था। यह एक बड़ी प्राचीन, बहादुर एवं शासक जाति थी जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं।

कुल्लूतों और कुनिन्दों के समान इनका भी इतिहास साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों से ज्ञात है। महाभारत औदुम्बरों का उल्लेख उत्तर भारत के लोगों के साथ करता है। पाणिनि पर लिखे गये गणपाठ के रचयिता उन्हें जलन्धर के लोगों के साथ रखता है और बराहमिहिर उन्हें मध्यदेश का निवासी बताता है। विदेशी यात्री प्लिनी को भी औदुम्बरों की सूचना थी, लेकिन वह उन्हें कच्छ का निवासी बताता है जिससे यह सिद्ध होता है कि वे इस समय भारत के अन्य भागों में भी बसे हुए थे।

सिक्कों के कुछ माध्यम से उनके सही प्रदेश का ज्ञान होता है। इस क्षेत्र से कुछ ऐसे चौकोर ताम्रनिर्मित सिक्के मिले हैं, जिन पर औदुम्बरों का नाम उत्कीर्ण है। कुछ रजत तथा गोल सिक्के भी मिले हैं, जिन्हें कनिंघम और एलन सही ही औदुम्बरों का ही सिक्का मानते हैं। इनमें ताम्रनिर्मित चौकोर सिक्के शायद सबसे प्राचीन हैं, जो पूर्णरूपेण भारतीय परम्परा में निर्मित हैं और जिन पर किसी भी प्रकार का विदेशी प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता है। औदुम्बरों के कुछ सिक्के ज्वाइलस, वोनोनीज, गोन्डोफरनेज तथा कुषाणों के सिक्कों के साथ भी मिले हैं। इससे यह मालूम होता है कि वे सिक्के इन विदेशी शासकों के सिक्कों से प्राचीन हैं।

औदुम्बरों के सिक्के सम्भवतः कुछ बाद के भी हैं, जो इन प्राचीन सिक्कों से कुछ भिन्न हैं। इनकी निर्माण-शैली, बनावट और आकार-प्रकार पर हिन्द-युनानी शासकों के सिक्कों की विशेषतायें मिलती हैं। इन्हें हम प्रथम शताब्दी ई० पू० के मध्य में रखते हैं। उदाहरणार्थ, वे रजत सिक्के जिन पर घरघोष का अभिलेख मिलता है, इस श्रेणी में गिने जा सकते हैं। इनके एक तरफ दाढ़ी रखे एक पुरुष की आकृति बनी है, जिसका दाहिना हाथ उठा हुआ है। एलन आदि विद्वानों ने इसे हरकुलेस की नकल माना है, जिसे हम लीसिऊस के सिक्के पर पाते हैं। इसके बायें हाथ में सिंह-चर्म लटक रहा है, लेकिन गदा नहीं दिखाया गया है। सम्भवतः यह विश्वामित्र की आकृति है। स्पष्टतः यह हिन्द-युनानी सिक्कों की विशेषतायें हैं। इन्हें हम प्रथम शदी ई० पू० के मध्य में चलाया गया मान सकते हैं। ऐसा एक सिक्का लाहौर संग्रहालय में है।

ऐसी ही कुछ विशेषतायें महादेव औदुम्बर के दो गोल रजत सिक्कों पर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मिलती है, जो ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है। इन पर एक तरफ एक गज बना है और दूसरी तरफ एक वृषभ की मूर्ति खचित है। ये सिक्के अपोलोडोट्स के सिक्कों के समान है और घरघोष के सिक्कों से भी मिलते हैं। इनकी प्रमुख विशेषता इसका खरोष्ठी में लिखा 'रजरज' है, जिसे संस्कृत में 'राजराज्ञः' कहेंगे, जिसका अर्थ है 'राजाओं का राजा'। यह उपाधि भारतीय राजशास्त्र और राजाओं की उपाधि-परम्परा में एक नई उपाधि है, जो हिन्द-युनानी राजाओं की उपाधियों से ली गई है। अतः ये सिक्के जहाँ एक तरफ औदुम्बर महादेव की महानता, सम्प्रभुता और शक्ति के परिचायक है, वहीं दूसरी तरफ वे यह भी दिखाते हैं कि औदुम्बरों ने हिन्द-युनानियों को पराजित करके स्वतन्त्रता घोषित की। उनके राज्य पर अधिकार किया और साथ ही साथ कुछ दिनों तक उनके साथ और प्रभाव में रहने के कारण उनकी संस्कृति, शासन और राजनीति की अनेक विशेषताओं को भी स्वीकार कर लिया।

इस राज्य-वंश का तीसरा शासक रुद्रवर्मा था, जिसके विषय में उसके एक रजत सिक्के से सूचनायें मिलती है। यह सिक्का प्रधानतया महादेव के सिक्कों के समान है। उस पर दाहिनी तरफ देखते एक गज का रूप और कुठार के साथ वज्र की आकृति खचित है, जिससे इस शासक को भी औदुम्बर संघ से सम्बन्धित किया जाता है। खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपियों में 'विजयत (य) रजं वेमकिस रुद्रवर्मस' लिखा है, जिससे राजा की शक्ति और इस क्षेत्र की तत्कालीन राजनैतिक जगत में उसका स्थान मालूम होता है। कनिंघ तथा रैप्सन आदि विद्वानों ने इसमें प्रयुक्त 'विजयत' शब्द को 'विजयी' के अर्थ में स्वीकार किया है, जिससे रुद्रवर्मा के किसी अज्ञात विजय की ओर संकेत मिलता है। सम्भवतः उसने शक्ति उपार्जित करके अपने राज्य का विस्तार करने के लिए किसी दिशा में आक्रमण किया और शत्रु से टक्कर होने पर उसमें सफलता प्राप्त की। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन दिनों पंजाब के कुछ भागों में शकों की शक्ति बढ़ रही थी और वे उधर अपना विजय तथा प्रभाव-क्षेत्र बढ़ा रहे थे। हिमाचल के दूसरे क्षेत्रों में कुनिन्दों की शक्ति अपनी चरम सीमा तक पहुँच रही थी। असम्भव नहीं है कि रुद्रवर्मा के नेतृत्व में औदुम्बरों को इन्हीं शक्तियों में एक से या दोनों से लोहा लेना पड़ा, जिसमें एक स्तर पर उनको विजयश्री मिली और दूसरे स्तर पर उन्हें सम्भवतः पराजय स्वीकार करनी पड़ी, जैसा कि काँगड़ा क्षेत्र से कुनिन्द सिक्कों की प्राप्ति से मालूम होता है।

कुनिन्द, औदुम्बर युद्ध अमोघभूति कुनिन्द के सिक्कों से भी ज्ञात होता है। यह निश्चित है कि दोनों जाति-विशेषों के राज्यकाल बहुत समय तक समकालीन थे

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और दोनों विस्तार-वादिनी नीति के पोषक। विदेशी शत्रुओं से सामना करने के लिए और अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए दोनों को अधिक से अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता थी। अतएव पड़ोसी होने के कारण उनमें टक्कर होना स्वाभाविक था। उनके साम्राज्य-विस्तार का ज्ञान उनके सिक्कों की प्राप्ति से ज्ञात होता है। ये सिक्के इस क्षेत्र में स्थित कई स्थानों से मिले हैं। कनिंघम को पठानकोट के उत्खनन में इनके कई सिक्के मिले थे। उन्होंने ज्वालामुखी से भी उनके सिक्के खोज निकाले थे। १९१३ ई० में काँगड़ा जिले में स्थित रुरिप्पल नामक स्थान से औदुम्बर सिक्कों का एक विशाल ढेर मिला था, जिसे आर० डी० बनर्जी ने बाद में प्रकाशित किया। इनका आकार-प्रकार पहले के ही सिक्कों के समान है। इनके अध्ययन से उनके शासन-काल की अन्य बातों पर भी प्रकाश पड़ता है।

औदुम्बरों का शासनकाल हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा-चम्बा क्षेत्र के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लगभग दो शताब्दियों तक उनके समय में यह क्षेत्र राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित होता रहा। उनके संरक्षण में संस्कृति के विभिन्न पक्षों जैसे लिपि, भाषा, शिक्षा, साहित्य, कला तथा धर्म एवं दर्शन का पर्याप्त रूप से विकास हुआ। सिक्कों पर मिले अभिलेखों में ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों का प्रयोग किया गया है। इनमें प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं का प्रयोग मिलता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि इस क्षेत्र के कुछ भागों में संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था और कुछ भागों में प्राकृत बोली जाती थी या एक ही भाग में विभिन्न लिपियों और भाषाओं के जानने वाले रहते थे। इन्हीं सिक्कों पर मिले चिन्हों और प्रतीकों से इस क्षेत्र में इन दिनों विकसित शैव-धर्म के इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। इस धर्म को राज-प्रोत्साहन और संरक्षण प्राप्त हुआ था। लेकिन शासक वर्ग धर्म-साहिष्णुथा, अतएव बौद्धधर्म भी पूर्ववत् विकसित होता रहा।

यह राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थिति बहुत दिनों तक न चल सकी। भारत पर विदेशी आक्रमण का प्रकोप पुनः जोरदार हो गया। विदित ही है कि हिन्द-युनानी आक्रमण के बाद भारत पर शकों, पार्थियों तथा कुषाणों ने हमला किया। शकों तथा पार्थियों ने सम्भवतः अपनी दृष्टि अधिकतर पास के मैदानी भागों पर ही लगाई, क्योंकि हिमाचल में इन दो विदेशी राजवंशों के शासन के प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। पठानकोट से प्राप्त सिक्कों के ढेर में ज्वाइलस, वोनोनीज तथा गोन्डोफरनेज के कुछ सिक्के मिले हैं। जिससे यह सिद्ध होता है कि इन आक्रमणकारियों ने हिमाचल

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

से लगे मैदानी भागों पर कुछ वर्षों तक शासन किया। लेकिन इनके आक्रमण के तूफान को हिमाचल की पर्वत और घाटियों में बसे और इन दिनों फलते-फूलते अर्द्ध-गणतन्त्रात्मक राजवंशों ने रोक दिया। इन देशी राजाओं के साथ शकों के सम्भावित संघर्ष की चर्चा हम ऊपर कर ही चुके हैं, जिसमें सम्भवतः औदुम्बरों और कुनिन्दों ने उनका डटकर और सफल सामना किया।

कुषाणों का उत्थान और पतन

(२५ ई० से लेकर २०० ई० तक)

परन्तु ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी में बलवान तूफान की तरह आये हुए कुषाणों के आक्रमण का सामना वे न[२३] कर सके। उनके समक्ष उन्होंने अपना हथियार डाल दिया। इसका प्रमुख कारण इन देशी राज्यों का आपसी संघर्ष और मनमुटाव हो सकता है। कुषाणों की शक्ति प्रबल थी। वे मध्य एशिया और बैक्ट्रिया से हटकर नये-नये प्रदेशों को जीतने और उन्हें अपना घर बनाने के लिए कृतसंकल्प थे। उन्होंने वैमकेडफाइसेस, हुविष्क तथा कनिष्क के नेतृत्व में भारत के कुछ भागों को जीत लिया। यद्यपि पंजाब और उत्तर प्रदेश का मैदानी भाग उनका प्रमुख कार्य-क्षेत्र था, फिर भी हिमाचल की इन सुहावनी घाटियों ने भी उनका ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने शिमला-सिरमौर तथा काँगड़ा आदि क्षेत्रों को जीता और उन्हें अपने विशाल साम्राज्य का अंग बना लिया, जैसा कि यहाँ से उनके सिक्कों की प्राप्ति से मालूम होता है।

कुषाणों के सिक्के हिमाचल के कई भागों से मिले हैं। वेमकेडफाइसेस के ३८२ ताम्र निर्मित सिक्के कालका-कसौली सड़क पर स्थित एक स्थान से मिले हैं। इनके साथ कनिष्क के भी चालीस सिक्के प्राप्त हुए हैं। वेमकेडफाइसेस के दो सिक्के, कनिष्क का एक और वासुदेव का एक सिक्का काँगड़ा में स्थित कन्हिआरा नामक स्थान से भी मिले हैं। इनसे यह सिद्ध होता है कि हिमाचल के ये क्षेत्र विमकेड-फाइसेस के राज्य-काल में ही कुषाणों द्वारा जीत लिए गये थे और ये भाग कुषाण-साम्राज्य के अंग बन गये थे। इस प्रदेश के शेष भागों की इस समय क्या दशा थी—इस पर कुछ कहना प्रमाणपूर्ण न होगा, क्योंकि कुल्लू, लाहौल-स्पिति तथा किन्नौर के क्षेत्रों से कुषाण-शासन के कोई भी प्रमाण नहीं मिले है। लेकिन संभावना इस बात की अधिक है कि ये भाग भी कुषाण साम्राज्य के अधीन थे। चंबा से कुषाण-कालीन कला के उदाहरण मिलते हैं। कुषाणों का साम्राज्य काफी विशाल था।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

यह उत्तर भारत से लेकर मध्य एशिया तक विस्तृत था। अतएव हिमाचल की ये ऊँची पर्वत-चोटियों और उनके गोद में बसी उपजाऊ तथा सुन्दर घाटियाँ उनके विजय-निनाद से अवश्य अंकृत हुई होंगी, ऐसा अनुमान है।

इस समय भी इस क्षेत्र में संस्कृति का विकास निरन्तर गति से होता रहा। लिपि, भाषा और साहित्य का विकास अबाध गति से चलता रहा। ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियाँ तथा संस्कृत और प्राकृत भाषायें पूर्ववत विकसित होती रहीं। धर्म और दर्शन के क्षेत्र में अटूट विकास होता रहा। कुषाण शासक काफी हद तक धर्म-सहिष्णु थे। उन्होंने सभी धर्मों तथा हर प्रकार की कलाओं के फलने-फूलने के लिए सुनहरा अवसर प्रदान किया। परिणामतः इस क्षेत्र में शैवधर्म और बौद्ध-धर्म पूर्ववत् विकसित होते रहे। अधिक रुचिकर बात तो यह है कि ये कुषाण सम्राट काफी हद तक भारतीय बन चुके थे। इनमें से कोई शैवधर्म स्वीकार कर लिये था तो कोई बौद्ध धर्म। अतएव, इन धर्मों के विकास के लिए इन दिनों राजप्रोत्साहन भी मिला। संभवतः इसी कारण जलन्धर, काँगड़ा, कुल्लू, स्रुघ्न तथा हिमाचल के अन्य भागों और स्थानों में धार्मिक भवनों तथा मूर्तियों का निर्माण हुआ, जिसका वर्णन हम विशद रूप से बाद में करेंगे।

आर्थिक दृष्टि से भी इस काल को हिमाचल के इतिहास में विकास का समय मानना चाहिए। कुषाणों के विशाल साम्राज्य ने यातायात और आवागमन की सुविधायें प्रदान की। देशी व्यापार और उद्योग को प्रोत्साहन मिला। हिमाचल के विभिन्न पदार्थ मध्य एशिया तक ले जाये गये। इसी काल में तिब्बत और चीन के साथ इसका व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ा। ऊन, रेशम तथा फलों की उपज में अधिक वृद्धि हुई। परिणामतः इन उद्योगों को यहाँ बढ़ने के लिए अवसर सुलभ हुआ और हिमाचल प्रदेश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हुआ। भारत के मैदानी भागों के साथ भी इसका सम्बन्ध निश्चित रूप से अधिक प्रोत्साहित हुआ, क्योंकि साम्राज्य की एक इकाई होने से मनुष्यों का आवागमन और वस्तुओं का आदान-प्रदान स्वभावतः बढ़ जाता है।

देशी (क्षेत्रीय) राज्यों का पुनरुत्थान

(लगभग २०० ई० से ३५० ई० तक)

कुषाणों के पतन के बाद इस क्षेत्र में देशी राज्यों का पुनः उत्थान हुआ। देशी शक्तियों में जिन्होंने कुषाणों के पतन में बड़ा योगदान दिया था, यहाँ की कुछ राजजातियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यौधेय तथा कुनिन्द जातियाँ बहुत दिन

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

तक कुषाण शासकों की अधीनता न सह सकीं और दूसरी शताब्दी ई० के अन्त में और तीसरी शताब्दी ई० के प्रारम्भ में उन्होंने उनके विरोध में अपना-अपना अस्त्र उठा लिया। यौधेय जाति एक प्राचीन अभिमानी क्षत्रिय जाति थी, जिन्हें किसी के अधीन रहना असह्य था। रुद्रदामा के जूनागढ़ अभिलेख (१५० ई०) से ज्ञात होता है कि शकों के साथ इनका निरन्तर युद्ध होता[२४] रहा। शकमहाक्षत्रय रुद्रदामा के साथ युद्ध करने में इन्हें पराजय मिली और उनकी आर्थिक दशा कुछ समय के लिए खराब हो गई। परन्तु, इनका निवास और कार्यक्षेत्र पंजाब तथा राजस्थान का वह क्षेत्र था जिसकी धरती बड़ी उपजाऊ है और जहां साल भर पानी की सुविधा रहती है। अतएव, कुछ वर्षों बाद वे फिर समृद्ध हो गये, जैसा कि उनके सिक्कों और मुद्राओं पर मिले 'बहुधान्यक' अभिलेख से मालूम होता है। उधर शकों का पतन प्रारम्भ हो गया था। वे उनकी तरफ से निश्चिन्त थे। अतः समय पाकर उन्होंने कुषाणों के विरूद्ध अस्त्र उठा लिया और उन्हें पंजाब के इस मैदानी भाग से खदेड़ कर बाहर कर दिया। प्रायः सभी इतिहासकारों ने कुषाणों के पतन में यौधेयों की बहादुरी, समृद्धि और राजनैतिक दशा को प्रधान कारण माना है। डा० अल्तेकर का कहना है कि इस पुनीत कार्य में उन्हें एक तरफ कुनिन्दों से सहायता मिली और दूसरी तरफ उत्तरी उत्तर प्रदेश में विकसित[२५] आर्जुनायनों से। बास्तव में ये तीनों बड़ी प्राचीन और बहादुर गण-जातियाँ थी, जिन्होंने समय पाकर अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने की कोशिश की। अल्तेकर की तो यहाँ तक मान्यता है कि कुषाणों के विरुद्ध इन तीनों ने एक संघ राज्य बना लिया था, जैसा कि इस क्षेत्र से प्राप्त यौधेयों के कुछ सिक्कों से मालूम होता है। वास्तव में कुषाणों के पतन में अनेक कारणों की देन थी, लेकिन इन गणजातियों का इस ओर योगदान अधिक महत्व रखता है।

कुषाणों के पतन के बाद हिमाचल की राजनैतिक दशा में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था। यौधेयों ने, जो पंजाब में प्रधान रूप से शासन कर रहे थे, समय पाकर काँगड़ा-चम्बा क्षेत्रों में अपने गणराज्य का विस्तार कर लिया। इसका प्रमाण इस क्षेत्र से मिले उनके कुछ सिक्कों से होता[२६] है। इनके सिक्के अनेक प्रकार के है, जिनमें से कुछ अधिक प्राचीन अर्थात् प्रथम शदी ई० पू० के भी हैं। लेकिन उनके बाद के सिक्के जिन्हें लिपि-विकास के आधार पर तीसरी शताब्दी ई० में रक्खा जाता है, इस क्षेत्र से मिले हैं, अतः यह सिद्ध होता है कि कुषाणों के पतन के बाद उन्होंने हिमाचल प्रदेश के उन भागों पर राज्य किया, जहाँ कभी औदुम्बर गण-जाति का शासन था। यह स्थिति सम्भवतः सुमुद्रगुप्त के द्वितीय आर्यावर्त विजय तक बनी रही, जब उसने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अन्य अनेक गण-राज्यों के साथ यौधेयों को भी पराजित किया और उनके राज्य एवं कार्य-क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। ऐसी सूचनायें हमें उसकी प्रयाग-प्रशस्ति में मिलती हैं, जिसमें उसकी विजयों तथा राजनैतिक नीतियों का वर्णन मिलता है।

हिमाचल के इस क्षेत्र के कुछ भागों से कुछ ऐसे भी सिक्के मिले हैं, जिन्हें तीसरी शताब्दी ई० में आसानी से रक्खा जाता है। एलन महोदय इन्हें प्राचीन औदुम्बर जाति से सम्बन्धित मानते हैं, जो यहाँ प्राचीन काल में शासन कर रहे थे। उनका कहना है कि कुषाणों के पतन के बाद इस क्षेत्र में उनका भी पुनरुत्थान हुआ और अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने के लिए उन्होंने यहाँ अपना सिक्का चलाया, परन्तु यह मत अधिक समीचीन नहीं मालूम होता है, क्योंकि ये सिक्के प्रायः होशियारपुर जिले से मिले हैं। उनका आकार-प्रकार भी उन्हें औदुम्बरो के प्राचीन सिक्कों से अलग करता है। राजाओं का नामान्त 'मित्र' शब्द भी इन शासकों को किसी दूसरे राजवंश से सम्बन्धित बताता है। वास्तव में उनके सिक्के और उन पर मिलने वाले चिह्न एवं प्रतीक उन्हें मथुरा के पांचाल राजवंश से अधिक जोड़ते हैं। ऐसा लगता है कि कुषाणों के राज्य-काल में उन्हें इस क्षेत्र में शासन चलाने के लिए भेजा गया था, जिन्होंने उनके पतन के बाद यहाँ अपने एक लघुराज्य की स्थापना की। परन्तु वे बहुत दिनों तक स्वतन्त्र न रह सके। संभवतः यौधेयों की बढ़ती हुई शक्ति के सामने उन्हें झुकना पड़ा। उनकी सत्ता की सूचना हमें चौथी शदी के मध्य तक नहीं मिलती है, क्योंकि समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में उनका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वैसे यह भी उल्लेखनीय है कि उनके सिक्कों पर उन्हें राजा ही कहा गया है, जब कि ई० की इन शताब्दियों में स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान् महान शासक को 'महाराज' की उपाधि दी जाती थी। इस व्याख्या से भी उनकी राजनैतिक दशा समझने में मदद मिलती है। सम्भव है कि वे किसी महान शक्ति के अधीन रह कर शासन कर रहे थे, जिसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

कुषाणों के पतन के बाद प्राचीन जाति कुनिन्दों ने भी अपने गणराज्य की पुनः स्थापना की और नये सिक्के चला कर अपनी स्वतन्त्र सत्ता की घोषणा की। उनका कार्यक्षेत्र सतलज और यमुना नदियों की उपरली घाटियाँ मालूम होती है। दूसरी शताब्दी ई० के अन्तिम चरण में और तीसरी शताब्दी ई० में प्रचलित उनके सिक्के काफी मात्रा में मिलते[२७] हैं। ये कुषाणों के ताम्र सिक्कों की नकल में बने बड़े और मोटे सिक्के हैं। इनके एक तरफ हिरण, वृक्ष और नदी की आकृतियाँ बनी हैं और दूसरी तरफ माला धारण किये हुए शिव की मूर्ति बनी हुई है। साथ में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

'भागवत छत्रेश्वर महात्मनः' अभिलेख उत्कीर्ण है, जिससे ऐसा लगता है कि कुनिन्दों का गणराज्य भगवान शंकर को समर्पित किया गया[२८] था। वास्तव में, यह क्षेत्र कुनिन्द गणराज्य में आ गया था और उसके प्रशासकों ने इस धर्म को स्वीकार कर लिया था। वे शैव दार्शनिकों और विद्वानों के प्रभाव में रह रहे थे, अतएव उनके सिक्कों पर उसका प्रभाव पड़ना आवश्यक था।

कुनिंदों ने प्रारम्भ में यौधेयों के साथ काम किया था और कुषाणों के विलय में प्रशस्त भाग लिया था। उसके बाद प्राय; एक शताब्दी तक उन्होंने स्वतन्त्र शासन किया। लेकिन, ऐसा लगता है वे बहुत दिनों तक यौधेयों के सहायक और मित्र न रह सके। आपसी स्वार्थों ने और यौधेयों की विस्तारवादिनी तथा विजयिनी नीति ने सम्भवतः तीसरी शताब्दी ई० के अन्त में उन्हें स्वतन्त्र न रहने दिया। पहाड़ी राज्य होने के कारण यौधेयों की समृद्धि की तुलना में उनकी आर्थिक दशा भी उतनी अच्छी न थी, अतएव वे यौधेय गणराज्य में धीरे-धीरे समाहित हो गये। सम्भवतः इसीलिए प्रयाग-प्रशस्ति में उनका उल्लेख न तो पराजित गणराज्यों की तालिका में है और न उन्हें प्रत्यन्त राज्यों में ही गिनाया गया[२९] है। हो सकता है कि उस समय तक उनकी शक्ति इतनी क्षीण हो गई थी कि उन्होंने समुद्रगुप्त की शक्ति और कूटनीति के सामने बिना युद्ध किये ही उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। अतः उसकी प्रयाग-प्रशस्ति में उनका उल्लेख करना महत्वपूर्ण ही न समझा गया। कुछ भी हो, गुप्त साम्राज्य के विकास और विस्तार के साथ-साथ हिमाचल के ये राज्य एवं गणराज्य समाप्त हो गये और चौथी शताब्दी ई० के मध्य से भारत के ही नहीं हिमाचल के इतिहास में भी एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ।

गुप्त-साम्राज्य और हिमाचल—

चौथी शताब्दी ई० से लेकर आगे लगभग दो सौ वर्षों के हिमाचल का इतिहास प्रायः अन्धकार में है। कुनिन्दों के राज-शासन का पतन पहले ही हो चुका था। हम पहले ही लिख चुके हैं कि उनका स्थान प्रायः यौधेयों ने ले लिया था। वे मैदानी भागों से समीप वाले हिमाचलीय क्षेत्रों में चौथी शताब्दी के मध्य तक शासन करते रहे, क्योंकि समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में उनका उल्लेख एक शक्ति के रूप में हुआ है। परन्तु, जैसा कि ऊपर हम लिख चुके हैं, समुद्रगुप्त ने अन्य शक्तियों के साथ इन्हें भी पराजित किया और पंजाब के मैदानी भागों की तरह हिमाचल का भी प्रदेश संभवतः उसके साम्राज्य में समाहित हो गया[३०]। परन्तु, उसके कितने भाग पर उसका सही अधिकार हुआ, यह कहने के लिए साक्ष्यों का प्रायः अभाव है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सच बात तो यह है कि गुप्तकालीन हिमाचल का इतिहास हमें ज्ञात ही नहीं है। साक्ष्यों के अभाव में इतिहासकार के लिए संरचना करना उसी प्रकार एक असम्भव कार्य हो जाता है, जैसे सामग्री के बिना कोई महल खड़ा करना। इस समय हिमाचल से गुप्तों का सही सम्बन्ध बताने के लिए न तो कोई अभिलेख मिला है और न गुप्त-वंशीय शासकों द्वारा चलाया गया कोई सिक्का ही अभी तक यहाँ के किसी स्थान से मिला है। तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों में जो सामग्री उपलब्ध होती है, वह उस समय की राजनीतिक अवस्था पर अधिक प्रकाश नहीं डालती है।

यहाँ हम पहले पुराणों के साक्ष्य पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे। पुराणों में वायु, मत्स्य तथा विष्णु प्राचीन माने जाते हैं और उनमें मिलने वाले साक्ष्य प्रायः गुप्त-काल के प्रारम्भिक भागों के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। इन ग्रन्थों में हिमालय की पर्वत-श्रेणियों एवं उपत्यकाओं का सविस्तार वर्णन मिलता है और उसमें उगने-बढ़ने वाले पौधों तथा वृक्षों का भी वर्णन है, जो यहाँ के आर्थिक पक्ष पर कुछ प्रकाश डालते हैं। इनमें कहीं-कहीं इधर निवास करने वाली कुछ जन-जातियों का भी उल्लेख है, जिनमें कीरों, किरातों, कुल्लूतों तथा किन्नरों का उल्लेख किया जा सकता[३१] है। लेकिन उनका यहाँ उल्लेख मात्र किया गया है और उनके जीवन, रहन-सहन तथा अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दशा के विषय में प्रायः कुछ भी नहीं लिखा गया है। उनके राजनैतिक जीवन के सम्बन्ध में भी ये ग्रन्थ मौन हैं और इतिहासकारों के लिए वे कुछ भी सहायक नहीं सिद्ध होते हैं। यही बात कुछ बाद के भी पुराणों के विषय में भी लागू होती है। मार्कण्डेय पुराण में यहाँ की धार्मिक दशा का कुछ उल्लेख हुआ है। यहाँ विशेष कर ब्राह्माण्ड पुराण के एक अंश का उल्लेख किया जा सकता है, जिसे कुलान्त-पीठ के नाम से जाना[३२] जाता है। इसमें हिमाचल के कुल्लू क्षेत्र के कुछ भाग विशेषकर पार्वती-घाटी के भौगोलिक और धार्मिक दशा के विषय में कुछ सूचनायें मिलती हैं। परन्तु इस अंश के सही निर्माण-काल का ज्ञान न होने के कारण इतिहास की दृष्टि से उसका भी पूर्ण लाभ नहीं उठाया जा सकता है। यह भी तत्कालीन राजनैतिक दशा पर बिल्कुल प्रकाश नहीं डालता है। इसी प्रकार पदम-पुराण की भी उपयोगिता कम ही है। यद्यपि इसके कुछ श्लोक यहाँ के पर्वतीय व्यवस्था एवं रहन-सहन पर प्रकाश डालते हैं, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे।

गुप्तकालीन अन्य ग्रन्थों में वराहमिहिर की वृहत्संहिता और विशाखदत्त के मुद्रा राक्षस का उल्लेख किया[३३] जा सकता है, जिनसे इस प्रदेश के सम्बन्ध में थोड़ी-सी जानकारी मिलती है। वराहमिहिर यहाँ रहने वाले कीरों, किरातों और कोलों

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

का उल्लेख करता है, लेकिन वह उनके सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं देता है। विशाखदत्त ने अपने नाटक मुद्राराक्षस में यहाँ के कुल्लू क्षेत्र की राजनैतिक दशा पर थोड़ा-सा प्रकाश डाला है, जो संभवतः गुप्तकाल से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। हम पहले ही लिख चुके हैं कि इस साक्ष्य से मौर्य-कालीन हिमाचल की राजनीति एवं शासन पर प्रकाश पड़ता है। परन्तु विषयान्तर से इतना तो ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र भारत की प्रमुख राजनीतिक धारा से जुड़ा था और वहाँ का तत्कालीन प्रशासक गुप्तवंशीय राजनीति और प्रशासन में किसी न किसी रूप में दखल रखता था।

वास्तव में, समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी काचगुप्त ने इस प्रदेश के कुछ समीपस्थ क्षेत्र का विजय करके अपने अनुगामी शासकों का मार्ग प्रशस्त[३४] किया था। सिक्कों में उसे सभी राजाओं का उच्छेदक कहा गया[३५] है। इससे उसके विजय-अभियानों की ओर संकेत मिलता है। यौधेयों के शासन-क्षेत्र तक तो समुद्रगुप्त ने ही अधिकार कर लिया था, अतएव उसके बाद में स्थित प्रदेशों को जीतने के लिए काचगुप्त को अभियान करना पड़ा। मंजुश्री मूलकल्प में वर्णन मिलता है कि उसने कश्मीर के द्वार-पर्यन्त विजय किया था। यद्यपि यह विवादास्पद है कि इस शब्द से किस क्षेत्र-विशेष से तात्पर्य है, लेकिन जम्मू-क्षेत्र और समीपस्थ हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों को जीतना उसके लिए सम्भव जान पड़ता है। इससे अनुगामी शासकों को आगे विजय करने में मदद मिली।

गुप्तों में अनुगामी सम्राट रामगुप्त बड़ा कायर और कमजोर[३६] निकला। उसके राज्यकाल में हिमाचल की घाटियों में शासन करने वाले खशाधिपति ने संभवतः विद्रोह कर लिया, जिसे दबाने के लिए गुप्त सम्राट को सेना लेकर इधर चढ़ाई करनी पड़ी। इस पर्वतीय युद्ध में उसे पराजय स्वीकार करनी पड़ी। दुर्ग में उसे घेर लिया गया और सन्धि के परिणामस्वरूप उसे अपनी रानी ध्रुवस्वामिनी को खशपिति के हाथ सौंपने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसकी सही सूचना हमें राजशेखर के काव्य मीमांसा में प्राप्त एक श्लोक में मिलती है। शकाधिपति के हाथ रामगुप्त का पराजित होना और असमर्थता में अपनी पत्नी को उसे देने के लिए बचन देने आदि की बातें विशाखदत्त द्वारा लिखित देवीचन्द्रगुप्तम और वाणभट्ट के हर्षचरित आदि ग्रन्थों में भी[३७] मिलती है। इनके अनुसार रामगुप्त के अनुज चन्द्रगुप्त ने अन्त में नारी-वेष धारण करके शक-सम्राट की हत्या की। हर्ष-चरित में वर्णन मिलता है कि अलिपुर (या अरिपुर) में उसने शक-शासक को मारा। फारसी में अबुल हसन अली द्वारा अनूदित ग्रन्थ मजमूल-उत्-लवारीख में भी वर्णन मिलता है कि यह दुर्ग हिमालय की

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पहाड़ी पर स्थित था, जहाँ राम गुप्त को बन्दी बनाया गया था। राजशेखर[३८] भी खशाधिपति को हिमालय की घाटियों का शासक बताता है जो किन्नर देश के समीप स्थित थी। इन बातों को ध्यान में रखकर कुछ विद्वानों ने इसे हिमाचल के किसी भाग का शासक माना है। खश जातियाँ इसी क्षेत्र में अधिक निवास करती है। अतएव कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह गुप्त-खश-युद्ध काँगड़ा की घाटी में बैजनाथ के पास अलीपुर नामक स्थान पर लड़ा गया था। वैसे कुछ कहना है कि यह युद्ध गुजरात-काठियावाद[३९] में या कुमायुँ की घाटी में स्थित कार्तिकेयनगर में लड़ा[४०] गया होगा। लेकिन काव्य-मीमांसा में हिमालय की घाटियों का युद्ध-स्थल के रूप में वर्णन और किन्नरों के साथ उसके सम्पर्क आदि उसे हिमाचल की उपत्यकाओं में ही घटी [४१] घटना बताते हैं। अतएव सिद्ध होता है कि गुप्त सम्राट को अपने विजय-अभियान में तथा यहाँ हुए विद्रोह को दवाने में असफलता मिली लेकिन कूटनीति और छल-छद्म का सहारा लेकर कामुक खशाधिपति की हत्या करके चन्द्रगुप्त ने गुप्त-वंश की लाज रखी। उसने हिमाचल-प्रदेश को अपने अधिकार में पुनः कर लिया।

बाद में कुमारगुप्त ने यहाँ पुनः विजय प्राप्त की, जिसकी गाथा किन्नर प्रदेश की स्त्रियाँ सदैव गाती [४२] रहीं। वह एक कुशल प्रशासक था। उसके राज्यकाल में हिमाचल की इन घाटियों में स्थित छोटे-छोटे लघु क्षेत्रीय राज्य और उनके शासक गुप्त-सत्ता की छत्रछाया में विकसित होते रहे। संभवतः गुप्त सम्राट द्वारा नियुक्त सामन्तों एवं प्रशासकों की देखरेख में यहाँ राजनीति और शासन का विकास हुआ और संस्कृति के विभिन्न पक्षों की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। सिलारू और बैजनाथ नामक स्थानों मे मिले अभिलेखों से इस ओर [४३] संकेत मिलता है। सिलारू अभिलेख में शासक रणहस्तिन का उल्लेख है, जो संभवतः गुप्तों द्वारा भेजा गया एक कुशल सेना-नायक था। उसने आस-पास के क्षेत्रों को जीता और गुप्त सम्राटों की ओर से इन क्षेत्रों के अधिकांश भाग का शासन किया।

इन क्षेत्रों पर गुप्त सम्राटों का विजय और अधिकार कुमार गुप्त के कुछ सिक्कों से भी ज्ञात होता है। ध्यातव्य है कि उसके सिक्कों पर कुमार या कार्तिकेय के रूप एवं नाम[४४] चित्रित है, जिसे हम हिमाचल और उससे लगे पंजाब के प्रदेशों पर पूर्वकाल में राज्य करने वाले औदुम्बरों-कुनिन्दों और यौधेयों के सिक्कों पर पाते हैं। असम्भव नहीं है कि यह प्रेरणा उन्हें इन सिक्कों से मिली हो और ऐसे सिक्कों के चलाने की आवश्यकता इन भू-प्रदेशों पर स्वस्थ एवं सफल प्रशासन चलाने के लिए पड़ी हो।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इसके बाद इस राजनैतिक स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ, ऐसी संभावना अधिक है, क्योंकि कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद एक तो पुरुगुप्त और स्कन्दगुप्त में राजगद्दी के लिए पारिवारिक झगड़े से केन्द्रीय सत्ता कुछ समय के लिए कमजोर हो गई और दूसरे, बाद में स्कन्दगुप्त के राज्य-काल में हूणों का जबरदस्त विदेशी[४५] आक्रमण हुआ। इन कारणों से गुप्त साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने वाली परिस्थितियों का बीजारोपण हुआ। वैसे स्कन्दगुप्त ने अपने बाहु-बल से इन कठिनाइयों पर विजय पाई और साम्राज्य को तुरन्त धराशायी होने से कुछ समय के लिए बचा[४६] लिया। फिर भी, ऐसी परिस्थितियाँ स्थानीय तथा क्षेत्रीय प्रशासकों एवं जातियों को महत्वाकांक्षी बना देती है। अतः असम्भव नहीं है कि मैदानी विद्रोहों को दबाने में लगे हुए गुप्त सम्राट की कठिनाइयों का लाभ यहाँ की जनजातियों ने उठाया हो और अपने स्वतन्त्र शासन की नींव डाली हो। ऐसा कहने के लिए यद्यपि सही साक्ष्य का अभाव है, फिर भी राजतरंगिणी में उपलब्ध कुछ सामग्री इस राजनैतिक संभावना की ओर संकेत करती है जिसका उल्लेख हम कुछ बाद में करेंगे।

बाद में हूणों के आक्रमण से इस राजनैतिक विकास को और भी बल मिला। तोरमाण और मिहिरकुल की शक्तिशालिनी समरवाहिनी ने पूरे पंजाब को रौंद डाला। काफी समय तक इन भागों पर हूणों का शासन रहा। सम्भावना इस बात की भी है कि उन्होंने हिमाचल के कुछ भागों पर भी अधिकार[४७] कर लिया, लेकिन निश्चित रूप से ऐसा कहने के लिए साक्ष्यों का एकदम अभाव है। हिमाचल के किसी भी भाग से न तो हूणों के सिक्के या अभिलेख मिले हैं और न उनकी कोई राजकीय मुद्रा ही यहाँ से मिली है। हमारी सूचना के अनुसार साहित्य में भी ऐसा कहने के लिए कोई सामग्री नहीं मिलती है। संभवतः इन्हीं परिस्थितियों में हिमाचल के कुछ भागों में राजकीय घरानों के शासन करने वाले वंशों का जन्म[४८] हुआ। कल्हण की राजतरंगिणी में उल्लेख मिलता है कि चम्बा और कुल्लू क्षेत्र में छठी शताब्दी ई० से स्वतन्त्र राजसत्ता[४९] विद्यमान था।

हर्षवर्द्धन : हिमाचल के प्रति उसकी नीति—

परन्तु यह स्थिति बहुत दिनों तक न रही। गुप्तों के पतन के कुछ ही दिन बाद पंजाब के थानेश्वर क्षेत्र में वत्सभूति वंश का जन्म हुआ, जिसमें उत्पन्न प्रभाकर वर्द्धन ने एक नये शक्तिशाली साम्राज्य की नींव डाली। इसमें सम्भवतः अम्बाला तथा शिमला-सिरमौर आदि से लगे भू-प्रदेश सम्मिलित थे। उसने हूणों की शक्ति को भी समाप्त करने का प्रयास किया। बाणभट्ट द्वारा लिखित हर्षचरित में यह उल्लेख

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मिलता है कि वह हूणरूपी हरिणों के लिए सिंह था। उसने अपने बड़े पुत्र राज्य-वर्द्धन को हूणों को सीमा से बाहर भगाने के लिए भेजा था। इसमें उसे बड़ी सफलता मिली थी। यहाँ यह कहना तो बड़ा कठिन है कि उस समय हूणों का प्रधान क्षेत्र कौन-सा था, जहाँ से उन्हें निकाला गया था। यहाँ केवल इतना कहना उचित लगता है कि पंजाब के कुछ क्षेत्रों से उसने हूणों को समाप्त कर दिया था। फिर भी थानेश्वर का साम्राज्य उनके आक्रमण के भय से सदैव आतंकित रहा, क्योंकि राज्य-वर्द्धन कन्नौज सम्राट् ग्रहवर्मन के हत्यारे देवगुप्त तथा सशाङ्क को दण्ड देने के लिए जब जाने लगता है तो वह अपने अनुज हर्षवर्द्धन को हूणों के आक्रमण से बचने के लिए चैतन्य करता है। ऐसा हर्षचरित में उल्लिखित है। इससे लगता है कि हूण पंजाब के अन्य सीमान्त क्षेत्रों में चले गये थे, जिसमें हिमाचल का कुछ भाग भी था।

हर्ष के राज्यकाल में हिमाचल की राजनैतिक स्थिति जानने के लिए कुछ अधिक सामग्री उपलब्ध है। बाण का हर्षचरित और ह्वेनसांग का यात्रा-विवरण हमें इस दृष्टि से बड़ी सहायता करते हैं। दोनों समकालीन साक्ष्य होने के कारण अत्यधिक विश्वसनीय भी है। बाण की कादम्बरी से भी विषयान्तर से कुल्लू की राज-नैतिक दशा पर थोड़ा-सा प्रकाश पड़ता है।

ह्वेनसांग, बास्तव में, इस क्षेत्र के कई भागों में स्वयं गया था। उसने वहाँ के धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दशा पर कुछ न कुछ प्रकाश[५०] डाला है। कश्मीर से चलकर वह जलन्धर आया, फिर तमसावन होता हुआ कुल्लू गया। फिर उसने स्रुघ्न, ब्रह्मपुर एवं सुवर्णगोत्र राज्यों की यात्रा की। अपने यात्रा-विवरण में कुछ राज्यों के राजाओं के विषय में वह चुप है और कुछ के विषय में उसने वर्णन किया है। जलन्धर के शासक का विवरण मिलता है कि वहाँ के शासक बूती या बुद्धि को हर्ष ने ह्वेनसांग की देखरेख के लिए कहा था। इससे मालूम होता है कि जलन्धर राज्य और उसका प्रशासक हर्ष के प्रभाव में था। यह राज्य पंजाब के मैदानी भागों में स्थित था जिसमें होशियारपुर और गुरदासपुर आदि जिले सम्मिलित थे। सम्भवतः लगा हुआ कुछ पहाड़ी भाग भी इसके भीतर था, जिसमें काँगड़ा का क्षेत्र सम्मिलित मालूम होता है। इसका कुछ भाग सम्भवत; तमसावन के नाम से भी प्रसिद्ध था, क्योंकि ह्वेनसांग जलन्धर से चलकर पहाड़ी क्षेत्रों तथा पर्वतीय भागों में होता हुआ वहाँ पहुँचता है। ये क्षेत्र हर्ष के, प्रभाव-क्षेत्र के भीतर मालूम पड़ते हैं, क्योंकि ह्वेनसांग को वहाँ सभी सुविधाएँ उपलब्ध हुई थी। यहाँ उल्लेखनीय है कि

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वह हर्ष का राज्य-अतिथि था, जिसकी सुरक्षा एवं सुख-सुविधा की जिम्मेदारी हर्ष पर ही थी। अतएव इन क्षेत्रों में ह्वेनसांग के आगमन मात्र से ही हर्ष के प्रभाव-क्षेत्र या शासन-क्षेत्र का अनुमान लगाया जा सकता है। कुल्लू तो निश्चित रूप से हर्ष के अधीन था, क्योंकि वहाँ के राजा के सम्बन्ध में ह्वेनसांग एकदम मौन है।

हिमाचल के इस क्षेत्र पर हर्ष के प्रभुत्व एवं प्रशासन का ज्ञान एक अन्य साक्ष्य से भी होता है। इसी क्षेत्र में स्थित सतलज नदी के तट पर बसे निर्मण्ड नामक स्थान से एक अभिलेख[५१] मिला है, जिसे लिपि-विज्ञान के आधार पर सातवीं शताब्दी ई० में ही रखा जाता है। इसमें महाराज महासामन्त सर्ववर्मन का उल्लेख मिलता है, जो उस समय इस क्षेत्र का प्रशासक था। यद्यपि अरबमूथन जैसे कुछ इतिहासकार उसे मौरिवंशीय कन्नौज सम्राट् सर्ववर्मन् मानते हैं, लेकिन "महाराज महासामन्त" उपाधि उसे किसी सम्राट का अधीनस्थ क्षेत्रीय सामन्त शासक तताता है। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि उस लेख में उल्लिखित संवत् हर्ष सम्वत् मालूम होता है, जिससे हर्ष के विजय-प्रयाण और साम्राज्य-विस्तार की ओर संकेत मिलता[५२] है। ऐसे ही सम्वत् वाले हर्ष के अभिलेख हर्याना में स्थित पहेवा तथा पिंजोर से भी मिले हैं, जो शिमला-सिरमौर आदि स्थानों से दूर नहीं हैं। ये अभिलेख हर्षवर्द्धन के प्रयाण-मार्ग एवं शासन-मार्गों की ओर संकेत करते हैं। इसी की एक कड़ी निर्मण्ड-लेख से ज्ञात होती है। हर्षचरित में यह स्पष्ट कहा गया है कि उसने अपने साम्राज्य में स्थान-स्थान पर लोकपालों (प्रशासकों) की नियुक्ति की थी, जो उसे प्रशासन में सहायता करते थे। ऐसे ही प्रशासक उसने उन राज्यों में भी नियुक्त किये थे, जिन्हें ह्वेनसांग स्त्रुघ्न, शतद्रु, ब्रह्मपुर तथा सुवर्णगोत्र नाम देता है।

ये राज्य भी हिमाचल से दूर नहीं स्थित थे। स्त्रुघ्न नामक राज्य हिमाचल के शिमला-सिरमौर क्षेत्र में ही कहीं स्थित था। कनिंघम महोदय शतद्रु को पंजाब के सरहिंद नामक स्थान से अभिन्न मानते हैं। ब्रह्मपुर और सुवर्णगोत्र नामक राज्य कुमायूँ, गढ़वाल तथा हिमाचल की अन्य आस-पास की पहाड़ियों में स्थित थे। यहाँ से हिमाचल का किन्नौर-क्षेत्र दूर नहीं है। हो सकता है कि वह भी इस समय इन्हीं राज्यों में से किसी का अंग था, जिसे ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा के योग्य समझा। रावी की घाटी में स्थित चम्बा भी हर्ष के साम्राज्य में था, ऐसी भी कुछ विद्वानों[५३] की धारणा है। वहाँ की तत्कालीन सांस्कृतिक दशा इसकी पुष्टि करती है। इन तथ्यों से इतना स्पष्ट है कि हिमाचल का इतिहास राजनीति की दृष्टि से भारत की प्रमुख इतिहास-धारा से जुड़ा हुआ था और सम्पूर्ण क्षेत्र किसी न किसी रूप में कन्नौज

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के प्रभुत्व और प्रभाव-क्षेत्र के भीतर था।

सांस्कृतिक दृष्टि से तो हर्ष का काल हिमाचल के इतिहास में बड़ा ही महत्वपूर्ण लगता है, क्योंकि गुप्त-काल में भारत के मैदानी भागों की जो संस्कृति यहाँ आने लगी थी उसकी गति अब अधिक बढ़ गई। ललित कला, मूर्तिकला, वास्तु-कला, मूर्त्ति-शास्त्र, लिपि, धर्म, दर्शन एवं साहित्य आदि सभी पक्षों का इस काल में यहाँ बड़ा विकास हुआ। हिमाचल के अत्यधिक प्राचीन मन्दिरों के निर्माण का यह एक अच्छा समय था। हिन्दूधर्म में शैव, शाक्त और सौर धर्म का इस क्षेत्र में विस्तार हुआ। अनेक मूर्तियाँ निर्मित की गयीं और मन्दिरों तथा भवनों को उनसे सुसज्जित किया गया।

हिमाचल में बौद्धधर्म के विकास के इतिहास में तो इसे दूसरा महान् काल मानना चाहिए। ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से यह ज्ञात होता है कि इस प्रदेश के अनेक स्थानों पर बौद्धधर्म का अद्भुत विकास हो रहा था, यद्यपि कुछ स्थानों पर पूर्वनिर्मित बौद्ध विहार इस समय उजड़[५४] गये थे। संस्कृति के इन पक्षों पर हम बाद में अधिक विस्तार से वर्णन करेंगे। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस प्रदेश की संस्कृति के विकास की जो आधारशिला पूर्वकाल में रक्खी गई थी, इस युग में उसे मजबूत किया गया। इससे आगे चलकर गुर्जर प्रतिहारों के राजस्व काल में उन्हें उच्चकोटि तक का अवसर मिल सका।

हर्षोत्तरकालीन हिमाचल—

सातवीं शताब्दी के मध्य में हर्षवर्द्धन की मृत्यु के साथ ही साथ कन्नौज की केन्द्रीय सत्ता का कम से कम डेढ़ सौ वर्षों के लिए पतन[५५] हो गया। उससे भारत के अन्य भागों की तरह इस प्रदेश में भी क्षेत्रीय लघुराज्यों के पनपने का सुनहरा अवसर मिला। यहाँ हम पहले आगे आने वाले लगभग पाँच सौ वर्षों के भारत की प्रमुख राजनैतिक धारा और उसके साथ हिमाचल के राजनैतिक सम्बन्ध का एक सिंहावलोकन[५६] प्रस्तुत करेंगे। और फिर इस क्षेत्र में उत्पन्न लघुराज्यों के उत्थान पर प्रकाश डालेंगे।

ये शताब्दियाँ भारत के इतिहास में क्षेत्रीय राज्यों के विकास और भारत की केन्द्रीय प्रभुसत्ता प्राप्त करने के लिए आपसी युद्ध, होड़ और तनाव[५७] का काल है। वैसे हिमाचल और उसकी क्षेत्रीय शक्तियाँ कभी भी इस दृष्टि से इस होड़ में भाग लेने के लिए लालायित नहीं हुई। इस काल में भी वह राजनैतिक और सांस्कृतिक

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

दृष्टि से उत्तर भारत का ही अभिन्न अंग बना रहा और समय-समय को छोड़कर अधिकांश काजों में कन्नौज को ही अपना राजनैतिक नेता मानता रहा, जो अब भी भारत की राजनैतिक सम्प्रभु सत्ता और एकता के प्रतीक के रूप में विकसित हो रहा था। हर्ष की मृत्यु के बाद यह कुछ समय के लिए राजनैतिक उथल-पुथल का स्थान बना, लेकिन कुछ वर्षों के बाद यहाँ यशोधर्मन नामक एक महान विजेता का प्रादुर्भाव हुआ। उसने कन्नौज और उसके साथ उत्तर भारत की राजनीति की बागडोर अपने हाथ में ली। वाक्यपति राज्य द्वारा विरचित गौडचण्हों नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि उसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को पुनः एक राजनैतिक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया और इस क्षेत्र के विभिन्न भागों को पुनः जीतकर कन्नौज के अधीन किया। उसके मन्दसौर अभिलेख का तो यहाँ तक दावा है कि उसने हिमालय से लेकर महेन्द्र-गिरि (कलिंग) तक विजय किया था और भारत के उन-उन भागों पर भी अधिकार कर लिया था, जिन्हें गुप्त नरेशों और हूण सम्राटों ने कभी नहीं जीता[५८] था। कुछ भी हो, यह स्थिति क्षणिक रही और जिस तेजी से उसका उत्थान हुआ, उसी तरह उसका पतन भी हो गया।

तदनन्तर कुछ वर्षों के लिए उत्तर भारत का इतिहास पुनः अन्धकार में है। इस काल में हिमाचल की इन वादियों में पूर्व उदभूत लघुराज्यों के पुनः विकास करने का अवसर मिला[५९]। लेकिन किस सीमा तक वे स्वतन्त्र थे, इस विषय में साक्ष्यों के अभाव में कुछ कहना अधिक समीचीन न होगा। क्योंकि कुछ समय बाद जब कन्नौज की राजगद्दी पर आयुधवंशीय इन्द्रायुध और चक्रायुध आसीन हुये तो इस क्षेत्र के भी कुछ राजाओं ने भारत के अन्य राजाओं के साथ उसे अपना सम्प्रभु सम्राट माना। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि समय पाकर धर्मपाल ने जब इन्द्रायुध को कन्नौज की राजगद्दी से उतार कर उस पर उसके भाई या पुत्र चक्रायुध को बैठाया तो उसकी अधीनता मानने वाले भारत के अन्य अनेक क्षेत्रों के शासकों में कीर देश का भी शासक था, जिसे हिमाचल के काँगड़ा-क्षेत्र से अभिन्न माना[६०] जाता है। यही स्थिति मंडी-बिलासपुर, शिमला तथा सिरमौर क्षेत्रों की भी रही होगी। अधिक सम्भावना तो यह है कि यह कन्नौज के अधीन प्रशासकों के सीधे अधिकार में था, क्योंकि पंजाब के मैदानी भागों से लगे होने के कारण और इन क्षेत्रों में आवागमन में अधिक कठिनाई न होने के कारण इन क्षेत्रों पर कन्नौज से सीधे शासन करना उसके लिए कठिन कार्य नहीं था। इन क्षेत्रों पर पंजाब के प्रशासकों के लिए सीधा शासन करना बल्कि अधिक सरल था।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इसके बाद गुर्जर, प्रतिहार, विजेता नागभट्ट द्वितीय ने जब चक्रायुध और उसके सहायक धर्मपाल को पराजित करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया, तो लगभग आगे आने वाले ढाई सौ वर्षों के लिए उत्तर भारत की राजनैतिक विच्छिन्नता समाप्त हो गई। साथ ही साथ हिमाचल की इन घाटियों की भी राजनैतिक दशा अधिक सुदृढ़ हो गई।

नागभट्ट ने अपने साम्राज्य का विस्तार भी किया। उसने अपनी कूटनीति, नीति तथा युद्ध-कार्यों से उन क्षेत्रों पर भी अधिकार कर लिया, जो किसी कारण-वश प्रतिहार सत्ता को स्वीकार करने में संकोच कर रहे थे। मिहिरभोज की ग्वालियर प्रशस्ति में सूचना मिलती है कि उसने आनर्त (उत्तर काठियावाड़) मालवा, मत्स्य-प्रदेश (पूर्वी राज्यस्थान), किरात-क्षेत्र (हिमालय क्षेत्र में निवास करने वाली जन-जातियों के स्थान), तुरुष्क (पश्चिम भारत मुस्लिम क्षेत्र) और वत्सक्षेत्र (कौशाम्बी प्रदेश) पर जबरदस्ती अधिकार कर[६१] लिया। यहाँ वह ध्यातव्य है कि हिमाचल के कुछ क्षेत्र जैसे काँगड़ा क्षेत्र—नागभट्ट को पहले उत्तराधिकार में ही मिले थे और यहाँ के शासक ने कन्नौज की अधीनता पहले ही स्वीकार कर ली थी। और हम यह भी पहले कह चुके हैं कि कुल्लू प्रदेश हर्ष के साम्राज्य में ही था। इस तरह इन बातों से यह सिद्ध होता है कि प्रायः सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश नागभट्ट द्वितीय के साम्राज्य का अङ्ग बन गया था।

परन्तु हिमालय की इस राजनैतिक निश्चिन्तता और सुदृढ़ता में समय-समय पर यहाँ के कुछ महत्वाकांक्षी शासकों द्वारा बाधायें अवश्य उत्पन्न की जाती रहीं। इसके कुछ छुट-पुट उदाहरण मिलते हैं। इनमें विशेष करके हिमाचल के भीतरी भागों के शासकों द्वारा कन्नौज-सम्राट के विरुद्ध किये गये विद्रोहों का अनुमान लगाया जा सकता है; क्योंकि एक तो वे भाग वहाँ से बहुत दूर स्थित थे, दूसरे, वहाँ आवागमन के साधन अत्यन्त कठोर थे और तीसरे, कन्नौज पर समय-समय पर दक्षिण भारत, के राष्ट्रकूटों और पूर्वी भारत के पाल नरेशों द्वारा उत्पन्न विपत्तियाँ आती ही रहती[६२] थी। ऐसी स्थिति में कन्नौज के प्रतिहार नरेशों को समय-समय पर अपनी वाहिनी के साथ आकर इन क्षेत्रों के कुछ नरेशों को दबाना पड़ता था।

ऐसी स्थिति सम्भवतः नागभट्ट द्वितीय की मृत्यु के बाद ही उत्पन्न हुई, क्योंकि उसके पुत्र रामभद्र को उत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्रों के राजाओं को जीतने के लिए प्रयाण करना पड़ा था (८३६ ई०), ग्वालियर प्रशस्ति में उल्लेख मिलता है कि उसने सामन्तों की सेना से शत्रुओं को युद्ध में पराजित किया। सोलहवीं शताब्दी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के इतिहासकार फरिश्ता ने भी सम्भवतः किसी विश्वसनीय तथ्यों के आधार पर लिखा है कि कन्नौज के सम्राट रामदेव ने कुमायूँ के राजा को पराजित करने के बाद काँगड़ा के राजा पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी नगरकोट को घेर लिया। वहाँ के शासक को अन्त में हार माननी पड़ी। उसने वहाँ के दुर्गा-मन्दिर में 'सम्राट् के समक्ष आत्म-समर्पण किया और कन्नौज के राजकुमार के साथ अपनी पुत्री का विवाह करना[६३] उचित समझा। फरिश्ता ने कन्नौज के सम्राट का नाम रामदेव लिखा है, जो रामभद्र का दूसरा नाम था। उसने इस विजय-अभियान में जम्मू तक आक्रमण किया था, जिसमें उसे सम्भवतः सफलता मिली थी।

मिहिरभोज के राज्य काल में इस क्षेत्र में विद्रोह की स्थिति सम्भवतः पुनः उत्पन्न हुई, जिसके विरुद्ध उसे एक बार उत्तर पश्चिम की ओर प्रयाण करना पड़ा था। यह उसके राज्य काल में उत्कीर्ण प्रथूदक (करनाल जिले में स्थित पेहोआ) नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख से[६४] मालूम होता है। ऐसा लगता है कि उसने इस विजय-प्रयाण में सतलज के पार कुछ भागों का विजय किया और समरवाहिनी के साथ पंजाब में और आगे बढ़ आया। उसने इसी समय संभवतः जम्मू तथा चम्बा क्षेत्रों को भी जाता जिसका प्रमाण हमें कल्हण की राजतरंगिणी में मिलता है। इसमें उपलब्ध एक श्लोक में कहा गया है कि सम्राट भोज ने ठक्किक परिवार से एक भूखण्ड छीन लिया और उन्हें अपना प्रतिहारी बना[६५] लिया। विद्वानों ने इसे मिहिरभोज द्वारा जम्मू-चम्बा क्षेत्र में किये गये सफल विजय-अभियान का प्रतिफल माना है, जो संभवतः ८८८ ई० के पहले कभी घटा था। लेकिन महेन्द्रपाल के राज्य-काल में (८८३ ई० का उसके कुछ समय बाद) कश्मीर शासक शंकरवर्मन ने उसे वापस ले लिया। ऐसा लगता है कि महेन्द्र पाल जब बिहार और बंगाल के विजयों से लगा हुआ था तभी समय पाकर इस क्षेत्र के कुछ शासकों ने लाभ उठाया।

इसके बाद जब महिपाल गद्दीपर बैठा, तो उसने अपने साम्राज्य की गिरती हुई दीवार को पुनः उठाने की कोशिश की। उसके राजदरबारी कवि राजशेखर ने अपने ग्रन्थ प्रचण्ड पाण्डव (जिसे बालभारत भी कहते हैं) की भूमिका में महीपाल की विजयों का उल्लेख[६६] किया है। इसके अनुसार उसने कुल्लूतों को युद्ध में हराया (अजनि जितकुल्लूतः) और उनके प्रदेश को छीन लिया। यह प्रदेश आधुनिक हिमाचल का कुल्लू क्षेत्र ही था; इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसी श्लोक में उसके द्वारा रमठों पर भी किये गये विजय का उल्लेख है, जिसे अनेक विद्वानों ने पंजाब को हिमाचल क्षेत्र में ही रहने वाली एक जाति माना है, क्योंकि राजशेखर ने अपने काव्यमीमांसा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में उन्हें पृथूदक (कर्नाल जिले में स्थित पेहोआ) से उत्तर में रहने वाली एक जाति कहा है। पुराणों में भी उनका उल्लेख कीरों तथा कुल्लूतों के साथ ही प्रायः किया गया है। अतः संभवतः सतलज की पहाडी घाटियों में कहीं रमठ लोग रहते थे, जिन्होंने समय पाने पर स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए विद्रोह किया, जिसे महीपाल ने दबा दिया। प्रो० बी० वो० मिराशी ने तो यह भी लिखा है कि महीपाल को किसी खशाधिपति का भी सामना करना[६७] पड़ा था, जो हिमाचल के एक भाग का शासक था। इस युद्ध में उसे सफलता मिली थी, जिससे यहाँ को किन्नर-वधुएँ उसके यश को गीत गाया करती थीं। अपने इस मत के पक्ष में उन्होंने राजशेखर के काव्यमीमांसा के उस श्लोक को साक्ष्य माना है, जिसका उल्लेख हम गुप्त नरेश के सम्बन्ध में ऊपर कर चुके हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि कुल्लूतों और रमठों ने महीपाल की प्रभुता स्वीकार कर ली थी और हिमाचल का अधिकांश भाग पुनः कुछ समय के लिए कन्नौज साम्राज्य का अभिन्न अंग बन गया था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अरब यात्री मसूदी ने ऐसा लिखा है कि सिंध-क्षेत्र के ऊँचे भाग कन्नौज सत्ता के अधीन थे।

यह स्थिति देवपाल के राज्यकाल तक बनी रही। इसे एक शाही शासक ने (जो कीरो का शासक था) एक वैकुण्ठ की मूर्ति[६७] दी थी, जिसे उसने मोट-सम्राट से प्राप्त किया था। यह शासक कीरों का शासक था, जिसे अधिकतर विद्वानों ने काँगड़ा की एक प्राचीन जाति माना है। इससे सिद्ध होता है कि देवपाल के राज्य-काल तक काँगड़ा तथा आस-पास के क्षेत्रों के शासक कन्नौज की प्रभुता स्वीकार करते रहे।

इसके बाद कन्नौज की सत्ता गिरने लगी और जैसे अन्य अधीनस्थ क्षेत्र धीरे-धीरे स्वतन्त्र होने लगे। वैसे संभवतः हिमाचल प्रदेश में भी कई छोटे-छोटे लघुराज्य स्थापित किये गये। इस प्रकार दशवीं शदी के मध्य से इस प्रदेश की राजनैतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई और क्षेत्रीय सत्ता एवं शासन के साथ-साथ क्षेत्रीय संस्कृति का विकास प्रारम्भ हुआ। इसके बाद जयपाल शाही इस क्षेत्र के सम्भवतः कुछ भाग पर शासन करता रहा। उसने कन्नौज से अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ा। उसने मित्रता-पूर्ण व्यवहार रखते हुए बिना अपनी स्वतन्त्रता घोषित किये ही शासन करना उचित समझा, क्योंकि पश्चिम से आने वाले मुसलिम हमले का वह अकेले सामना नहीं कर सकता था। इसलिए जब सुबुक्तगीन का आक्रमण हुआ तो उसने कन्नौज के सम्राट राज्यपाल से सहायता माँगी, लेकिन दुर्भाग्य से युद्ध में दोनों पराजित हुए। बाद में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उसके पुत्र आनन्दपाल महमूद गजनी के आक्रमण के समय पराजित हुआ और कन्नौज उसकी कोई मदद न कर[६८] सका। वास्तव में, महमूद गजनी का 'उद्देश्य पंजाब के मैदानी तथा पहाड़ी भागों को ही लूटना न था, वह तो धन की लालच में पूरे उत्तर भारत को रौंदना चाहता था। काँगड़ा का किला और वहाँ के मन्दिर अपनी समृद्धि के लिए प्रसिद्ध थे, अतएव उसने इसे भी न छोड़ा। उसने यहाँ आक्रमण करके वहाँ के राजा को पराजित किया तथा किले और मन्दिर[६९] की सम्पत्ति को लूट लिया।

क्षेत्रीय लघुराज्यों का उत्थान—

ऐसा ही राजनैतिक परिस्थितियों में हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों में छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों का जन्म हुआ। भौगोलिक स्थिति ऐसे राजनैतिक विकास के लिए उत्तम थी। पर्वत श्रेणियों और नदियों के कारण एक भाग दूसरे से अलग था और विभिन्न नदी-घाटियाँ एक क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए सहायक थी। अतएव रावी की घाटी में चम्बा राज्य विकसित हुआ और व्यास की उपरली घाटी में कुल्लू का राज्य तथा निचली घाटी में काँगड़ा का राज्य जन्म ले सका। इसी तरह सतलज की उपरली घाटी में किन्नौर की एक राजनैतिक इकाई बन सकी तथा उसके निचले भाग में बिलासपुर का राज्य सम्भव हुआ। व्यास नदी के मध्य वाले भाग में मन्डी और सुकेत के राज्य बने और हिमाचल के दक्षिण-पूर्व भाग में सिरमौर के राज्य का उत्पन्न होना सम्भव हुआ। बाद में इन्हीं में से अन्य छोटे-छोटे राज्य जन्में, जिनका मध्यकाल में और भी विकास हुआ।

चम्बा का राज्य बहुत पहले से ही विद्यमान था। वहाँ की वंशावली से मालूम होता है कि मेरू वर्मा नामक शासक ने गुप्तों के पतन के बाद ही अपने राज्य की नींव डाली[७०] थी। इसी वंश में बाद में युगाकर वर्मा तथा साहिल वर्मा नामक शासकों का जन्म हुआ, जिन्होंने रावी की घाटी को विभिन्न कला-कृतियों से सुसज्जित किया।

इनकी वंशावली के अनुसार साहिल वर्मा तथा दिवाकर वर्मा से पहले लगभग १७ शासक हो चुके थे। लेकिन इनमें से कोई भी संभवतः स्वतन्त्र न था। वे यहाँ के सामन्त प्रशासक थे, जिन पर हर्ष तया प्रतिहारों का प्रभाव था। इनके अभिलेखों में कहीं भी इन्हें संप्रभु तथा स्वतन्त्र बताने वाले साक्ष्य नहीं मिलते हैं। परन्तु इन्हें समय-समय पर स्वतन्त्र होने का अवसर मिलता रहा, क्योंकि केन्द्रीय सत्ता का प्रमुख प्रशासन-स्थान यहाँ से बहुत दूर स्थित था। समीप होने के कारण कश्मीर से भी चम्बा को निरन्तर भय बना रहता था। राजतरंगिणी के अनुसार यहाँ कश्मीर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के नरेशों ने कई बार आक्रमण किया। काँगड़ा तथा कुल्लू के राज्यों से इनका आपसी वैमनस्य तो रहता था, क्योंकि अवसर मिलने पर ये आपस में एक-दूसरे को पराजित करने का प्रयत्न करते ही रहते थे। चम्बा का विस्तार कभी-कभी लाहौल तक हो जाता था, क्योंकि एक दर्रे से होकर चम्बा की सेना को वहाँ जाने में कोई कठिनाई नहीं थी।

काँगड़ा का राज्य यहाँ के क्षेत्रीय राज्यों में सर्वप्रमुख माना जा सकता[७१] है। प्रतिहारों के पतन के बाद यह क्षेत्र भी काफी हद तक स्वतंत्र हो गया था, क्योंकि उत्तर भारत में समय-समय पर ही केन्द्रीय सत्ता शक्तिमान हो जाती थी। यहाँ की वंशावली में कटोच राजाओं का उल्लेख है, जिन्होंने बहुत लम्बे समय तक यहाँ राज्य किया। बैजनाथ से प्राप्त अभिलेखों में भी इस वंश के कुछ राजाओं का उल्लेख है जो ११वीं-१२वीं शदी में यहाँ राज्य कर रहे थे। परन्तु इनमें से कोई संप्रभु तथा स्वतंत्र सम्राट् न था, क्योंकि ऐसा बताने वाले विरुद्ध उनमें नहीं वर्णित है। फिर भी, इस राज्य की स्थापना बहुत पहले ही हो गई थी और वहां का सामन्त प्रशासक उत्तर-भारत तथा हिमाचल की राजनीति में बहुत ऊँचा स्थान रखता था। विदेशी आक्रमणों के काल में वह प्रायः स्वतंत्र हो जाता था और उत्तर भारत की प्रधान संप्रभु सत्ता जब शक्तिमान होती थी तो वह उनकी सत्ता स्वीकार कर लेता था। यहाँ इस समय एक सांस्कृतिक इकाई का पूर्णरूपेण विकास हुआ और भाषा, लिपि, साहित्य तथा रहन-सहन में कुछ नवीन विशेषताओं का सूत्रपात हुआ, जिनका मध्यकाल में अत्यधिक विकास हुआ। (देखिये चित्र २४)

कुल्लू का राज्य भी ऐसी ही परिस्थितियों में जन्मा था। पहले भी यहाँ एक राज्य-इकाई बनी थी, लेकिन प्रमुख राजमार्ग और व्यापार-मार्ग पर स्थित होने के कारण यह कभी स्वतन्त्र न था। यह भारत की प्रधान राजनीति-धारा के साथ चलता था और अवसर पड़ने पर स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न करता था। कहा जाता है कि ११वीं शताब्दी में हरिद्वार से आकर किसी विहंगमीपाल ने एक नये राजवंश की नींव डाली जो कुल्लू के इतिहास में पालवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि यह घटना बहुत पहले ही[७२] घटी थी, लेकिन ऐतिहासिक परिस्थितियाँ और साक्ष्य ऐसा सिद्ध नहीं करते हैं। प्रतिहारों के पतन के बाद ही यह सम्भव मालूम होता है। मध्यकाल में इस वंश का बड़ा विकास हुआ। उसके बाद यहाँ सिंहवंशीय राजाओं ने राज्य किया, जिनके काल में कुल्लू की संस्कृति बहुत विकसित हुई।

इसी प्रकार मैदानों से कई राजवंशीय लोग इस क्षेत्र में आये। सम्भवतः पूर्वी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

भारत वर्ष से पाल तथा सेन शासकों ने आकर मंडी तथा सुकेत क्षेत्र[७३] में अपने राज्य की स्थापना की और सिरमौर क्षेत्र में राजस्थान से आये किसी राजपूत ने एक नये राज्य की स्थापना[७४] की। यहाँ ऐसा थोड़ा बाद में हुआ, क्योंकि यह भाग संभवतः १२वीं शदी तक कन्नौज के अधीन ही रहा, ऐसा कहना राजनैतिक परिस्थितियों से सही मालूम होता है। इसी प्रकार शिमला और बिलासपुर के भी क्षेत्र इस समय तक उत्तर भारत की राजनीतिक धारा से निरन्तर जुड़े रहे। बाद में मध्य भारत से आये राजपूतों ने यहाँ एक नये राजवंश की स्थापना की।

हिमाचल के ऊंचे क्षेत्रों की इस काल की राजनीतिक दशा अधिक स्पष्ट नहीं है। किन्नौर और शिमला जिलों के ऊपरी भाग उत्तर प्रदेश के पहाड़ी भागों[७५] से जुड़े थे। यहाँ इस समय किसी स्वतंत्र नई राजनैतिक इकाई के उत्पन्न होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। ये भाग भी कन्नौज के अधीन चलते रहे। वैसे राहुल सांकृत्यायन ने किन्नौर-क्षेत्र में मध्यकालीन भोट राजाओं के उदय से पूर्व के इतिहास पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न[७६] किया है। यह भाग सीमा-रेखा पर स्थित होने के कारण तिब्बती संस्कृति से कुछ प्रभावित हुआ जान पड़ता है। इसी प्रकार हमें स्पिति और लाहौल का प्राचीन इतिहास अधिक ज्ञात नहीं है। ये क्षेत्र कुल्लू के प्रभाव क्षेत्र में स्थित मालूम पड़ते हैं। लाहौल, चम्बा तथा लद्दाख के प्रभाव में भी रहे होंगे, ऐसी संभावना मालूम होती है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

4

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक विकास

बौद्ध धर्म—

हिमाचल में बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास जानने के लिए मूल स्रोत का अभाव है। बौद्ध साहित्य से इस पर प्रायः नहीं के बराबर प्रकाश पड़ता है। ह्वेनसांग[1] के यात्रा-विवरण से पहली बार प्रामाणिक सूचनाएं मिलती है। इसके अनुसार सातवीं श० ई० में कुल्लू जिला बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र था। उसी से प्राचीन त्रिगर्त क्षेत्र में भी प्रचलित बौद्ध धर्म एवं संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है। तिब्बत के बौद्ध धर्म सम्बन्धी बाद के साहित्य से भी इस प्रदेश के उत्तरी भागों में प्रचलित बौद्ध संस्कृति जानी जाती है।

वैसे हिमाचल का सीमान्त क्षेत्र जीवन्त बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का[2] क्षेत्र हैं और यहाँ उपलब्ध सम्बन्धित स्मारक आज भी अतीत की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। लाहौल, स्पिति और किनौर के जिलों में प्रचुर पुरातात्विक सामग्री बिखरी पड़ी है, जिसकी सहायता से यहाँ के बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का इतिहास लिखा जा सकता है।

पुरातात्विक स्रोतों से इस दिशा में अधिक प्रामाणिक तथ्य मिलते हैं। साँची के दूसरे स्तूप से मिले एक लघु अभिलेख से ज्ञात होता है कि हिमाचल क्षेत्र में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मन्भन्तिक ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था, जिसे सम्भवतः अशोक के धर्म-सलाहकार मोग्गलिपुन्ततिस्स ने इस कार्य के लिए यहाँ भेजा[३] था। तीसरी श० ई० पू० में उत्कीर्ण इस लेख में उसे सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश का गुरु कहा गया है।

वास्तव में, भारत के उत्तरी भागों की तरह इस क्षेत्र में भी भगवान बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार स्वयं किया था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि तथागत (भगवान बुद्ध) अपने अनेक शिष्यों के साथ कुल्लू में धर्मोपदेश देने और मानव-जाति का उद्धार करने के लिए [४]स्वयं आये थे। जाहिर है कि इनमें से अनेक बौद्ध यहाँ रुके होंगे और वहाँ से अन्य भागों में जाकर धर्म का प्रचार किये होंगे। इस तरह पाँचवी और चौथी शताब्दी ई० पू० में ही बौद्ध धर्म इस प्रदेश में फैल चुका था और यहाँ के जीवन एवं संस्कृति में हाथ बँटाना प्रारम्भ कर दिये था।

बाद में मौर्य काल में इसका और भी विस्तार हुआ। हम जानते ही हैं कि सम्राट् अशोक ने देश और विदेश में इस धर्म के प्रचार के[५] लिए बड़ा प्रयत्न किया था। इस क्षेत्र में बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षाणियों को तो उसने भेजा ही, उसने यहाँ कई स्थानों पर स्तूपों का भी निर्माण कराया। हिमाचल की सीमाओं पर उसके ऐसे कार्यों के अनेक पुरातात्विक प्रमाण मिलते हैं। किन्नौर से लगे क्षेत्र में स्थित काल्सी से उसका अभिलेख मिला है। पास के मैदानी भाग में अम्बाला के पास टोपरा नामक ग्राम से उसका अन्य बड़ा स्तम्भ अभिलेख मिला है, जिसमें उसके धर्म-कार्य एवं उसके प्रचार का विस्तृत विवरण दिया गया है।

हिमाचल के पश्चिम-दक्षिण में स्थित जलंधर में उसने स्तूपों का निर्माण कराया और वहाँ सम्भवतः कुछ बौद्ध विहार भी बनवाये[६] गये? ध्यातव्य है कि यह स्थान हिमाचल के काँगड़ा और चम्बा जिलों और आस-पास के प्रदेशों की प्राचीन राजधानी थी। यहाँ त्रिगर्त राज्य स्थापित था। ऐसा लगता है कि तीसरी-दूसरी शताब्दी ई० पूर्व में उत्तर भारतीय मैदानों से काल्सी और जलन्धर के मार्गों द्वारा बौद्ध धर्म इस पर्वतीय प्रदेश में आया। उसके साथ वहाँ की संस्कृति इधर बिखरनी प्रारम्भ हुई।

इस समय कुल्लु भी बौद्ध धर्म के एक प्रधान केन्द्र के रूप में विकसित हो रहा था। ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण में यह उल्लेख मिलता है कि कुलूत प्रदेश के बीच में सम्राट अशोक ने एक स्तूप का निर्माण [७]कराया था, क्योंकि वहाँ भगवान् बुद्ध आये थे। इस तथ्य से इस क्षेत्र में सहस्रों बौद्ध भिक्षुओं के आगमन का प्रमाण मिलता है

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और यहीं से लाहौल जैसे अन्य सीमान्त क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के विस्तार की सम्भावना मालूम होती है। कुलूत प्रदेश की शीतल जलवायु, यहाँ का सुहावना प्राकृतिक वातावरण, व्यास नदी का मीठा पर्वतीय जल और वहाँ की उपजाऊ घाटी और धरती ने भगवान बुद्ध, अशोक तथा अनेक बौद्ध धर्म-प्रचारकों को आकृष्ट किया। यह स्थान प्राचीनकाल से ही रोहतांगपास पार करके लद्दाख, तिब्बत तथा चीन जाने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। अतएव यह एक प्रमुख व्यापार-केन्द्र के रूप में भी विकसित हुआ, जिससे अन्य क्षेत्रों से सभी धर्म-सम्प्रदाय के मानने वाले यहाँ आये। इसके साथ ही साथ एकान्त पर्वतीय वातावरण हीनयानी बौद्ध भिक्षुओं के ध्यान एवं समाधि के लिए अधिक उपयुक्त था। सम्भवतः इन्हीं कारणों से बौद्ध भिक्षुओं ने यहाँ जाना प्रारम्भ किया। उन्होंने यहाँ कुछ समय के लिए बसकर गर्मियों में रोहतांगपास पार करके लाहौल तथा अन्य आसपास के क्षेत्रों में इस धर्म संस्कृति के विस्तार का बीजारोपण किया।

हिमाचल प्रदेश में मौर्य कालीन बौद्ध धर्म का विस्तार काँगड़ा जिले में भी हो गया था। असम्भव नहीं है कि इसी क्षेत्र को ह्वेनसांग ने तमसावन कहा है। जहाँ सम्राट अशोक ने एक स्तूप का निर्माण कराया था, जो लगभग २०० फीट ऊंचा था। इसके पास में अन्य अनेक छोटे-छोटे स्तूप बनवाये गये थे, जिनका उल्लेख ह्वेनसांग ने किया है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस जिले में एक विशाल स्तूप का अवशेष आज भी विद्यमान है। यह चैतड़ू नामक स्थान पर है, जो नगरकोट या कोट काँगड़ा से ५ मील दूर है। इसकी परिधि आज भी ८०० फीट से अधिक है, जो प्राचीन काल में इसकी विशालता का परिचायक है। स्पष्ट है कि यह उसी स्तूप का अवशेष है, जिसे अशोक ने बनवाया था। ह्वेनसांग ने इसका उल्लेख किया है।

वास्तव में यह स्थान मौर्यकाल में बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र था। यह बाद में भी कई शताब्दियों तक बौद्ध धर्म और संस्कृति का केन्द्र बना रहा, जैसा कि हम आगे वर्णन करेंगे। मौर्योत्तर काल में हिमाचल में बौद्ध धर्म पनपता रहा। मौर्य सम्राटों के बाद पुष्यमित्र शुंग भारत का सम्राट हुआ, जो ब्राह्मण धर्म में अधिक आस्था रखता था। इतिहासकार तारानाथ का कहना है कि उसने बौद्ध धर्म के खिलाफ आवाज उठाई। इसके अनुसार उसने घोषणा की थी कि जो उसे एक श्रमण-सिर देगा, बदले में उसे १०० दीनार दिये जायेंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तिब्बत का

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

यह बौद्ध इतिहासकार लगभग १६वीं शताब्दी में हुआ; अतएव उसके कथन पर विश्वास करना तर्कसम्मत नहीं है। तत्कालीन बौद्ध धर्म की विकसित स्थिति को देखकर भी इस पर विश्वास करना सम्भव नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि भार्हुत और साँची के सुन्दर स्तूपों का निर्माण इसी काल में ही हुआ है। लेकिन पुष्यमित्र शुंग ने अपने विरोधी बौद्धों को दबाने के लिए अगर ऐसा कुछ किया तो यह और भी सम्भव है कि मैदानी क्षेत्रों के बौद्ध भिक्षुओं ने भागकर हिमाचल की घाटियों में शरण ली, जिससे बौद्ध धर्म का यहाँ विस्तार हुआ।

इन दिनों अर्थात् दूसरी-प्रथम शदी ई० पू० में हिमाचल के कुल्लू क्षेत्र में कुलूत राज्य कर रहे थे, जिनके एक राजा वीरयश के सिक्के प्राप्त[१०] हुए हैं। किन्नौर के क्षेत्र में कुनिन्दों का प्रजातन्त्रात्मक राज्य था, जिनके कई राजाओं के सिक्के हिमाचल के कई स्थानों से मिले हैं। काँगड़ा और आस-पास के मैदानी क्षेत्रों में औदुम्बरों का गणराज्य स्थित था, जिनके सिक्के काफी मात्रा में यहीं से[११] मिले हैं। लाहौल और स्पिति क्षेत्र में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का ज्ञान प्रायः नहीं है। सम्भवतः यह भाग उन्हीं गणराज्यों में बँटा हुआ था।

इनके सिक्कों से तत्कालीन हिमाचल की धार्मिक स्थिति जानी जा सकती है। औदुम्बरों के सिक्कों पर ऐसे प्रतीक मिले हैं, जिनसे यह लगता है कि इस गणराज्य के सत्ताधारी लोग शैव धर्म में आस्था रखते थे। कुनिन्दों के सिक्कों वैसे कार्तिकेय के भक्त मालूम होते हैं। लेकिन इन गणराज्यों के सिक्कों पर बौद्ध प्रतीक, जैसे चैत्य, बौद्धि-वृक्ष आदि भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि साधारण जनता को कुछ लोग बौद्ध धर्म के मानने[१२] वाले थे और वे हीनयान बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे। औदुम्बर, कुलूत और कुनिन्दगण शासकों ने धार्मिक सहनशीलता दिखाई, जिससे उनके राज्यों में सभी धर्म-सम्प्रदाय समान रुप से विकसित हुए। लगता है कि दलित और गरीब वर्ग में बौद्ध धर्म का प्रचार हो रहा था। यद्यपि इस तथ्य पर सप्रमाण प्रकाश डालना कठिन है।

प्रदेश में बौद्ध धर्म का इस समय विकास एवं विस्तार अन्य प्रमाणों से भी ज्ञात है। भारत के मैदानी भागों में मथुरा तक हिन्द-यूनानी शासक मिनैन्डर का साम्राज्य फैला हुआ था, जो एक बौद्ध बन[१३] चुका था। भारतीय बौद्ध धर्म में उसकी अशोक महान जैसी देन मानी जाती है। अतएव उसके शासन काल में भी बौद्ध धर्म का इस क्षेत्र में विस्तार हुआ जान पड़ता है। यहाँ इतना ध्यातव्य है कि दूसरी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

शताब्दी ई० पू० में इस क्षेत्र में मैदानों की तरह शैव धर्म इस धर्म की प्रतिद्वन्दी बन चुका था। परन्तु सभी सम्प्रदाय यहाँ समान रूप से विकसित हो रहे थे। ऐसा कहने के लिए पुरातात्विक प्रमाणों का अभाव नहीं है।

तदनन्तर यह पर्वतीय क्षेत्र उत्तर भारत की तरह कुषाणों के साम्राज्य में समाहित हुआ जान पड़ता है। पूर्ववर्ती शासकों की भाँति ये भी धर्म के मामले में सहनशील थे। इन्होंने अपने काल में सभी धर्मों को समान रूप से विकसित होने का समान अवसर प्रदान किया। इससे अन्य भागों की तरह यहाँ भी बौद्ध धर्म अन्य धर्मों के साथ पुष्पित होता रहा। कनिष्क के राज्य काल में सम्भवतः बौद्ध धर्म के विस्तार में अधिक प्रगति[१५] हुई, क्योंकि उसने इसे अपना धर्म मान लिया था। वह इसे उसी प्रकार से विकसित और विस्तृत देखना चाहता था जैसा कि उसके ढाई-तीन सौ वर्ष पहले सम्राट अशोक ने किया था। उसने महायान बौद्ध धर्म के बढ़ाने और फैलाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। उसके राज्यकाल में चौथी बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ, जो कुछ विद्वानों के अनुसार संभवतः जलंधर में ही बुलाई गयी थी।

पुरातात्विक स्रोतों से यह ज्ञात है कि कुषाणों के काल में काँगड़ा जिले में बौद्ध धर्म की अत्यधिक प्रगति[१६] हुई। इसी जिले में स्थित कुनिहारा नामक स्थान से लगभग छः मील दूर स्थित पथियार के समीप ही चानरु नदी के तट पर इस काल में कुछ बौद्ध विहार बनवाये गये थे। यहाँ से ब्राह्मी तथा खरोष्ठी में लिखाये दो शिला-अभिलेख मिले है, जिनमें इस बौद्ध विहार के बनवाने का उल्लेख है। यह सम्भवतः द्वितीय श० ई० में बनवाया गया था। यह कनिष्क के धर्म-संरक्षण और राजकीय सहयोग का परिणाम मालूम होता है। कुषाणों के काल में इसी प्रकार कुल्लू क्षेत्र में महायान बौद्ध धर्म का विकास हुआ। यहाँ स्थित एक स्थान से काँसे से बने एक लोटे (जलपात्र) पर महात्मा बुद्ध के एक जलूस का बड़ा मनोहारी चित्रण[१७] मिलता है। यह पात्र एक पुराने बौद्ध बिहार से निकला है जहाँ महायानी बौद्ध भिक्षु सहस्रों की संख्या में रहते थे।

कुषाणों के पतन के बाद गुप्तों के शासनकाल में भारत के अन्य भागों की तरह यह पर्वतीय प्रदेश भी धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से पनपता रहा। अधिकांश सम्राट् भागवत धर्म के अनुयायी थे, लेकिन वे अपनी धर्म-नीति में अत्यन्त उदार एवं सहनशील[१८] थे, परिणामतः हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय ही नहीं, वरन् अन्य धर्म-धारायें पूर्णरूपेण यहाँ विकसित होती रहीं, वैसे यह काल पौराणिक हिन्दू धर्म के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पूर्ण विकास और विस्तार का युग था। अतएव इस काल से लेकर आगे आने वाले समय में हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दू धर्म के विभिन्न संप्रदाय घुसते दिखाई पड़ते हैं, जिनकी जड़ें पहले ही जम चुकी थी। पुरातात्विक और साहित्यिक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि चौथी शताब्दी ई० से लेकर लगभग नवीं या दशवीं शताब्दी तक में काँगड़ा, चम्बा, शिमला, मण्डी, कुल्लू तथा सिरमौर आदि क्षेत्रों में शैव, वैष्णव, शाक्त तथा सौर सम्प्रदाय ने अपने लिए स्थान बना लिया[१९] था। निर्मण्ड के अभिलेख से इसी तथ्य पर प्रकाश पड़ता[२०] है। इस क्षेत्र के सबसे प्राचीन मन्दिर तथा मूर्तियाँ इसी काल की देन है। बैजनाथ (काँगड़ा) का शिव[२१] मन्दिर, नीरत का सूर्य मन्दिर[२२], ब्रह्मौरा (चम्बा) के पुराने शाक्त मन्दिर संभवतः इसी काल की देन[२३] हैं।

लेकिन बौद्ध धर्म इन सभी क्षेत्रों में समान रूप से विकसित होता रहा। कुछ गुप्त शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे, अतएव उसे राजसंरक्षण भी उपलब्ध था। परिणामतः सातवीं शताब्दी में जब ह्वेनसांग इस क्षेत्र में आया तो उसने बौद्ध धर्म को इस पूरे प्रदेश में फूलते-फलते देखा। उसने लिखा है कि तमसावन में जो संभवतः काँगड़ा-चम्बा क्षेत्र ही था, ३०० बौद्ध भिक्षु थे, जो सर्वास्तिवाद के सिद्धान्त का अध्ययन कर रहे थे। उसका कहना है कि वे सभी हीनयान बौद्ध धर्म के प्रकाण्ड पण्डित थे और वहाँ भद्रकल्प के लगभग १००० बुद्ध-अनुयायी तथागत के धर्म की व्याख्या करने में लगे थे। उसने लिखा है कि अशोक द्वारा बनवाया स्तूप उस समय भी वहाँ विद्यमान[२४] था।

निकट में स्थित जलन्धर तो बौद्ध धर्म का एक प्रधानगढ़ बना ही[२५] था। ह्वेनसांग लिखता है कि सातवीं शताब्दी में यहाँ लगभग ५० बौद्ध बिहार थे, जिनमें २००० बौद्ध निवास करते थे और बौद्ध धर्म के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। यहाँ पर हीनयान और महायान दोनों का अध्यापन किया जाता था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि मध्य देश के किसी (सम्राट) ने यहाँ के धर्म के विकास की देखरेख की और वहाँ उसने यह भी लिखा है कि ऐसे आदमियों की नियुक्ति को जिन्होंने यहाँ के बौद्ध भिक्षुओं के व्यवहार एवं आचरण को शुद्ध रखने के लिए प्रयत्न किया। शीलयुक्त एवं संयमित जनों को उसने सम्मान दिया और जो असंयमित थे, उन्हें उसने दण्ड दिया।

ह्वेनसांग के इस विवरण से बौद्ध धर्म के विकास के इतिहास पर प्रकाश

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पड़ता है। यद्यपि उसके द्वारा वर्णित मध्य देशीय बौद्ध शासक को जानना कठिन है। लेकिन इतना तो ज्ञात ही है कि बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण मिलता रहा और उसके संघभेद को रोकने का प्रयत्न किया जाता रहा। सम्राट अशोक ने बौद्ध-संघ के विघटन को रोकने के लिए बड़ा प्रयत्न किया था, जैसा कि उसके कौशाम्बी और साँची स्तम्भ-अभिलेखों से ज्ञात होता[२६] है। बाद में हो सकता है कि किसी बौद्ध गुप्त सम्राट ने यहाँ के बौद्ध धर्म संघ को विघटित होने से बचने के लिए प्रयत्न किया हो। सम्राट हर्षवर्धन ने भी अपने राज्य-काल में इस धर्म को अधिक संरक्षण प्रदान[२७] किया था। इन कारणों से यहाँ यह धर्म निरन्तर विकसित होता रहा।

जलन्धर से लगे हुए काँगड़े जिले में भी इस समय बौद्ध धर्म का विकास होता रहा। कुषाणों के काल से यह महायानी बौद्ध भिक्षुओं का एक केन्द्र बन गया था। गुप्त काल में और उसके बाद कुछ समय तक वह इस रूप में विकसित होता रहा, जैसा कि एक अभिलेख से प्रमाणित है, जो नगरकोट से ८ मील दूर स्थित चेरी नामक ग्राम से प्राप्त हुआ[२८] है। यह लेख छठीं या सातवीं श० ईसवी में लिखवाया गया जान पड़ता है। इसमें बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों के फारमूले (मन्त्र) का उल्लेख किया गया है। ध्यातव्य है कि ह्वेनसांग भी उसी काल में यहाँ आया था। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि वह संभवतः इसी बौद्ध क्षेत्र को तमसावन के नाम से वर्णन करता[२९] है।

कुल्लू का क्षेत्र इस काल में भी बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का प्रधान केन्द्र बना रहा। ह्वेनसांग इसीलिए यहाँ भी सातवीं शताब्दी में आया। वह जलन्धर के बौद्ध केन्द्र को देखता हुआ कुल्लू पहुँचा था। उसने यहाँ बीस संघाराम देखे थे, जहाँ एक हजार बौद्ध भिक्षु निवास[३०] कर रहे थे। वे लोग अधिकतर महायान धर्म का अध्ययन करने रहते थे। कुछ लोग अन्य बौद्ध धर्म-सम्प्रदायों के मानने वाले थे। वहाँ देवों के मन्दिर भी साथ ही साथ विकसित हो रहे थे। ह्वेनसांग ने लिखा है कि यहाँ की पहाड़ियों में गुफाएँ बनी हुई थीं, जिनमें अर्हत और ऋषि निवास करते थे।

ह्वेनसांग के समय में वह स्तूप विद्यमान था। जिसे सम्राट अशोक ने बनवाया था, जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। दुर्भाग्य से कुल्लू में इस स्तूप का अवशेष अब नहीं पाया जाता है, और बीस संघाराम भी अब काल के गाल में जा चुके हैं। वे स्वयं ही समय के कारण गिरकर नष्ट हो गये और उनका पुनः निर्माण नहीं हुआ। सातवीं शताब्दी में बौद्ध भिक्षु कुछ कारणों से यह स्थान छोड़कर आगे बढ़ गये थे। इन गिरे हुए या उजड़े हुए संघाराम का सामान लेकर कालान्तर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में यहाँ के कुछ हिन्दू मन्दिरों का निर्माण हुआ। नगर, जगत्सुख और पार्वती नदी पर स्थित बिजली महादेव के मन्दिरों में इन बौद्ध विहारों और कलाओं के अनेक अवशेष देखे जा सकते[31] हैं। हरकोर्ट महोदय का कहना है कि बिजली महादेव के मुख्य द्वार पर स्थित लॉट बौद्ध कला का ही परिचायक है और सम्भवतः यह स्थान पहले बौद्धों के ही पूजा का स्थान था। हो सकता है कि अशोक द्वारा निर्मित स्तूप यहीं विद्यमान रहा हो।

इसके बाद ह्वेनसांग शतद्रु और सुहन राज्यों के बौद्ध धर्म की दशा का वर्णन करता है। ये दोनों राज्य सम्भवतः हिमाचल के किन्नौर और सिरमौर जिलों की सीमा पर स्थित थे। यहाँ के लिए वह लिखता है कि शतद्रु के प्रमुख नगर में बौद्ध विहार खाली पड़े थे और वहाँ केवल कुछ ही बौद्ध भिक्षु धर्म-साधन में लगे थे। अशोक द्वारा निर्मित स्तूप वहाँ तब ज्यों का त्यों विद्यमान था।

यही दशा निकटवर्ती स्रुघ्न राज्य में थी। यह सिरमौर की सीमा पर जौसर में कालसी के समीप स्थित था। संभवतः पर्वत के समीप स्थित पौनटा भी उस समय बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र था। ह्वेनसांग लिखता है कि यहाँ के संघाराम प्रायः खाली है और उन्हें छोड़कर बौद्ध भिक्षु कहीं चले गये हैं। फिर भी वहाँ पर लगभग १००० भिक्षु थे, जिनमें अधिकतर हीनयान बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे। यहाँ पर सिंहल या अन्य स्थानों से बौद्ध भिक्षु और उपासक अपनी शंकाओं का समाधान करने[32] आते थे। राजधानी स्रुघ्न के दक्षिण-पश्चिम में यमुना नदी के पश्चिम में अशोक द्वारा निर्मित स्तूप सातवीं शताब्दी में विद्यमान था।

ह्वेनसांग के इस विवरण से यह मालूम होता है कि हिमाचल के इस सीमावर्ती क्षेत्र में बौद्ध धर्म के मानने वाले दूसरे स्थानों में जा रहे थे। स्पष्ट है कि वे किन्नौर की पहाड़ियों में शरण ले रहे थे। वहाँ से उनके हटने के क्या कारण थे, यह प्रायः अज्ञात है, लेकिन यह अनुमान लगाना तर्क-विरुद्ध नहीं है कि हूणों के आक्रमण के समय बौद्ध भिक्षुओं में भय का वातावरण छा गया[33] था। हूण सम्राट मिहिरकुल बौद्ध धर्म का विरोधी था। विश्वसनीय साक्ष्यों से ज्ञात है कि उसने बौद्ध धर्म के विरुद्ध आवाज उठाई थी। बौद्ध केन्द्रों तथा मठों को नष्ट किया था और अनेक बौद्धों को मौत के घाट उतार दिया था। अतएव ऐसे वातावरण में मैदानी भागों से बौद्ध केन्द्रों को छोड़ कर अन्यत्र पहाड़ियों में शरण लेना बौद्धों के लिए स्वाभाविक ही था।

हिमाचल में बौद्ध धर्म एवं संस्कृति की यह स्थिति संभवतः आठवीं शदी ई०

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में ज्यों की त्यों बनी रही। लेकिन आगे आने वाले समय में इस क्षेत्र के पर्वतीय भागों में उसका विकास और विस्तार होना स्वाभाविक लगता है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि कुल्लू से आगे एक सड़क जाती थी, जिससे होकर लगभग १८०० या १८०० ली उत्तर में पहाड़ों और घाटियों के साथ-साथ चलकर लोग लाहौल जाते थे। यह मार्ग खतरों से भरा था। इससे उत्तर में लगभग २००० मील चलकर सड़क द्वारा मोलोसो (लद्दाख) प्रदेश में जाया जा सकता था। ये मार्ग कठिन और अत्यन्त दुर्गम थे। गिरते हिम और तेज बहती बर्फीली हवाओं के कारण यहाँ चलना खतरे से खाली नहीं था।

इस विवरण से यह मालूम होता है कि हिमाचल के मध्य से होकर लाहौल तथा लद्दाख क्षेत्रों का आवागमन सर्वविदित था और बौद्ध भिक्षु इसी मार्ग से आगे बढ़कर अपने धर्म एवं संस्कृति का प्रचार एवं विस्तार कर रहे थे।

अतः यह सिद्ध है कि इस काल तक लाहौल भी बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का एक प्रमुख क्षेत्र बन चुका था। इतिहासकारों ने वैसे यहाँ बौद्ध धर्म के प्रचार का श्रेय पद्म-सम्भव (आठवीं शदी) को दिया है, लेकिन कुछ ऐसे भी प्रमाण और तर्क मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि लाहौल में बौद्ध धर्म बहुत पहले प्रवेश कर चुका था। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि लद्दाख में सम्राट अशोक ने ही बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया[३४] था। ऐसा सम्भव है कि ये धर्म-प्रचारक लाहौल होकर भी वहाँ गये हों। क्योंकि कुल्लू से लाहौल जाना अधिक सरल है। व्यापार के माध्यम से दोनों क्षेत्र प्राचीन काल से ही एक-दूसरे से सुसम्बन्ध थे। हमारा तो यह भी अनुमान है कि जब भगवान बुद्ध कुल्लू आये थे तभी अनेक बौद्ध भिक्षु इस क्षेत्र में भी चले गये थे। यहाँ एक तथ्य की ओर ध्यान दिलाना शायद अधिक मजेदार होगा। प्रश्न यह है कि इस भूभाग का नाम लाहौल कैसे पड़ा? ध्यातव्य है कि राहुल भगवान बुद्ध का पुत्र था, जिसे प्राकृत भाषा में लाहुल कहा जाता था। यह शब्द अशोक के एक अभिलेख में भी प्रयुक्त हुआ है, जहाँ अन्य छः ग्रन्थाओं के साथ 'लाहुलवाद' का भी प्रयोग किया गया है, जिसे सभी बौद्धों को पढ़ना पड़ता था। प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों में भी 'लाहुलवाद' का वर्णन किया गया है। ऐसा लगता है कि कभी ऐसे बौद्ध यहाँ आये, जो लाहुलवाद का पारायण करते थे। उनकी संख्या बढ़ने से स्वभावतः क्षेत्र-विशेष को लाहौल नाम दे दिया गया। कुछ भी हो, यह क्षेत्र गुप्त-काल में बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का एक भूभाग बन चुका था। हो सकता है कि यहाँ इसे लोकप्रिय बनाने में नागार्जुन आदि बौद्ध दार्शनिकों ने बड़ा योगदान दिया और महायान बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के फलस्वरूप त्रिलोकनाथ और गुरूघन्टाल नामक स्थानों में बौद्ध संस्कृति एवं कला का आगमन हुआ। ध्यातव्य है कि ये दोनों स्थान मूलतः बौद्ध धर्म एवं संस्कृति के स्थान थे जैसा कि यहाँ प्रस्थापित अवलोकितेश्वर की प्राचीन मूर्ति से ज्ञात होता है। बाद में हिन्दू धर्म के प्रचार के कारण यह स्थान शैव धर्म का केन्द्र बन गया। लेकिन प्राचीन संस्कृति, परम्परा तथा मूल्यों का यहाँ निरन्तर सुरक्षित रक्खा गया और दोनों स्थान बौद्धों और हिन्दुओं दोनों के लिए पूजा के स्थान बने रहे।

हिमाचल के इन भागों में पहुँचने के लिए कई मार्ग थे। गढ़वाल का क्षेत्र किन्नौर से जुड़ा हुआ है और उत्तर भारत से बौद्ध तीर्थ यात्री इस मार्ग से किन्नौर में और वहाँ से स्पिति में आ-जा सकते थे। यमुना तथा सतलज नदियों की घाटी से भी होकर यहाँ जाया जा[३६] सकता था। लद्दाख जाने वाला दूसरा प्रमुख मार्ग कश्मीर से चम्बा होकर गुजरता था। कश्मीर से सीधे लद्दाख आना-जाना तो अधिक सुगम था। जालन्धर से काँगड़ा और चम्बा होते हुए भी लाहौल पहुँचा जा सकता था। इस प्रकार लाहौल, स्पिति, किन्नौर तथा लद्दाख कई तरफ से तथा अनेक मार्गों द्वारा भारतीय बौद्धों के लिए खुला था। इन्हीं कारणों से यह भाग इन शताब्दियों में बौद्ध धर्म का एक विशेष क्षेत्र बन गया।

इस काल में बौद्ध धर्म और संस्कृति के इस विस्तार के अनेक कारण थे। मैदानों में पौराणिक सम्प्रदाय-प्रधान हिन्दू धर्म की बढ़ती हुई लोकप्रियता बौद्ध धर्म को स्थानान्तरित करने में अधिक अफल[३७] हुई। भारत के विभिन्न भागों में राजकीय संरक्षण भी इन्हीं धर्म-सम्प्रदायों को मिला। परिणामतः कुछ हिन्दू शासकों ने इस धर्म का विरोध भी किया। उदाहरणार्थ,[३८] कश्मीर के शैव शासक क्षेत्र गुप्त (८५०-८५८) ने बौद्ध केन्द्रों को विनष्ट करने के लिए प्रयत्न किया। उसके काल में बुद्ध की मूर्तियाँ नष्ट की गई, वहाँ बौद्ध विहारों को उजाड़ कर शैव मन्दिरों का निर्माण किया गया? बौद्ध धर्म के प्रति यही नीति कश्मीर के लोहार वंश (१००३-११०१) के समय में भी रही। हर्ष (१०८८-११०१) के राज्य काल में तो इस धर्म के प्रति बड़ा अत्याचार हुआ। इन सबका परिणाम यह हुआ कि कश्मीर को छोड़-छोड़ कर बौद्ध भिक्षु एवं पंडित लद्दाख, लाहौल एवं स्पिति के पहाड़ों में आकर अपनी साधना करने लगे।

इसी तरह हिन्दू धर्म का भक्ति-आन्दोलन भी बौद्धों, उनके तीर्थ-स्थानों एवं मठों को मैदानों से पहाड़ों में शरण लेने के लिए मजबूर कर[३९] रहा था। ब्राह्मण-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पंडित बौद्ध धर्म पर आक्रमण कर रहे थे और बौद्ध केन्द्रों को अपने प्रभाव से हिन्दू तीर्थ-स्थानों में परिवर्तित करने में लगे थे। शंकराचार्य कुमारि भट्ट और अभिनव गुप्त आदि अनेक उत्साही हिन्दू धर्म के प्रचारकों का नाम इस संदर्भ में लिया जा सकता है। आठवीं शताब्दी के बाद चम्बा तथा कुल्लू क्षेत्रों में भारत के अन्य भागों की तरह वैष्णव, शैव एवं शाक्त मंदिरों, तीर्थ-स्थानों एवं सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना और वृद्धि इस वातावरण में समझी जा सकती है और इस समय यहाँ से बौद्ध संस्कृति का पतन और पहाड़ी भागों में, जैसे लाहौल, स्पिति तथा किन्नौर में इसके विस्तार और विकास की व्याख्या की जा सकती है। दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियों में मुसलिम आक्रमण भी बौद्ध धर्म, संस्कृति कि अन्य उपांगों को मैदानों से भगाकर पहाड़ी में शरण लेने के लिए विवश कर रहा[४०] था। महमूद गजनवी का ग्यारहवीं शदी के प्रारम्भ में हुआ आक्रमण हिन्दू तीर्थ-स्थानों को ही नहीं वरन् बौद्ध धर्म के केन्द्रों के भी पतन का कारण बना। बाद में कश्मीर के शाहमिर्जा (१३३८), हैदरशाही (१४७०) ई० तथा सिकन्दर (१४८५-१५१६ ई०) आदि के धार्मिक अत्याचारों से विशेष करके कश्मीर के बौद्ध धर्म का तेजी से पतन हुआ और उनके जुल्मों से तंग आकर बौद्ध भिक्षुओं को लद्दाख, लाहौल तथा स्पिति की वादियों में शरण लेनी पड़ी। बौद्ध धर्म में तन्त्रयान का विकास उसके यहाँ आगमन का दूसरा कारण हो सकता[४१] है। क्योंकि उसकी रहस्यात्मक विधियों का मैदानी संस्कृति में पनपने का पूर्ण वातावरण मिलना सम्भव नहीं था। पर्वत की एकांत श्रृङ्खलायें और निर्जन उपत्यकाएँ बौद्ध भिक्षुओं तथा सहजयानी साधकों के लिए अधिक अनुकूल वातावरण प्रदान कर सकती थीं। पद्म-संभव-जैसे तान्त्रिक पंडितों का हिमाचल में आना और यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार एवं विस्तार करना इस सामाजिक संदर्भ में देखना अधिक तर्कसंगत जान पड़ता है।

लद्दाख तो बहुत पहले से बौद्धों का एक प्रमुख क्षेत्र बन चुका[४२] था। तीसरी शताब्दी ई० पूर्व में ही सम्राट् अशोक के धर्म प्रचारक यहाँ पहुँच गए थे। बाद में कुषाणों के विकास-काल में इस धर्म और संस्कृति का इस क्षेत्र में और भी विकास हुआ। कहा जाता है कि सम्राट कनिष्क ने तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ लगभग ५०० कश्मीरी बौद्ध पंडितों को भेजा था, जिन्होंने लद्दाख में इस धर्म की जड़ें जमा दी थीं। परिणामतः गुप्त-काल तक लद्दाख बौद्ध धर्म एवं संस्कृति के एक सशक्त केन्द्र के रूप में विकसित हो सका। फाह्यान ने लिखा है कि यहाँ हीनयान बौद्ध धर्म का प्रचारक था। ध्यातव्य है कि वह ४०० ई० में लद्दाख गया था, अतएव यह सिद्ध है कि

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

महायान बौद्ध धर्म कनिष्क के प्रयत्नों के फलस्वरूप भी लद्दाख के सभी भागों में एक साथ प्रिय नहीं हो सका।

बाद में कश्मीर के बौद्ध पंडितों की सहायता से लद्दाख इस धर्म और संस्कृत का और भी विकास हुआ। पग-सम-जान-जंग का कहना है कि लद्दाख में अनेक कश्मीरी विद्वानों ने आकर बौद्ध ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। १०२५ ई० में कश्मीर के प्रकाण्ड पंडित रत्न[४३] वज्र को यहाँ के तान्त्रिक बौद्ध धर्म में कतिपय परिवर्तन एवं सुधार लाने के लिए आमन्त्रित किया गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार १२वीं शताब्दी तक लद्दाख बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। आगे चलकर उसने इस क्षेत्र के अन्य भागों में इस संस्कृति का विस्तार करने में बड़ी मदद की।

वैसे लाहौल, स्पिति तथा लद्दाख के क्षेत्रों में विशेषकर मध्यकाल में बौद्ध धर्म तिब्बत से भी होकर आया, जहाँ वह बंगाल, बिहार एवं नेपाल से होता हुआ पहुँचा[४४] था। आठवीं श० ई० के बाद से ही विक्रमशिला एवं यहाँ के अन्य बौद्ध धर्म एवं संस्कृति के केन्द्रों से बौद्ध विद्वानों की तिब्बत जाने के लिए प्रोत्साहन मिला था। परिणामतः पद्म-संभव—जैसे तांत्रिक पंडित तिब्बत गए और वहाँ की प्राचीन धार्मिक पद्धतियों की आत्मसात करने वाले एक नये बौद्ध धर्म का प्रचलन किया जिसे हम लामा बौद्ध धर्म कहते हैं।

तिब्बत में लामा बौद्ध धर्म—

तिब्बत में लामा बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव वास्तव में आठवीं शताब्दी ई० में हुआ, जहाँ वह बंगाल से नेपाल होता हुआ आया था। सातवीं शदी में (६२८ ई०) सम्राट स्त्रोंग-ट्सन-गमापो तिब्बत की गद्दी पर जब बैठा तो वहाँ पहली बार बौद्ध धर्म की आधारशिला रखी गई। इस समय तक खोतान और चीन में बौद्ध धर्म पूर्णरूपेण लोकप्रिय हो चुका था और उसका यश यहाँ पहुँच रहा था। वैसे भारत से हर्षवर्धन के काल में बौद्ध भिक्षु और सांस्कृतिक दत एशिया के इस भाग में अधिक से अधिक संख्या में जाने लगे थे।

इस सम्राट के राज्य-काल में तिब्बत में इस धर्म के अधिक लोकप्रिय होने का एक-दूसरा भी कारण था। उसकी दो रानियाँ थी, जिनमें एक नेपाल की राजकुमारी थी और दूसरी चीन की। इन दोनों देशों में बौद्ध धर्म एक प्रिय धर्म बन चुका था,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अतएव दोनों अपने-अपने डोलों के साथ बौद्ध धर्म और संस्कृति तिब्बत ले गईं। आश्चर्य नहीं है कि नेपाल राजकुमारी के साथ अनेक बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ भी वहाँ गईं, जिनके साथ नेपाली बौद्ध धर्म वहाँ गया, जो इस काल तक तन्त्र के प्रभाव में आ चुका था।

परिणामतः तिब्बत में इस धर्म के प्रति लोगों की आस्था बढ़ गई। सम्राट अपनी नेपाली रानी के प्रभाव में अधिक आ गया। परिणामतः यह संस्कृति वहाँ जोरों से बढ़नी प्रारम्भ हुई। इसी वातावरण में थोन्मी सम्भोट भारत भेजा गया जहाँ उसने लेखन-कला के साथ-साथ बौद्ध धर्म और दर्शन का पूर्णरूपेण अध्ययन किया। उसने करण-व्यूह का अनुवाद किया। इस तरह वहाँ भारतीय बौद्ध साहित्य और कला का पदार्पण हुआ और राजकीय संरक्षण मिलने से यह धर्म द्रुतगति से वहाँ बढ़ने लगा। इसने सम्राट की राजनैतिक स्थिति को दृढ़ किया, क्योंकि राजा और रानी दोनों की वहाँ पूजा होने लगी। दोनों को क्रमशः अवलोकितेश्वर और तारा का अवतार माना गया। सम्राट स्वयं शक्तिशाली था, अतएव उसने अपने पौरुष से अपने राज्य का विस्तार किया। तिब्बत का केन्द्रीकरण हुआ और ल्हासा उसकी राजधानी बनी। परिणामतः शासन के साथ-साथ बौद्ध धर्म और संस्कृति भी तिब्बत के अन्य भागों में फैलती प्रारम्भ हुई।

इसके बाद ७०५ ई० में रव्री-ज्सुग-ल्दे-वत्सन तिब्बत का सम्राट बना। उसने भी इसके प्रचार और विस्तार के लिए प्रयत्न किया। उसने वहाँ अनेक विहारों का निर्माण कराया। संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद कराया और खोतान से अनेक बौद्ध भिक्षुओं को निमंत्रिण किया। उसने इसके प्रचारार्थ लेख लिखवाया। परिणामतः आठवीं शदी में बौद्ध धर्म तिब्बत में बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। फिर जब रव्री-स्रोन्-ल्दे गद्दी पर बैठा तो भारतीय बौद्ध पन्डितों और दार्शनिकों का प्रभाव पुनः बढ़ गया। शान्तराक्षित उसका प्रायः धर्म गुरु था, जिसके कहने पर उसने भारत से पद्म-सम्भव नामक बौद्ध तन्त्र के महाचार्य को तिब्बत आने के लिए निमन्त्रण दिया।

पद्म-संभव एक अत्यन्त कुशल धर्म-प्रचारक था। उसने वहाँ के देशी अन्ध-विश्वासों को अपने इस नये धर्म में आत्मसात कर लिया और जनता में ऐसे जादू भरे धर्म और पूजा का उपदेश दिया। इससे पिशाच-शक्तियाँ वश में आ जाती थीं। वह स्थान देखकर उपदेश देता था और अपनी दैवी शक्ति के ज्ञान को रहस्यमयी भाषा में लिखता था। उसके इस धर्म-प्रचार में स्त्रियाँ विशेष रूप से सहायक थीं। वह

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वास्तव में उनसे घिरा रहता था और उनके माध्यम से अपनी तान्त्रिक साधना करता था। उसने धीरे-धीरे इस तरह वहाँ अपनी जड़ जमाई और ल्हासा से तीस मील दूर बंगाल की ओदन्तपुरी के समान खम्भे का बौद्ध विहार बनवाया। शान्तरक्षित यहाँ का प्रधान आश्चर्य बना। इसी समय से तिब्बत में लामा धर्म की सही संस्थापना मानी जाती है। यह धीरे-धीरे एक साहित्यिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ, जहाँ संस्कृत में लिखे बौद्ध ग्रन्थों का बड़े पैमाने पर अनुवाद किया जाने लगा। कश्मीरी पन्डित वैरोचन अपना अनुवाद-कार्य यहीं किये था। इसमें भारत से लाकर बौद्ध प्रतिमाएँ रक्खीं गई। यहाँ बुद्ध का पूजन होता था। इस तरह यह विहार लामा धर्म, कला, और उसके साहित्य इत्यादि के प्रचार का एक केन्द्र बन गया।

यहीं से पुनः उसका विस्तार हुआ। वह आस-पास फैलने लगा। पश्चिम में तारिम नदी की घाटी में उसका विस्तार हुआ, जहाँ से तिब्बती ग्रन्थ अधिक मात्रा में मिले हैं। सम्भवतः इसी समय पश्चिम-दक्षिण में स्थित तिब्बत से लगे हिमाचल के सीमान्त प्रदेशों में लामा धर्म पहुँचा। इसमें पद्म-संभव के द्वारा प्रेरित लामा धर्म-प्रचारकों ने हाँथ बँटाया। पद्म स्वयं ही इस क्षेत्र में आया था। ८ वीं श० के अन्तिम चरण में उसे हम मन्डी के निकट रिवाल्सर झील के पास निवास करते हुए पाते हैं। वह इस स्थान पर बहुत दिनों तक रहा। वहाँ उसने एक बौद्ध विहार का निर्माण करवाया और इस क्षेत्र में लामा धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयत्न किया जिसमें सम्भवतः वह सफल न हुआ।

लेकिन लाहौल और स्पिति तथा किन्नौर के क्षेत्रों में उसे निश्चित रूप से सफलता मिली। जाहिर है कि तिब्बत से चलकर लाहौल और स्पिति होता हुआ वह रिवाल्सर आया था। मार्ग में उसने लामा धर्म का प्रचार किया। उसने अपने शिष्यों को वहाँ लामा धर्म के प्रचार एवं उसकी व्यवस्था की जिम्मेदारी सौंपी। दुर्भाग्य से यहाँ के लामा धर्म के प्रचार एवं विस्तार के इस प्रथम स्तर पर प्रकाश डालने वाले तथ्यों का अभाव है, अतएव इस पर इस समय अधिक प्रकाश डालना बड़ा कठिन है।

कहा जाता है कि तिब्बत में पदम-संभव का थोड़ा समय बाद ही विरोध होना प्रारम्भ हो गया। उसके रहस्यमय जादू-टोने से भरे धर्म का विरोध चीन में भी हुआ था, अतएव उसे तिब्बत छोड़ना पड़ा। असम्भव नहीं है कि वहाँ इस धर्म को लोक-प्रिय बनाने के बाद वह सीमान्त-क्षेत्रों में स्वयं ही अपनी योजना के अनुसार आया, क्योंकि विदेशों में प्रचार करने के बाद अपने देश में इस नये धर्म का प्रचार करना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उसका उद्देश्य था। यह उसकी अभिलाषा और योजना का एक अंग था। अतएव, उसने अपने लगभग पच्चीस शिष्यों को वहाँ के धर्म संगठनों को सँभालने के लिए छोड़ा और स्वयं लाहौल तथा स्पिति होता हुआ रिवाल्सर (मण्डी) चला आया।

तिब्बत में रल्पकन, जो सम्राट रवी-स्रोन-ल्दे-त्सन का पौत्र था उसके राज्यकाल में इस धर्म का पुनः आगे विकास हुआ। वहाँ अनेक बिहारों का निर्माण हुआ। इन्हें सरकारी जमीने मिलीं और उनके संगठन के लिए कर की भी व्यवस्था की गई। बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद कार्य तेजी से चला और लामा धर्म पुनः प्रचलित हो गया। परन्तु उसके भाई लंगडरमा से यह न देखा गया। उसने अपने सम्राट भाई की हत्या कर दी। इसके बाद लामा धर्म को उसने समूल विनष्ट करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया। परिणामतः अनेक बिहार नष्ट किए गये, बौद्ध धर्म से सम्बन्धित ग्रन्थालयों को योजनानुसार जलाया गया और तिब्बत से भारतीय बौद्ध भिक्षुओं का निष्कासन हुआ, जिनके परिणामस्वरूप वहाँ से ये लोग पद्म-संभव की तरह लाहौल, स्पिति, किन्नौर और लद्दाख चले आये। इसे लामा धर्म के इस क्षेत्र में प्रचार एवं विस्तार का दूसरा चरण मानना असंगत न होगा।

वहाँ तिब्बत में लामा धर्म के विनाश का कार्य अधिक दिन तक न चल सका और तीन साल बाद पुनः इस धर्म को जीवित रहने का अवसर मिला। एक लामा ने लंगडरमा की हत्या कर दी और वह इस धर्म का नेता बन गया। परन्तु सम्राट के मरने के बाद तिब्बत का विघटन शुरू हो गया। इससे लामा धर्म का विकास लगभग एक शताब्दी से अधिक समय के लिए दब गया।

परन्तु तिब्बत में लामा धर्म मरा नहीं। वहाँ उसका पुनः उत्थान हुआ और ग्यारहवीं शताब्दी में तिब्बत में भारतीय बौद्ध भिक्षुओं और दार्शनिकों का पुनः आगमन प्रारम्भ हुआ। इसमें ल-चेन, लो-चन, राजकीय लामा यशस्-होद तथा अतीश दीपंकर प्रमुख हैं। इनमें से अधिकांश पन्डितों की शिक्षा-दीक्षा नेपाल में हुई थी और कुछ कश्मीर में भी पढ़े-लिखे थे। यशस-होद ने अपने युवक लामाओं को बौद्ध धर्म एवं दर्शन में शिक्षा एवं दीक्षा पाने के लिए भारत के विभिन्न भागों में भेजा। इनमें से अनेक को भिक्षु धर्मपाल ने दीक्षित किया, जो मगध से आकर नेपाल में रहने लगा था।

इन नवागत बौद्ध विद्वानों में अतीश दीपंकर (९८० ई० १०५३ ई०) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय[४६] है। वह बंगाल का निवासी था, जहाँ ग्यारहवीं शताब्दी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में बौद्ध धर्म एवं दर्शन का पुनरुत्थान हुआ था। वह विक्रमशीला विश्वविद्यालय का प्रधान आचार्य था और आमन्त्रण पाने पर वह १०३८ ई० में तिब्बत आया, जहाँ उसने कालचक्र तन्त्र नामक नये बौद्ध धर्म का उपदेश दिया, जिसे भारतीय बौद्ध धर्म का विकृत रूप माना जाता है। इसके अनन्तर पुनः कुछ समय के लिए लामा धर्म विशेष रूप से पल्लवित हुआ। तिब्बत में वह राज धर्म था ही, अतएव लामा सम्राटों की शक्ति और भिक्षुओं की मेधा पाकर वह आस-पास के क्षेत्रों में और भी द्रुतगति से फैलने लगा। उसके बाद उससे शिष्य ब्रोम्स्टोन ने लामा धर्म में एक नये सम्प्रदाय को जन्म दिया, जिसे हम कदम्य सम्प्रदाय कहते हैं। बाद में इसी सम्प्रदाय विशेष से गेलुक्या सम्प्रदाय का जन्म हुआ।

अतीश और उसके शिष्य ब्रोमस्टोन के प्रयत्नों के फलस्वरूप लामा बौद्ध धर्म का आस-पास के क्षेत्रों में अत्यधिक विस्तार हुआ। लद्दाख से लेकर स्पिति के क्षेत्रों में अनेक स्थानों पर बौद्ध-विहारों का संस्थापन हुआ, जिनकी सूचना हमें चीनी और तिब्बती ग्रन्थों से होता है। स्पिति में स्पित की ओर ताबों के बौद्ध बिहार इसी काल में निर्मित हुए, जिन्हें प्राचीन हिमालय के भवन-निर्माण कला का अद्वितीय उदाहरण माना जा सकता है। इसी समय स्पिति नदी के उस पार ररेना नामक ग्राम में भी एक बिहार का निर्माण किया गया, जिसके खंडहर आज भी देखे जा सकते हैं। यहाँ निर्मित इस काल के अन्य बौद्ध बिहारों में दन्खर और त्हारी के बौद्ध मंदिर गिनाये जा सकते हैं, जिनके अवशेष अब पहचाने भी नहीं जाते हैं। लेकिन इन बौद्ध बिहारों का उल्लेख साहित्य में यत्र-तत्र मिलता है, जिनकों रिन्चेन् ल्जन्पो नामक तिब्बती लामा (ग्यारहवीं शदी) के जीवन चरित्र का उल्लेख किया जा सकता है जिसके अनुवाद का उपयोग फ्रैन्के ने अपने ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थ में लगभग १०८ बौद्ध मंदिरों का उल्लेख है, जो लद्दाख से लेकर स्पिति तक फैले हुए थे। इस तथ्य से ग्यारहवीं शदी तक इस क्षेत्र में प्रचलित और विकसित बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

यह वास्तव में तिब्बत में लामा बौद्ध धर्म के पुर्नविकास का परिणाम था, जिसमें अतीश दीपंकर की देन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बाद में तिब्बत में इस धर्म का और भी विकास हुआ। तेरहवीं शदी में जब साक्य पन्सेन जो राजकीय घराने से सम्बन्धित था, साक्य विहार का प्रधान बना तो इस धर्म का विस्तार उत्तर में मंगोलिया तक हुआ। उसे हर तरह की शिक्षा मिली हुई थी। वह मंगोल सम्राट कुब्ले खान के इलाज के लिये आमन्त्रित किया गया। सम्राट उससे अत्यधिक प्रभावित हुआ

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और उसने उससे बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली। इसके परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म तथा कला का अत्यधिक विकास हुआ। उसके साम्राज्य के विकास एवं विस्तार के साथ इसका भी विस्तार हुआ। चारों ओर अनेक बौद्ध मंदिरों एवं बिहारों का निर्माण हुआ और अनेक बौद्ध मूर्तियाँ निर्मित हुई, जिनमें बौद्ध लामाओं के भी चित्र बनाये गये।

इसके बाद चौदहवीं शदी में तिब्बत की धरती पर सोन्ग खापा के रूप में एक महान धर्म-सुधारक का आगमन हुआ, जिसे लामा बौद्ध धर्म का प्रधान सुधारक माना जाता है। उसने इसका संगठन किया और आधुनिक लामा बौद्ध धर्म के रूप का कुछ स्तर तक निर्माण किया। वह तिब्बत और चीन की सीमा पर स्थित कन्सु नामक स्थान पर पैदा हुआ था। उस पर बचपन से ही इस धर्म का प्रभाव पड़ा हुआ था, अतएव वह जब सात वर्ष का था, तभी इस धर्म में दीक्षित हो गया था। उसने अनेक गुरूओं से शिक्षा ली, जिनमें सम्भवतः रोम के कुछ धर्म-प्रचारक भी सम्मिलित थे। सावय बिहार-दिकुंग और ल्हासा में उसे उच्च शिक्षा मिली, जो लामा बौद्ध धर्म एवं संस्कृति के एक प्रधान केन्द्र के रूप में विकसित हो रहे थे।

उसने पूर्व प्रचलित लामा बौद्ध धर्म में अनेक सुधार किए। उसने बिहारों में अनुशासन पर अधिक जोर दिया, जिसमें पवित्र जीवन, ब्रह्मचर्य और अन्य प्रकार के विशुद्ध और सादे रहन-सहन पर बल दिया जाता था। उसने दैनिक प्रार्थना पर भी अधिक ध्यान दिया। इसके साथ-साथ लामा धर्म में प्रचलित और बुद्धिमान तान्त्रिक तत्वों और जादू-टोने आदि के प्राधान्य को कम करने का प्रयास किया। जाहिर है कि इस समय तक इस धर्म में जादू-टोने के साथ-साथ स्त्रियों की साधना और पूजा में अत्यधिक स्थान दिया गया था, जिस पर पदम-सम्भव और अतीश दीपंकर आदि पूर्व-कालीन बौद्ध-प्रचारकों ने अधिक बल दिया था। इससे लामा बौद्ध धर्म में एक नए सम्प्रदाय का जन्म हुआ, जिसे हम गेलुग्पा लामा बौद्ध धर्म सम्प्रदाय कहते हैं। इसमें प्रधान लामा अध्यक्ष होता था और उसके आदेश से बिहार एवं धर्म का विकास एवं प्रचार किया जाता था। इसे गेरूआ बौद्ध धर्म सम्प्रदाय भी कहते हैं, क्योंकि इस सम्प्र-दाय वाले पीले रंग की टोपी और उसी रंग का कटिबन्ध पहनते थे। इसके विपरीत पूर्व प्रचलित धर्म एवं आचार-विचार में आस्था रखने वाले लाल रंग की टोपी और कटिबन्ध पहनते थे और सुधारहीन धर्म में आस्था रखते थे।

सोन्ग खापा के संगठन स्वरूप इस धर्म में एक नूतन चेतना का जन्म हुआ।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उसने अनेक नए बौद्ध बिहारों की स्थापना की, जिनमें ल्हासा के समीप स्थित सेर तथा देपुंग के बौद्ध मठों का उल्लेख करना आवश्यक है। टशिल हुम्पो का बिहार भी सम्भवतः उसी के जीवनकाल में बनवाया गया। लेकिन उसकी स्थापना का श्रेय कुछ विद्वानों ने उसके भान्जे और उत्तराधिकारी गेडेन-डब को दिया है, जिसने उसकी मृत्यु (१४१७ ई०) में बाद लामा बौद्ध धर्म की अध्यक्षता की।

उसके अनेक शिष्य थे, जिनमें व्यम्स-चेन-चोंस्जे तथा म्खस-गुबूर्जे का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तिब्बत की बौद्ध कला में इन्हें गुरु के साथ दिखाया जाता था। इनमें म्खस-गुबूर्जे को बुद्ध अमिताभ का अवतार माना जाता है और अवतार में उसे आठवाँ स्थान दिया जाता है। यहाँ स्मरणीय है कि लामा बौद्ध धर्म में गौतम के शिष्य सुभूति को प्रथम अवतार और संभल के सम्राट मन्जुश्री कीर्ति को दूसरा अवतार माना जाता है।

म्खस-गुबूर्जे बाद में लामा बौद्ध धर्म का अध्यक्ष बना, जिसे प्रधान लामा कहते हैं। वह ल्हासा में रहता था। उसने इस धर्म के विस्तार और प्रचार में बड़ा काम किया और उसके प्रयत्न के फलस्वरूप हिमाचल के स्पिति आदि क्षेत्रों में लामा बौद्ध धर्म का पुनः प्रचार एवं विस्तार हुआ।

मध्यकाल की इन शताब्दियों में लाहौल और स्पिति में बौद्ध धर्म के प्रसार का दूसरा स्रोत लद्दाख भी था, क्योंकि यहाँ के कुछ भाग इस समय वहाँ के राजनैतिक अधिकार और प्रभाव-क्षेत्र में थे। तिब्बत के सम्राट लंगडरमा की मृत्यु के बाद ही तिब्बत-साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया था और लद्दाख में उसके वंशजों की प्रायः एक नई इकाई बन गई थी। उसने समय-समय पर अपना विस्तार करने का प्रयास किया था। लाहौल और स्पिति तथा किन्नौर जिलों के कुछ भाग तिब्बत से सीमावर्ती होने के कारण वहाँ की राजनैतिक शक्ति और उथल-पुथल के भी शिकार होते रहे हैं। परिणामतः तिब्बत के लोग कभी-कभी इन क्षेत्रों में आकर बस जाते थे और अपनी संस्कृति से यहाँ के देशी वातावरण को प्रभावित करते थे। इसके साथ साथ व्यापार तथा अन्य सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण तिब्बत और लद्दाख इन क्षेत्रों के धार्मिक विश्वासों और अन्य सांस्कृतिक पक्षों को सदैव ही प्रभावित करते रहे हैं।

संस्कृति का विकास—

इस तरह हम देखते हैं कि अत्यन्त प्राचीन काल से हिमाचल प्रदेश में बौद्ध धर्म का आगमन हुआ और उसके साथ-साथ यहाँ संस्कृति के विभिन्न अंगों का पदार्पण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हुआ। लिपि, साहित्य, शिक्षा, कला एवं संस्कृति के अन्य क्षेत्रों में इस तरह बौद्ध धर्म और संस्कृति की देन महत्वपूर्ण है। लद्दाख, लाहौल, स्पिति तथा किन्नौर जैसे सीमान्त-क्षेत्रों में तो बौद्ध संस्कृति की देन मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

लेखन-कला, साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में बौद्ध धर्म विशेष रूप से माध्यम रहा है। पूरे हिमाचल को लिपि का ज्ञान संभवतः बौद्ध भिक्षुओं के माध्यम से हुआ। यह सर्वविदित है कि ई० पू० की शताब्दियों में बौद्ध बिहार शिक्षा के प्रमुख केन्द्र माने जाते थे, जहाँ बौद्ध धर्म एवं दर्शन के अतिरिक्त अन्य सभी विद्याएं साथ-साथ पढ़ाई जाती थीं। हिमाचल में काँगड़ा जिले में कन्हिआर[४७] और पत्थर नामक स्थानों से ब्राह्मी लिपि बौद्ध विहार के सम्पर्क में मिलती है, जिसे सम्भवतः सम्राट अशोक के काल में यहाँ आने का अवसर प्राप्त[४८] हुआ था। यह बाद में कनिष्क के राज्य-काल में यहाँ के अन्य सुगम्य क्षेत्रों में फैली। खरोष्ठी लिपि भी बौद्ध भिक्षुओं को ज्ञात थी और उनकी सहायता से वह यहाँ कुछ समय तक फलती-फूलती रही। लेकिन महायान धर्म के साथ ब्राह्मी लिपि ही चल सकी। काँगड़ा जिले में स्थित फतेहपुर नामक स्थान से प्राप्त पीतल की बनी बुद्ध-मूर्ति की वेदिका पर[४९] दूसरा महत्वपूर्ण अभिलेख मिला है, जहाँ दो पंक्तियाँ गुप्त कालीन लिपि में लिखी गयी हैं। लिपि-विकास और मूर्ति-विज्ञान के विकास के आधार पर इस लेख को छठी शताब्दी ई० में रक्खा जा सकता है। इसमें शाक्य भिक्षु धर्म प्रिय और धर्म सिंह नामक बौद्ध विद्वानों का उल्लेख है। प्रयुक्त भाषा संस्कृत है, जिसमें व्याकरण की दृष्टि से कुछ अशुद्धियाँ भी हैं, जो लेखक की अज्ञानता की परिचायक हैं।

किन्नौर जिले से ग्यारहवीं शदी में कुटिलाक्षर (अर्द्ध देन नगरी) और भेट लिपि में लिखा अभिलेख मिलता है। इसी काल का या इससे कुछ बाद का टाँकरी में लिखवाया अभिलेख स्पिति के ताबों बौद्ध विहार[५०] से प्राप्त हुआ है। काँगड़ा में स्थित चारी नामक स्थान से वज्रवाराही की मूर्ति की वेदिका पर उत्कीर्ण तान्त्रिक कालीन अभिलेख भी यहाँ उल्लेखनीय है। इस तरह लिपि और साहित्य के क्षेत्र में बौद्ध धर्म की देन अमूल्य है।

सातवीं-आठवीं शदी तक जालन्धर, काँगड़ा, कुल्लू तथा किन्नौर के कुछ स्थानों पर बौद्ध केन्द्र होने के कारण दर्शन, साहित्य और शिक्षा की दिशा में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। लेकिन दुर्भाग्य है कि इस क्षेत्र से तत्कालीन बौद्ध दार्शनिकों या साहित्यकारों के नाम नहीं मिलते हैं। कहा जाता है कि असंग और बसवन्धु-जैसे बौद्ध दार्शनिक पंजाब

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में हुए, लेकिन इन पर्वतीय घाटियों में पैदा हुआ कोई बौद्ध भिक्षु साहित्य या दर्शन के क्षेत्र में कुछ काम कर सका, यह हमें अज्ञात है। छठीं शदी में लिखाये गये काँगड़ा के एक अभिलेख में धर्म प्रिय और धर्म सिंह नामक बौद्ध भिक्षुओं का नाम मिलता है, जैसा कि पहले लिखा गया है। वे इस क्षेत्र के बौद्ध दार्शनिक थे। लेकिन उनके किसी ग्रन्थ को सूचना हमें नहीं है।

ग्यारहवीं शदी ई० से लाहौल, स्पिति, लद्दाख एवं किन्नौर के क्षेत्रों में शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में बौद्ध-बिहारों को देन अमूल्य है। की, तात्रों तथा कनम-जैसे प्रधान बिहार शिक्षा के क्षेत्र में सदैव से अद्भुत काम करते रहे हैं। प्रधान बिहारों के साथ कंजूर पुस्तकालय प्रायः नियमतः रहता रहा है। इस क्षेत्र में पुस्तकों का पूजन, उनका समय-समय पर पारायण और उनसे सम्बन्धित मेले, जलूस और त्यौहार, भोजन एवं पान-गोष्टियों का प्रबन्ध इन क्षेत्रों का संस्कृति की प्रधान विशेषता रही है। यहाँ की वंशानुगत शिक्षा-व्यवस्था, बौद्ध धर्म, दर्शन तथा संस्कृति के अन्य अंगों को निरन्तर जीवित रखने के लिए जिम्मेदार रही हैं।

पहले ही कहा जा चुका है कि लद्दाख में बौद्ध धर्म ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद करने के लिए कश्मीर से पन्डितों को आमन्त्रित किया जाता[५१] था। सम्राट स्रोनगम्पो ने सातवीं शताब्दी में थुमि सम्मोट को अध्ययन करने के लिए कश्मीर भेजा था। जहाँ उसने लिपि और भाषा का अध्ययन किया। उसने तिब्बती भाषा में व्याकरण की रचना की और तिब्बती भाषा के लिए भारतीय लिपि का प्रयोग करना सीखा। बाद में उसने लद्दाख और तिब्बत में उसका प्रचार किया। यह शायद पहला विद्वान था, जिसने बौद्ध ग्रन्थ करण्ड-व्यूह का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया। इसी प्रकार शान्त रक्षित, पद्म-संभव, रत्नवज्र, अतीश दीपकंर आदि बौद्ध विद्वानों का नाम गिनाया जा सकता है, जिन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। इससे उसका साहित्य और दर्शन अत्यन्त समृद्ध हुआ।

कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म की देन—

सीमान्त प्रदेशीय इन क्षेत्रों की कला के विकास में भी बौद्ध धर्म और संस्कृति की देन अद्वितीय है। पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि सम्राट अशोक ने जालन्धर, काँगड़ा तथा कुल्लू में स्तूपों का निर्माण करवाया था। इनमें काँगड़ा का स्तूप २०० फीट ऊँचा था। ह्वेनसांग ने इन सभी स्तूपों को देखा था। उसके समय में ये कला के अद्भुत स्थान थे। जैसा कि मालूम ही है कि हीनयान बौद्ध धर्म में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

स्तूप की ही पूजा की जाती थीं, क्योंकि उस समय भगवान बुद्ध को मानवशरीर रूप में दिखाना पाप समझा जाता था। उनकी उपस्थिति उनसे सम्बन्धित वस्तुओं जैसे पादुका, त्रिरत्न, अश्व, भद्रासन, बौद्धि वृक्ष और चैत्य या स्तूप आदि से दिखाया जाता था।

स्तूप इन प्रतीकों में प्रधान माना जाता[५२] था। यह जमीन पर गोलाकार मिट्टी-ईंट आदि से बनवाया जाता था, जिसे बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ, उपासक या उपासिकाएँ पूजती थीं। बाद में, इन्हीं स्तूपों की शुंगकाल से कलात्मक रुचि में विकास के कारण ऊँचा बनाने लगे या उसे विभिन्न मूर्तियों से सजाने[५३] लगे।

ह्वेनसांग द्वारा वर्णित और अशोक द्वारा मूलतः बनाये गये हिमाचल के ये स्तूप सम्भवतः बाद में कुषाण काल और गुप्त काल में ऊँचे किये गये। काँगड़े का स्तूप सातवीं श० ई० में २०० फीट तक ऊँचा[५४] था। इससे इस क्षेत्र में वास्तु-कला का विकास हुआ। बाद में महायान बौद्ध धर्म के प्रचार के फलस्वरूप तथा कुछ अन्य कारणों से स्तूप-निर्माण-कला इस क्षेत्र से लुप्त हो गई और उनका स्थान मूर्तिकला और मन्दिर निर्माण-कला ने ले लिया।

मूर्ति-कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म और संस्कृति की देन अमूल्य है। (देखिये चित्र १) लाहौल, स्पिति, कुल्लू तथा किन्नौर आदि जिलों से इस कला के अनेक उदाहरण मिले हैं, जो हिमाचल के ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय मूर्तिकला के सुन्दर उदाहरण माने जाते हैं। काँगड़े से मिली बुद्ध की आसन मुद्रा में पीतल की बनी मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय[५५] है। यह गुप्तकालीन मूर्ति-कला का अनुपम रूप सामने रखती है। इसमें गान्धार कला का भी थोड़ा-सा प्रभाव परिलक्षित होता है। कुल्लू में सुल्तानपुर से प्राप्त प्रस्तर निर्मित अवलोकितेश्वर की प्रतिमा यहाँ की दूसरी सुन्दर कृति है। इसके बाद तान्त्रिक बौद्ध धर्म के विकास के काल में यहाँ बोधिसत्वों की मूर्तियाँ बनाई गई, जिनमें से कुछ काष्ठ-निर्मित भी हैं। मृत्तिका निर्मित मूर्तियाँ भी यहाँ से मिलती है। यहाँ से प्राप्त तारा की प्रतिमाएँ मूर्ति-कला के सुन्दर नमूने हैं। सम्पूर्ण मध्यकाल में बने विहार और मन्दिरों (गोम्रों) में बुद्ध, बोधिसत्वों, तारा या अन्य देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ पूजन हेतु रक्खी जाती थीं। (देखिये चित्र २) अतएव उसकी पूर्ति के लिए इस कला का विकास होना[५६] स्वाभाविक था। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि इनमें से अधिकांश मूर्तियाँ हिमाचल के बाहर से मंगाई जाती थीं। हो सकता है कि यहाँ भी कहीं वे बनाई जाती रही हो, जिसका हमें ज्ञान नहीं है। वैसे हिन्दु प्रतिमाओं

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के अनेक निर्माता इस क्षेत्र में उस समय रहते थे, इसका ज्ञान हमें अभिलेखों से है।

इसी प्रकार बौद्ध विहारों और मन्दिरों में भित्ति चित्र, चित्र और सिल्क-चित्र-कला का भी विकास हुआ। लाहौल, स्पिति और किन्नौर से इस कला के उदाहरण कई स्थानों से मिलते हैं। वास्तव में, यह अजन्ता-चित्रकला परम्परा का अवशेष है, जो हमें यहाँ की उपत्यकाओं और पर्वत-चोटियों में निर्मित मन्दिरों या विहारों में मिलते हैं।

ललित कलाओं का विकास—

बौद्ध धर्म को देन यहाँ की संस्कृति के अन्य अंगों में भी महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ नृत्यकला और अभिनय का भी विकास इस धर्म के सन्दर्भ में इस क्षेत्र में हुआ। वाद्य-कला भी बौद्ध-पूजा मन्दिरों में निरन्तर विकसित होती रही है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये कलाएँ भारत के अन्य भागों से एकदम भिन्न हैं। यहाँ के लोक-नृत्य और वाद्य-यन्त्र यहाँ की सांस्कृतिक उल्लेखनीय पक्ष हैं। संगीत-कला भी इसी प्रकार बौद्ध बिहारों या परिवारों में विकसित होती रही।

हिमाचल के बौद्ध बिहार एवं मन्दिर –

वास्तु कला के क्षेत्र में तो बौद्ध धर्म की इस क्षेत्र में देन अपूर्व है। लाहौल, स्पिति तथा किन्नौर बौद्ध बिहारों और मन्दिरों से भरे पड़े हैं।[५७] अत्यन्त प्राचीन बिहारों का वर्णन अभिलेखों में या ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण में मिलता है। लाहौल, स्पिति तथा किन्नौर के अनेक बौद्ध बिहार तथा मन्दिर तो आज भी भवन-निर्माण कला के सुन्दर उदाहरण हैं। कहीं-कहीं-गुफा मन्दिरों की कला के भी नमूने मिलते हैं लेकिन निर्मित बौद्ध मन्दिर जिन्हें गोन्पा कहा जाता है--के उदाहरण अनेक हैं। ये इस क्षेत्र की भवन-निर्माण कला के उल्लेखनीय उदाहरण हैं, जो पहाड़ी भागों को छोड़ कर भारत के अन्य भागों में नहीं मिलते हैं।[५८]

किन्नौर—

किन्नौर बौद्ध धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। यह हिमाचल का अत्यन्त रमणीक जिला है। तिब्बत की सीमा पर कल-कल निनादिनी सतलज नदी की घाटी में ७० मील लम्बा और लगभग उतना ही चौड़ा बसा हुआ यह एक भूभाग है। जो कहीं भी ५००० फीट से नीचा नहीं है। और यहाँ की अधिकतम ऊंचाई ११००० फीट से भी अधिक है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

साहित्य में इसका बहुचर्चित वर्णन है। यहाँ इसे किन्नर नाम से अभिहीत किया गया है, जो बिगड़ते-बिगड़ते अब किन्नौर बन गया है। यहाँ पहुँचने के दो प्रसिद्ध मार्ग है। प्राचीन काल में देहरादून जिले में स्थिति काल्सी नामक स्थान से होकर यहाँ पहुँचा जाता था। यह मार्ग अब भी चालू है, लेकिन यहाँ जाने के लिए हिन्दुस्तान-तिब्बत मार्ग सबसे सुगम है, जिससे होकर शिमला नारकंडा, कोटगढ़ होते हुए तिब्बत की सीमा तक जाया जा सकता है।

हिमाचल का यह जिला बौद्ध पुरातत्व में अत्यन्त घनी है। यह अत्यन्त प्राचीन काल से बौद्ध धर्म और संस्कृति का प्रधान क्षेत्र रहा है। आठवीं शताब्दी ई० के बाद लामा बौद्ध धर्म यहाँ निरन्तर अबाधगति से फलता-फूलता रहा है। इस-लिए यहाँ अनेक स्थानों पर बौद्ध बिहार एवं कला तथा संस्कृति के अन्य केन्द्र स्थित रहे हैं। इनमें पू, चिनी, कनम तथा कल्पा आदि स्थान विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। चीनी में एक लामा मन्दिर है, जहाँ वैशाखी पूर्णिमा को बुद्ध जयन्ती के अवसर पर सभी भागों से लामा आते हैं। यह ग्राम एक पुराने दुर्ग के पास बसा है, जो कुछ ऊँची पहाड़ी पर बनवाया गया था। यह बाद में आग में जलकर खाक हो गया। कुछ भी हो, यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है, परन्तु प्रमाण के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि यह स्थान कब लामा धर्म का केन्द्र बना।

यहाँ से कुछ दूर सतलज नदी के उस पार स्थित रिब्बा नामक स्थान लामा बौद्ध धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण केन्द्र है। महान भाषान्तरकार रिन्-छे-जड्ण्प्रों (रत्नभद्) ने ग्यारहवीं शताब्दी में यहाँ एक बौद्ध बिहार का निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि जब वह इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहा था, तो वहाँ की जनता ने इसे पसन्द नहीं किया। जाहिर है कि यह मध्य काल का तन्त्र प्रधान लामा धर्म था जो तिब्बत से आया था और जिसमें जादू-टोना तथा स्त्रियों का प्रयोग अधिक किया जाता था। अतएव वह यहाँ लोकप्रिय न हो सका। लोगों ने उसका विरोध किया। लोग उसकी हत्या भी करना चाहते थे, अतएव कहा जाता है कि वह सतलज के उस पार छत से रारङ्ग में कूद गया, जहाँ उसके गिरने की जगह वाले पत्थर पर आज भी उसके पैरों के चिह्न बने हैं। इस जनश्रुति में कितना सत्य है——इस पर कुछ कहना अनुमान लगाना ही होगा, जो सत्य से दूर हो सकता है।

जंगी इस क्षेत्र का दूसरा प्रधान बौद्ध केन्द्र है। यह एक अत्यन्त प्राचीन ग्राम है, जो सतलज नदी से काफी ऊँचाई पर बसा है। यहाँ से कुछ दूर एक अत्यन्त

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

निर्जन गुफा में मिट्टी के बने चार पूजा-स्तूप विद्यमान हैं। ये कितने पुराने हैं—यह कहना कठिन है, लेकिन दो पूजा-मन्डलों में कुटिलाक्षर में एक लेख उत्कीर्ण है, जिसे राहुल सांकृत्यायन ने 'ये धर्मा हेतु प्रभाव' पढ़ा है। एक मंडल में मोटिया अक्षर में वही लेख लिखा गया है। इससे यह प्रमाणित है कि यह स्थान अत्यन्त प्राचीन काल से—संभवतः १०वीं-११वीं शदी से बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र था। गुफा और उसमें स्तूप बनाने की परम्परा उसे और भी प्राचीन सिद्ध करती है। अधिक संभव है कि यहाँ कोई प्रधान बौद्ध-विहार था, जो काल के गाल में समाहित हो गया। हो सकता है कि उत्खनन करने से विहार के अवरोध यहाँ मिले और अन्य कला-कृतियाँ भी यहाँ से उपलब्ध हों।

लिप्सा यहाँ का दूसरा प्रधान बौद्ध केन्द्र है। यहाँ के विहार को 'गुंबा' कहते हैं। यह आधे पहाड़ की ऊँचाई पर स्थित है। इसे लामा देवाराम ने बनवाया था, जिसे उसके पुत्र ने पूरा किया था। देवाराम ज्योतिषी लामा था और पूरे तिब्बत की बौद्ध संस्कृति से परिचित था। यहाँ से उसने एक नया पंचाङ्ग निकाला था।

इस गुम्बा से लगे हुए दो अन्य बड़े-बड़े मन्दिर है, जिनमें एक भगवान शाक्य मुनि बुद्ध को समर्पित है और दूसरा बोधिसत्व मैत्रेय को अर्पित किया गया है। ये दोनों मन्दिर बड़े विशाल हैं। उन्हें चित्रों, मूर्तियों तथा भित्तिचित्रों से अत्यधिक अलंकृत किया गया है। इसके निर्माण से बौद्ध कला-परम्परा का ध्यान रक्खा गया है। कहा जाता है कि निर्माता ने सारनाथ के मूलगन्ध कुटी को देखकर वहाँ की कला-परम्परा की नकल करना चाहा और जापानी चित्रकारों की भित्तिचित्र-कला को सच्ची अनुकृति की। लद्दाख के एक चित्रकार को बुलाकर तदनुसार चित्रों का निर्माण करवाया। वास्तव में यह आधुनिक काल में निर्मित मन्दिर है, जिसमें रुढ़िगत कला-परम्परा का पालन किया गया है। यह स्थान बौद्ध साहित्य एवं संस्कृति का आधुनिक परन्तु प्रधान केन्द्र है। यहाँ का पुस्तकालय बड़ा विशाल है, जिसमें कंजूर और तंजूर के विशाल संग्रह रक्खे गये हैं, जो ल्हासा के पाठ से मेल खाते हैं। इस तरह यह लामा धर्म, साहित्य संस्कृति, दर्शन एवं कला का एक प्रधान केन्द है। यद्यपि कला के प्राचीन अवशेष यहाँ से नहीं मिले हैं, तथापि हो सकता है कि यह स्थान लामा धर्म का एक परम्परागत सांस्कृतिक केन्द्र रहा हो।

यहाँ उल्लेखनीय यह है कि इस स्थान पर कंजूर की शोभायात्रा का आयोजन किया जाता है, जिसमें ग्राम के स्त्री और पुरुष कंजूर की एक-एक पुस्तकों को पीठ पर रख कर अपने ग्राम की परिक्रमा करते हैं। यह सोचा जाता है कि इससे ग्राम

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

की बुरी आत्माएँ, भूत एवं पिशाच वहाँ से भाग जाते हैं। इस तरह कंजूर इस ग्राम का अब तक एक देवता बन चुका है, जो ग्राम वालों का कल्याण करता है, ऐसी यहाँ के लोगों की धारणा है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में भी धर्म-ग्रन्थों को गज की पीठ पर रखकर नगर में घुमाने की परम्परा का वर्णन मिलता है। अतः यह कहना असंगत न होगा कि यह सांस्कृतिक प्रथा मैदानी भागों से यहाँ पहुँची। यह हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का प्रभाव हो सकता है। राहुल सांकृत्यायन का कहना है कि ऐसे पुस्तक-भ्रमण रूस तथा अन्य देशों में भी किये जाते हैं। अतः यह भी हो सकता है कि यह प्रथा यहाँ मध्य एशिया से आई हो, क्योंकि कंजूर और तंजूर पुस्तक-संग्रह भी यहाँ की देन हैं।

यहाँ नीचे ग्राम से बाहर कंजूर का एक अलग देव मन्दिर है, जिसे कंजूर-ल्हाखड् कहते हैं। यहाँ वर्ष में कई बार मेला लगता है, जिसमें सुसज्जित स्त्री-पुरुष नाचते हैं। बीच में १०३ पुस्तकें सजाकर रक्खीं जाती है और तरुण एवं तरुणियाँ शराब में डूब कर नृत्य करती हैं। अन्त में शराब और सत्तू का प्रसाद-वितरण होता है। इस तरह यह मन्दिर यहाँ के सांस्कृतिक जीवन में बड़ा सहयोग प्रदान करता है, और यहाँ के जन-जीवन में अत्यधिक भाग लेता है।

लब्रड्ग दूसरा सांस्कृतिक केन्द्र है, जहाँ सात मन्जिलों का एक दुर्ग आज भी विद्यमान है। यहाँ ऊपर पहाड़ी पर शन्-थुन् ग्यल्पो देवता का एक मन्दिर बना हुआ है, जिसमें कोई मूर्ति प्रतिष्ठापित नहीं है। मन्दिर का निर्माण प्रस्तर-खण्डों से हुआ है, जो लकड़ी के फ्रेम के भीतर जड़े गये हैं। यह पर्वतीय भवन-निर्माण कला की प्रधान विशेषता है। दुर्ग के पास दूसरा मन्दिर है, जिसे यहाँ के ग्राम देवता को समर्पित किया गया है। दुर्ग से नीचे ग्राम में कुण्ड के ऊपर गणेश की मूर्ति रक्खी हुई है जिससे यह सिद्ध होता है कि यह स्थान लामा धर्म और हिन्दू धर्म का सहकेन्द्र था। राहुल सांकृत्यायन का मत है कि यहाँ बाद में हिन्दू धर्म आया और पहले यह स्थान बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र था। लेकिन यह स्थान स्थानीय मूल धर्म का भी जीवित उदाहरण लगता है, जिसका बाद में लामा धर्म के साथ समन्वय किया गया।

स्पू किन्नौर का दूसरा प्रधान बौद्ध केन्द्र हैं। यहाँ ग्यारहवीं शदी में रिन्-छेन-जड्गपो (रत्नभद्र) कश्मीर जाते समय कुछ समय के लिए रुका था। तभी उसने यहाँ इस मन्दिर का निर्माण कराया था। इसे किन्नौर का एक प्रधान बौद्ध-स्थान माना जाता है। वास्तव में यह स्थान कश्मीर से तिब्बत जाने वाले प्रधान मार्ग पर स्थित था, अतएव यह एक व्यापार और धर्म-केन्द्र के रूप में विकसित कर गया।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

यहाँ का प्राचीन मन्दिर तो समय के कारण नष्ट हो गया जिसका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा। परन्तु मन्दिर में रक्खी प्रतिमाएँ निश्चित रूप से प्राचीन लगती है। इनमें शाक्य-मुनि बुद्ध और उनके प्रधान शिष्य सारिपुत्र और मौद्-ग्लायन की मूर्तियाँ विशेष रूप से दर्शनीय है, जो वृत्तिका से निर्मित हैं। अन्य कला-कृतियों में बौधिसत्व अवलोकितेश्वर और काष्ठ-निर्मित दूसरे बोधिसत्व की मूर्तियाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय है। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि अवलोकितेश्वर की मूर्ति को लोग अब तारा का रूप प्रदान किये हैं और उसकी पूजा भी उसी रूप में करते हैं। यहाँ की अन्य कलात्मक अमूल्य कृतियों में प्रज्ञापारमिता की भोट भाषा में लिखित एक हस्तलिखित पुस्तक है, जिसके प्रारम्भ के कुछ पृष्ठों पर सुन्दर चित्र बने हैं। ये तत्कालीन चित्रकला के सुन्दर उदाहरण हैं। इसमें प्रयुक्त लिपि के आधार पर मन्दिर के सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डाला जा सकता है।

यहीं थोड़ी दूर पर खेतों में स्थित एक-दूसरा मंदिर भी उल्लेखनीय है जो प्राचीन काल में बोधिसत्व शाक्य मुनि को समर्पित किया गया था अथवा यह रिग-सुम- गोन्पम का मन्दिर था, जिसमें बोधिसत्वत्रय अर्थात् अवलोकितेश्वर, मंजुश्री और वज्रपाणि की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित थी, जिनमें दो की मूर्तियाँ आज भी विद्यमान हैं। तीसरी प्रतिमा हटा ली गई है। यह निश्चित रूप से एक प्राचीन मंदिर का स्थान है, क्योंकि आधुनिक मंदिर एक समतल भूमि पर बना है और वह केन्द्र में निर्मित है। ऐसा राहुल सांकृत्यायन का मत है। आज कल इस मन्दिर में दोड्जुर (ढोल) रक्खी है जिसे मानी भी कहते हैं। लामा धर्म में मानी-पूजन पन्द्रहवीं शताब्दी में उसके विकास का परिणाम है।

इसी गाँव के पास एक दूसरा गोम्पा पहाड़ी पर निर्मित है, जिसे डुक्पा कहते हैं। वास्तव में यह डुक्पा सम्प्रदाय के पुराने मंदिर का स्थान है, जो गिर जाने के बाद सम्भवतः दोबारा बनवाया गया है। आधुनिक काल में यह आवास-स्थान का काम देता है। केवल ऊपर का एक कक्ष देवालय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ पर लामाकालीन मूर्ति-कला का सुन्दर उदाहरण देखा जा सकता है। यहाँ रक्खी पीतल की बनी दो मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनमें एक गोम्बो देवता की है और दूसरी गोम्बो-ल्हर्जे की, जो मिला-रेस्पा की शिष्या थी, जिसका लामा धर्म में दैवीकरण किया गया था। दूसरी सुन्दर मूर्तियों में काष्ठ निर्मित बुद्ध और अन्य दो प्रतिमायें उल्लेखनीय हैं। पल्दनल्हामों को मूर्ति भी बड़ी सुन्दर कृति है, जिसे यहाँ खच्चर पर आसीन दिखाया गया है। इन्हें काष्ठ-कला का अनुपम उदाहरण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

माना जा सकता है और लामा बौद्ध मूर्ति-कला के विकास का इतिहास जानने में इनसे बड़ी सहायता मिलती है। ये सभी प्रतिमायें बहुत बाद की हैं।

लाहौल—

लाहौल में, जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं, बौद्ध धर्म पहले से ही प्रचलित था। लेकिन आठवीं शताब्दी ई० के बाद इसमें अधिक विकास हुआ। हमें ज्ञात है कि पद्म-सम्भव इसी समय तिब्बत से चलकर रिवाल्सर (मण्डी) गया था। वह सम्भवतः लाहौल में भी रुका था। विद्वानों की यह धारणा सही लगती है कि लाहौल में बौद्ध धर्म के दूसरे स्तर लामा बौद्ध धर्म का प्रचार उसी ने किया था। उसने त्रिलोकनाथ और गुरुघण्टाल नामक स्थानों में भृतप्राय बौद्ध धर्म को पुनः जीवित किया था। त्रिलोकनाथ में जननान्तर से प्राप्त एक जनश्रुति में वर्णन मिलता है कि वहाँ की संगमरमर पत्थर से निर्मित अवलोकितेश्वर की श्वेत प्रतिमा की प्रतिष्ठा उड्यान के बौद्ध पद्म सम्भव ने ही की थी।[५६] हचिन्सन महोदय का कहना है कि गुरुघण्टाल में प्राप्त अवलोकितेश्वर की प्रतिमा के सिर में इसी कला की विशेषताएँ मिलती है। अतएव वह भी पद्म-सम्भव द्वारा संस्थापित की गई थी। इसे मानने में थोड़ा सन्देह होता है, क्योंकि प्रतिमा-निर्माण में संगगरमर पत्थर का प्रयोग काफी बाद में किया गया। इन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कुछ बाद में हुए, लामा बौद्धों ने की होगी। वैसे यह सही मालूम होता है कि लाहौल में तान्त्रिक बौद्ध धर्म का आरम्भ पद्म-सम्भव के प्रयत्न के फलस्वरूप ही सम्भव जान पड़ता है। लेकिन उसका विकास और प्रसार बाद में आये लामा बौद्धों ने अधिक सफलता के साथ किया, क्योंकि यह क्षेत्र स्पिति से लगा हुआ है, जहाँ ग्यारहवीं शदी ई० में अतीश दीपङ्कर के शिष्यों ने तान्त्रिक बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार किया था।

लावेल में भी बौद्ध गोम्पाओं के कई उदाहरण मिलते हैं। इनमें शैशोर्ध का बौद्ध-स्मारक बौद्ध कला का सबसे सुन्दर स्थान एवं उदाहरण मालूम होता है। यह एक बौद्ध-विहार है, जिसमें गोम्पा साथ में ही निर्मित है। यह कीलांग के पीछे एक ऊँची पहाड़ी पर स्थिति है। यह भवन आयताकार रूप में कच्चे गारे-मिट्टी-पत्थर आदि से निर्मित है। इसका छत सपाट है जो भवन की प्राचीनता का द्योतक है। स्मारक के अन्य भागों में छोटा बरामदा समागृह भण्डार, रसोई घर, प्रार्थनाघर, पूजागृह तथा वाद्य तथा अन्य मूर्तियों का कक्ष सम्मिलित है। भवन का निर्माण काष्ठ निर्मित स्तम्भों पर किया गया है जिसकी छत में भी काष्ठ-पट्टियाँ कुशलता के साथ प्रयुक्त हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वास्तव में यह बिहार और गोम्पा का सम्मिश्रित निर्माण है, जैसा कि हमें स्पिति की ओर तावों के बौद्ध स्मारकों में भी दिखाता है। यह निर्माण लामा बौद्ध धर्म, संस्कृति एवं कला का अद्वितीय स्थान मालूम पड़ता है। इसके भीतर तान्त्रिक बौद्ध धर्म के देवी देवताओं के अनेक मुखौटे एवं मूर्तियाँ दिखलाई पड़ती है। दीवारों पर सुन्दर चित्रकारी की गई है। अन्य प्रधान कला-कृतियों में बुद्ध एवं बोधिसत्वों की सुन्दर और विशाल प्रतिमाएँ गिनाई जा सकती है। भवन में रक्खे कुछ पूजा एवं रसोई के वर्तन, वस्त्र एवं झण्डे प्रार्थना चक्र, कुछ पशुओं के सिर और सीगें, पुस्तकें तथा वाद्य-यन्त्र तथा लामाओं से सम्बन्धित कुछ अन्य सामान यहाँ की सांस्कृतिक दशा का परिचय देते हैं। वास्तव में, इस क्षेत्र में ग्यारहवीं-बारहवीं शदी ई० का काल धार्मिक विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्व-पूर्ण समय था। अतीश दीपङ्कर तथा उसके शिष्यों के प्रयत्न के कारण तिब्बत के लामा बौद्ध धर्म के प्रसार का यह महत्वपूर्ण युग था। कांगयुवपा सम्प्रदाय के अनेक लोग धर्म के प्रसार एवं प्रचार में लगे थे, जिनमें टीलो, नारो, मारपा, मिलरस्प आदि लामा बौद्धों का नाम अग्रगण्य है। इस काल में लामा बौद्ध मन्दिरों का चतुर्दिक निर्माण हो रहा था। इसी में गूगे के रिन्सेन जंग्पा का भी नाम गिनाया जा सकता है, जिसने कश्मीरी संगतराशों की सहायता से मन्दिरों का निर्माण करवाया। लाहौल के गुमरांग और सेस्सु के बौद्ध मन्दिर सम्भवत; उसी कारण बनवाये गय, जिसमें यहाँ के कुछ क्षेत्रों में लद्दाखी तिब्बत के राजनीतिक और आर्थिक प्रभाओं का भी कुछ योगदान मालूम पड़ता है। हचिन्सन का कथन है कि इस समय लाहौल में गोजन्गनामक एक महान् बौद्ध लामा हुआ था, जिसका उल्लेख यहाँ की तीन पुस्तकों में किया गया है। कालान्तर में सोलहवीं शताब्दी में लाहौल में तिब्बत के लाल टोपी धारी लामा बौद्धों ने यहाँ के प्राचीन लामा बौद्धों का स्थान ले लिया। ये पीली टोपी वाले सुधारवादी लामा बौद्धों के विकास के कारण तिब्बत से आये जान पड़ते हैं। इनमें भी बाद में दो सम्प्रदाय बन गये, जिन्हें हम ल्हादुग्पा और द्रुंपा नाम देते हैं। यह विभाजन लामाओं के रहन-सहन को लेकर हुआ था। लाहौल में आधुनिक काल में इसी सम्प्रदाय के लामों बौद्ध अधिक मात्रा में मिलते हैं। वैसे लाहौल का अधिकांश भाग, बीच-बीच में कुछ समय को छोड़कर पड़ोसी राजनैतिक इकाइयों कुल्लु और चम्बा के अधिकार या प्रभाव-क्षेत्र में रहा है, जहाँ मध्यकाल में और उसके बहुत पूर्व से बौद्धधर्म का पतन हो गया था और हिन्दूधर्म एवं संस्कृति का बड़े विशाल पैमाने पर प्रचार और विस्तार हुआ था। अतएव इन तथ्यों के परिणामस्वरूप लाहौल में लामा बौद्धों की संख्या उतनी नहीं

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बढ़ी, जितनी कि हमें किन्नौर और स्पिति के क्षेत्रों में मिलती है।

स्पिति—

स्पिति क्षेत्र भी किन्नौर और लाहौल की तरह लामा बौद्ध धर्म और स्मारकों का एक प्रमुख क्षेत्र है।[६०] हम पहले ही लिख चुके हैं कि यहाँ स्थित की तथा ताबों के मन्दिर ग्यारहवीं शदी में बनाये गये थे। इनमें की का बौद्ध बिहार वहाँ के बौद्ध-भवनों में सबसे विशाल है। यह खीबूर तथा काज़ा नामक स्थानों के मध्य स्पिति नदी के बायें किनारे पर की नामक ग्राम के ठीक ऊपर एक पहाड़ी पर निर्मित है, जिसकी ऊँचाई लगभग ११००० फी० है। यह देखने में एक पर्वतीय किले जैसा दृश्य उपस्थित करता है।

हम पहले ही बता चुके हैं कि इस बिहार की स्थापना अतीश के शिष्य ब्रोम-स्टोन ने की थी। इसकी सूचना हमें एक सचित्र पुस्तक से मालूम है, जिसे श्री पी० एगटर्न ने १८६३ ई० में यहाँ के किसी लामा बौद्ध से प्राप्त किया था। इस ग्रन्थ में इस बिहार का एक संक्षिप्त इतिहास उपलब्ध होता है। कोरोसे के तिब्बती-व्याकरण में भी लिखा है कि ब्रोमस्टोन ने रारेंग नामक एक बिहार की स्थापना की थी। यहाँ उल्लेखनाय है कि इस ग्राम के पास रेंग्रिलग नामक एक ग्राम मिलता है जो की बिहार के इतिहास पर प्रकाश डालता है। ऐसा लगता है कि ल्हासा के समीप जिले में स्थित रारेंग नामक बौद्ध बिहार के नमूने पर यहाँ बौद्ध बिहार की स्थापना की गई थी, जिससे तिब्बती बौद्ध धर्म से लामा बौद्ध धर्म का सम्पर्क और सामीप्य जाना जा सकता है।

यह बौद्ध स्मारक, वास्तव में मन्दिर और बिहार का एक सुन्दर सम्मिश्रित नमूना है। मध्य में प्रधान मन्दिर बना हैं, जिसे गोन्पा कहते है। इसके आस-पास बिहार बने हैं जिनमें एक साथ लगभग तीन सौ लामा रह सकते थे। इसके अनेक भाग हैं, जिन्हें विभिन्न कामों के लिए बनाया जाता था। लामाओं के रहने, खाने, सामान रखने तथा पूजा आदि सभी कामों के लिए इन बिहारों में स्थान बनाये जाते थे, जैसा कि हम आगे वर्णन करेंगे।

इस बौद्ध बिहार में पुरानी और नई बौद्ध चित्रकला और मूर्तिकला के नमूने देखे जा सकते हैं। मन्दिर में रक्खे रेशमी वस्त्र-खण्डों पर बने चित्र, जिन्हें टन्का कहते हैं, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दीवारों पर बनाये गये और पुराने चित्र मन्दिर के विशेष आकर्षण है, जो क्षेत्रीय चित्र-शैली के सुन्दर उदाहरण माने जाते हैं। इसमें

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

छपे और हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं। पूजा और उत्सव में काम देने वाले बाजे भी रक्खे रहते हैं। बौद्ध मूर्तियों में तारा और अवलोकितेश्वर की मूर्तियाँ उत्तम उदाहरण माने जाते हैं। स्टुको से बनी बौद्ध प्रतिमाएँ भी अनेक हैं, जिनमें अमितायुस तथा शाक्य शुम्ब्या की मूर्तियाँ विशेष रूप से दर्शनीय है। अपनी दो परियों के साथ प्रदर्शित पद्म-संम्भव की प्रतिमा भी यहाँ की मूर्तिकला का एक सुन्दर उदाहरण उपस्थित करती है।

स्थापत्य-कला में पुरानी शैली के तो दर्शन होते ही हैं, लेकिन बिहार के दरवाजे तिब्बत की आधुनिक शैली में बनाये गये हैं। वास्तव में, इस बौद्ध-भवन का अनेक बार जीर्णोद्धार किया गया है, क्योंकि इसने इतिहास के अनेक उत्थान और पतन देखा है। स्पिति क्षेत्र में अनेक बार हुए विदेशी आक्रमणों के समय कई बार इस विहार को लूटा गया और कभी-कभी इसे ध्वस्त भी करने का प्रयास किया गया। यह कभी तो कुल्लू और लद्दाख के आपसी युद्ध का शिकार बना और कभी तिब्बत के शाही लुटेरों ने इस पर आक्रमण किया। बाद में डोगरा-युद्ध के समय इसे और भी नष्ट किया गया। परन्तु समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार भी होता रहा। इसके परिणामस्वरूप इसके प्राचीन रूप में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो गया।

स्पिति का दूसरा बौद्ध बिहार ताबों का बिहार है, जो काजा से ५३ मील दूर स्थित है। इसकी प्रधान विशेषता यह है कि यह एक समतल भूमि पर बना है। यह एक विशाल विहार है जिसमें लगभग तीन सौ लामा एक साथ निवास कर सकते हैं। प्राचीन काल में इसके आस-पास लगभग १०८ स्तूप निर्मित थे, जिनमें से अब के कुछ ही अवशिष्ट हैं। पास की पहाड़ी पर ढलानों पर अनेक गोम्पाओं के अवशेष विद्यमान है, जिनमें से कुछ को गुफा मन्दिर कहा जा सकता है, क्योंकि उन्हें पहाड़ी को काटकर गुफाओं को बनाया गया है। कुछ कच्ची ईंटों से बनाये गये हैं। वास्तव में ये लघु गोम्पा बाद के कालों में निर्मित किये गये। क्योंकि धीरे-धीरे लामा बौद्धों की संख्या बढ़ती गई और शीतकाल में उनके रहने के लिए अन्य निवास-स्थानों की आवश्यकता पड़ी। परन्तु ऐसा कब हुआ, यह कहना कठिन है।

प्रधान ताबों मन्दिर और आस-पास के विहार के निर्माण का काल प्रायः ज्ञात है। पहले ही लिखा जा चुका है कि अतीश के शिष्य ड्रोम स्टोन ने ही संभवतः इसकी भी नींव डाली। अतएव यह की बिहार की भाँति मूलतः उसी समय निर्मित किया

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

गया । वैसे इस मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में कई जनश्रुतियाँ हैं । एक लोककथा यह कहती है कि इस मन्दिर और बिहार का निर्माण परियों ने किया और दूसरी लोककथा के अनुसार इसे एक रात में ही देवताओं ने बना दिया । इससे यह जान पड़ता है कि हजारों मनुष्यों ने मिलकर इसे थोड़े समय में ही निर्मित किया । एक किम्वदन्ती के अनुसार इसका निर्माण बौद्धों ने नहीं किया, जिससे लगता है कि कभी स्पिति का शासक किसी लामा बौद्ध के प्रभाव में आया और उसने इसका निर्माण किया । वास्तव में यह मन्दिर और बिहार शीत के दिनों में और आपत्ति काल में बौद्धों और अबौद्धों दोनों का शरण-स्थान बना रहा और धीरे-धीरे मूलतः बौद्ध भवन होने के बावजूद भी अबौद्ध लोगों द्वारा भी निर्मित बताया जाने लगा । यह भी सम्भावना है कि आक्रमण के दिन समाप्त होने के बाद इसके जीर्णोद्धार में अबौद्ध शासकों एवं सम्राटों ने सहायता की, जिसके परिणामस्वरूप ऐसी किम्वन्दन्ती बन गई । लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक बौद्ध भवन है, जिसे प्राचीन काल में किसी लामा बौद्ध ने निर्मित किया और अन्य प्रमाण के अभाव में यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि इसे अतीश के शिष्य ब्रोम स्टोन ने बनवाया ।

तावो का यह भवन गोम्पा-शैली के सुन्दर मन्दिर का उत्तम उदाहरण है । यह एक विशाल निर्माण है । इसका हृदय उसका प्रधान मन्दिर-कक्ष है, जिसकी छत और दीवारों का हर भाग चित्रों से सुसज्जित है । परन्तु इनमें कुछ ही प्राचीन कही जा सकती है, क्यों कि प्राचीन दीवारों की सत्तह पर जननान्तर के लामा अपनी चित्र-कला की मेघा का प्रदर्शन करते रहे हैं और पुरानी चितविधियों पर नये चित्र उकेरते रहे हैं । इनमें कुछ चित्र तो जातक-कथाओं से सम्बन्धित है, जिन्हें किसी तरह अजन्ता और बाघ के चित्रों से तुलना कर सकते हैं । परन्तु अधिकतर चित्र तान्त्रिक बौद्ध-धर्म के विषय से सम्वन्धित है । ये देखने में विशाल मूर्तियाँ हैं, जिनमें भगवान बुद्ध, भैरव, तारा और अवलोकितेश्वर के चित्र प्रधान है । वैसे सम्पूर्ण मन्दिर लामा बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का विशाल-भण्डार लगता है, जिसके सुसम्बन्ध अध्ययन से स्पिति के लामा बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का इतिहास लिखा जा सकता है ।

यहाँ प्राचीन और मध्यकालीन बौद्ध मूर्तिकला के भी उदाहरण मिलते हैं । इनमें विशेषकर पूजा से सम्बन्धित कांस्य निर्मित मूर्तियाँ प्रमुख हैं । विभिन्न लामाओं द्वारा जननान्तर में निर्मित मृणमूर्तियाँ भी इस कला के सुन्दर नमूने उपस्थित[६२] करती हैं । कला के पारखी दर्शकों को अन्य सुन्दर चीजे भी दिखती है, जिनमें लामा बौद्धों के वाद्य यन्त्र प्रमुख स्थान रखते हैं । वास्तव में मध्यकालीन लामा बौद्ध धर्म के अनेक

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अमूल्य पक्ष यहाँ देखे जा सकते हैं, क्योंकि इस मन्दिर से सम्बद्ध विहार एक विशाल निवास- स्थान के रूप में प्रयोग किया जाता था, जिससे आधुनिक काल में इसे लामा सराय ही कहा जाने लगा।

इन दो प्रधान बौद्ध मन्दिरों और विहारों के अतिरिक्त स्पिति के अन्य क्षेत्रों और स्थानों पर भी कुछ गोम्पा या विहार बनवाये गये थे, जिनमें अधिकांश काल के गाल में समाहित हो गये। कुछ के केवल अवशेष ही शेष रह गये हैं। ऐसे प्राचीन मंदिरों के खण्डहर खैबूर के समीप स्थित एक ग्राम में देखे जा सकते हैं। जहाँ ल्हाब्ला-मैद्गोम्पा स्थित था, जिसे गूगे के सम्राट ल्हा-ब्लान्मा ने बनवाया था। इसी तरह काजा में भी एक प्राचीन बौद्ध मंदिर बनवाया गया था, जो साक्यपा सम्प्रदाय से सम्बन्धित था। ऐसा ही एक बौद्ध विहार कोकसार में भी दिखलाई पड़ता है। ऐसे ही बौद्ध स्मारकों में ट्सूलिंग ग्राम के पास निर्मित पुराने गद्गरी बौद्ध बिहार का भी उल्लेख करना आवश्यक है, जो अब प्रायः नष्ट हो चुका है, केवल कुछ पत्थर ही यहाँ अवशेष हैं। ग्राम में ल्हा-खण्ड नामक छोटा-सा देव स्थान है। जो लामा बौद्ध धर्म के अनुयायियों के पूजा का स्थान है। इसमें पूजा से सम्बन्धित कुछ बाजे रक्खे हैं। वहाँ कुछ पत्थर भी मिलते हैं, जिन पर 'ओम मणिपद्मेहुम्' लिखा है। स्पष्ट है कि यह स्थान कभी लामा बौद्धों का एक प्रमुख पूजा-स्थान था, जो समय के कारण नष्ट हो गया। बाद में इसकी मरम्मत ठीक से नहीं हो सकी।

ऐसा ही एक अन्य बौद्ध मन्दिर स्पिति शहर के सन्निकट स्थित लिलुंग नामक ग्राम में भी स्थित है, जो लिन्ती घाटी में आबाद है। यह बौद्ध स्मारक प्रायः अज्ञात है। इसकी सूचना १९२४ ई० में एक पाश्चात्य विद्वान् ने दी थी। यह ग्यारहवीं शताब्दी में बनवाया गया था। यह देखने में छोटा निर्माण है, लेकिन सुन्दरता की दृष्टि से टाबो बौद्ध विहार से कम अच्छा नहीं है।

इस बौद्ध मंदिर का द्वार पश्चिम की तरफ खुलता है। इसका छत सपाट है। मंदिर की दीवार का हर भाग चित्रवीथियों से सुसज्जित है, जिसमें उपवास में लीन भगवान बुद्ध तथा उनके जीवन से सम्बन्धित अन्य घटनाय चित्रित है। ये हमें अजन्ता चित्रों की तरफ ध्यान दिलाती है। कहीं-कहीं तान्त्रिक विषयों के भी चित्र उकेरे गये हैं, जिनमें मण्डल के रूप प्रमुख हैं। तारा तथा अन्य देवों की मूर्तियाँ भी यहाँ चित्रित है और पशु भी अन्य चित्रों के विषय हैं। सिंहासन में प्रदर्शित सिंह का रूप बड़ा ही मनोहारी है। फूल-पत्तियों के भी चित्र पर्याप्त मात्रा में दिखाये गये हैं। इसमें अनेक मूर्तियाँ भी निर्मित की गई थीं, जिनकी संख्या १९२४ ई० में लगभग साठ थी।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

यहाँ तन्युग गोम्पा का उल्लेख करना भी युक्तिसंगत है, जो तावो बौद्ध विहार से कुछ ही दूर पर स्थित है।

स्पिति के बौद्ध विहार बड़े विशाल होते हैं और ग्रामों के पास ही पहाड़ी पर बनाये जाते हैं। इनका आय-व्यय यहाँ के खेतों से चलता है। उनके चलाने के लिए प्रायः हर खेत से अनाज लिया जाता है।

इसके मध्य में लोगों के बैठने तथा पूजा करने का बड़ा कमरा बनाया जाता है। साथ में ही भण्डार-कक्ष और रसोई घर भी निर्मित होता है। इनके चारों तरफ छोटे-छोटे अन्य अनेक कक्ष बनाये जाते हैं जो भिक्षुओं के निवास स्थान होते हैं। वास्तव में ये विहार प्राचीन काल में बने हीनयानी या महायानी बौद्ध विहारों से कला की दृष्टि से अधिक अलग नहीं है। ये उसी कला-परम्परा में बनाये गये हैं—केवल विशालता एवं योजना में थोड़े-से भिन्न लगते हैं।

7135

इन विहारों की दूसरी विशेषता यह है कि इनमें प्रत्येक भूमिपति या कृषक लामा के परिवार के लिए भी कुछ कक्ष बने होते हैं, जिन्हें ताश कहते हैं। यों वंशानुगत रूप से उन्हीं के द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। सम्भवतः इसीलिए वे इसके लिए हर फसल से कुछ अनाज देना उचित समझते हैं।

इन विहारों में परिवार के सभी भिक्षु एक साथ रहते हैं। चाचा, भतीजे, और भाई एक साथ निवास करते हैं। इनमें वे भोजन करते हैं और साथ में अपनी पुस्तकें, कपड़े, खाना बनाने के बर्तन तथा अन्य व्यक्तिगत सामान रखते हैं। कुछ भिक्षु अकेले भोजन करना पसन्द करते हैं और कुछ दो-तीन मिलकर खाना बनाते और खाते हैं। यदि किसी बाल भिक्षु का चाचा नहीं होता है तो वह किसी वृद्ध भिक्षु का शिष्य बन जाता है और वह उसके साथ रहता है।

हर विहार में दो या तीन बड़े पूजा-गृह होते हैं। एक का शीतकाल में और दूसरे का ग्रीष्म ऋतु में प्रयोग किया जाता है। तीसरा पूजा कक्ष प्राचीन लामा के लिए होता है। जिसमें वह अपनी साधना करता है।

पूजागृह में भिक्षु लोग प्रार्थना के लिए एकत्रित होते हैं। वे प्रायः धर्म पुस्तकों का पाठ करते हैं। एक पढ़ता है और अन्य लोग उसे एक साथ दोहराते हैं। फर्श पर लम्बी दरियाँ बिछाई जाती है। हर भिक्षु का अपना निश्चित स्थान होता है। और प्रधान पुरोहित को, जो धर्म ग्रंथ पढ़ता है, एक ऐसा अलग स्थान दिया जाता है, जो

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

थोड़ा-सा ऊंचा होता है। यह सम्मानसूचक होता है। यह पूजा-गृह एक विशाल कक्ष होता है, जिसे बगल में बने काष्ठ निर्मित पंक्तियों से अन्य कमरों से अलग कर दिया जाता है। प्रवेश करने पर सामने दूर एक तरफ बीच में देवताओं की वेदी होती है, जहाँ उनकी मूर्तियाँ रक्खी जाती है, जो प्रायः एक पंक्ति में सजाई जाती है। इनमें भगवान बुद्ध, बोधिसत्वों, और प्राचीन गुरुओं की मूर्तियाँ होती हैं, जिनमें रिम्बोची अतीश तथा अन्य महाचार्य को प्रतिमाएँ प्रधान मानी जाती है। कहीं-कहों बगल में ताखों पर पीतल निर्मित मूर्तियाँ भी रक्खी दिखाई पड़ती हैं। दूसरी तरफ धर्मग्रन्थ के रखने के लिए आलमारियाँ रक्खी रहती हैं, क्योंकि यहाँ ये धर्म ग्रंथ भी पूजे जाते हैं।

इस पूजा-कक्ष की दीवारें देवी और देवियों के चित्र से अलंकृत होते हैं। इनमें सन्तों, महाचार्यों एवं पिशाचों, भूतों एवं प्रेतों के भी चित्र अंकित होते हैं। कहीं-कहीं रेशमी किनारों से सज्जित वस्त्र-खण्ड पर बने चित्र टंगे होते हैं, जिन्हें ठंका कहते हैं। ये लामा बौद्ध चित्रकला की विशेष कला-कृतियाँ मानी जाती हैं।

स्पिति में बौद्ध धर्म का आज भी बड़ा प्रचार है और यहाँ प्रचलित बौद्ध धर्म लाहौल की अपेक्षा अधिक विशुद्ध जान पड़ता है। यहाँ भी लाहौल की तरह लूंग पै चोस अर्थात् मूल धर्म भी प्रचलित है, जिसमें पहले जादू-टोना तथा जीवों का बलिदान की प्रमुखता थी। इसी आदिम जातीय धर्म के साथ बौद्ध धर्म का यहां समन्वय हुआ है, जिसके विकास में हिन्दू धर्म की भी देन पर्याप्त मात्रा में मानी जाती है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

5

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दू धर्म का विकास

शैवधर्म—

इस प्रदेश में वैदिक धर्म बहुत पहले से प्रचलित था, यह तो साधारण अनुमान का विषय है; क्योंकि वैदिक संहिताएं इसी क्षेत्र से मिले हुए मैदानी भागों में लिखी[६३] गई। लेकिन उस पर अधिक प्रकाश डालने के लिए कोई सही स्रोत उपलब्ध नहीं है। हमने पहले ही लिखा है कि प्राचीन काल में वैदिक आर्य यहाँ की घाटियों में अवश्य रहते थे, अतएव उन्होंने अपने धर्म को इस क्षेत्र में फैलाया। यहाँ एक साक्ष्य का उल्लेख किया जा सकता है, जिससे यह मालूम होता है कि अथर्ववेद में विश्वास करने वाले लोग इस क्षेत्र में रहते थे। सातवीं शताब्दी ई० में लिखाये गये निर्मण्ड अभिलेख में अथर्ववेद में विश्वास रखने वाले ब्राह्मणों का उल्लेख है, जो कुल्लू घाटी में रहते[६४] थे। वे प्राचीन वैदिक आचार्यों के वंशज थे, ऐसा कहना अत्युक्ति न होगी। इससे यह पूर्णरूपेण सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र का सबसे प्राचीन धर्म वह धर्म था, जिसका उल्लेख वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों तथा सूत्र साहित्य में मिलता है।

वैदिक धर्म कर्म प्रधान धर्म था। इसमें विश्वास रखने वाले लोग विविध प्रकार के देवों की स्तुति करते थे, जो प्रकृति के किसी न किसी रूप के दैवीकृत भाव[६५] थे। इनके लिए यज्ञ किये जाते थे, जिनमें पशुओं की वलि भी चढ़ाई जाती थी। ऐसा धर्म यहाँ की अन्य प्राचीन आदिजातियों के धार्मिक कर्मों से भी मिलता-जुलता था,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जिसमें जादू-टोना आदि का बाहुल्य था। पहाड़ी घाटियों, जंगलों, पेड़-पौधों तथा प्रकृति के अन्य अंगों के पीछे किसी न किसी शक्ति या आत्मा में विश्वास किया जाता रहा होगा और उसके लिए बलि चढ़ाई जाती रही होगी, जैसा कि किसी भी आदिम-जातियों के धर्म में प्रचलित रहता है। ऐसी धार्मिक मान्यताएँ आज भी उन आदिम-जातियों में पाई जाती है, जो भारत के इस क्षेत्र में या अन्य भागों में पाई जाती हैं।

इस क्षेत्र में प्रचलित धर्म की सही ऐतिहासिक रूपरेखा का ज्ञान छठीं शताब्दी ई० पू० से होने लगता है। क्योंकि साहित्य में यत्र-तत्र उसका उल्लेख है और पुरातात्विक स्रोतों से उस पर सीधा या विषयान्तर से प्रकाश पड़ता है। हमने पहले ही लिखा है कि छठीं शताब्दी ई० पू० में ही यहाँ के कुछ भागों में बौद्ध धर्म का प्रसार हो गया था। और इसकी भी जोरदार सम्भावना है कि शैवधर्म में विश्वास रखने वाले लोग भी इस क्षेत्र के कुछ भागों में फैलने लगे थे। हो सकता है कि इसमें सैन्धव घाटी संस्कृति का कुछ हाथ रहा हो, जैसा कि हमने पहले ही लिख रक्खा है। प्राचीन त्रिगर्त अर्थात् काँगड़ा और आस-पास के क्षेत्र शैवधर्म के प्रधान स्थान थे और उसका विस्तार शिमला, सिरमौर तथा किन्नौर के क्षेत्रों में भी हो गया था। इसके प्रमाण ई० पूर्व शताब्दियों में प्रचलित उन सिक्कों से मिलता है जो इस क्षेत्र में विकसित राज्यों द्वारा चलाये गये थे, जिनमें त्रिगर्तों, उदुम्बरों, कुनिन्दों तथा यौधेयों के गणराज्य प्रमुख थे।

इनके सिक्कों पर विभिन्न प्रकार के प्रतीक अंकित हैं, जिनमें कुछ तत्कालीन शैवधर्म के परिचायक हैं। उदुम्बरों के सिक्कों पर वृषभ, त्रिशूल तथा कुठार के रूप अंकित है, जो शैवधर्म से सम्बन्धित[६६] हैं। वृषभ भगवान शिव का वाहन है और अन्य दो प्रतीक उसके अस्त्र हैं। इनसे शैवधर्म का प्रचार और उसकी लोकप्रियता स्पष्ट प्रकट है। इसी तरह इन सिक्कों पर ऐसे अभिलेख लिखाये गये हैं, जिनमें शिव के विभिन्न नाम मिलते हैं। उदाहरणार्थ राजाओं के नामों में रुद्रदास, शिवदास और महादेववंशीय देवता शिव की ओर संकेत करते हैं। वास्तव में इस गणराज्य का प्रधान देवता शिव था, जिसे सम्पूर्ण राज्य समर्पित था, जैसा कि उसके सिक्कों और उन पर लिखे अभिलेखों से ज्ञात होता है। इनमें विशेष करके "भागवत महादेवस" लेख उल्लेखनीय है, जिसमें वह ईश्वर और सर्वोपरिदेवता के रूप में कल्पित है। वही राज्य की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार था। उसके अनुयायी 'भागवत' कहलाते थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पतंजलि (द्वितीय शताब्दी ई० पू०) शैव-भागवतों का उल्लेख करता है। वास्तव में ई० पूर्व इन शताब्दियों में भक्तिमार्ग मोक्ष का प्रधान साधन

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बन चुका था, जिसमें भक्त ईश्वर के प्रति अपना समर्पण करता[६७] था। वह उसकी प्रतिमाएँ बनाता था और उसकी पूजा करता था। इसमें उसके विभिन्न प्रतीकों की भी पूजा प्रचलित थी।

इस काल में उसके लिए मंदिरों का भी निर्माण होने लगा था, जैसा कि उस समय के लेखों से स्पष्ट प्रभावित होता है। विदिशा (मध्यप्रदेश) से मिले हेलिथोडोरस के अभिलेख में देवेश्वर वासुदेव के लिए गरुडध्वज के निर्माण की सूचना मिलती[६८] है और घोसुन्डी (राजस्थान) से मिले अभिलेख में पूजा के लिए प्रस्तरनिर्मित भवन का उल्लेख है। यह स्थिति द्वितीय शती ई० पू० या उससे कुछ पहले की है। यहाँ यह विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि उदुम्बरों के एक प्रकार के सिक्कों पर एक मंदिर का रूप[६९] निर्मित है, जिसे कुछ विद्वानों ने 'शिव मंदिर' माना है, जिसका निर्माण शिव-भक्त उदुम्बरों ने अपने राज्य के विभिन्न भागों में कराया था। यह आकृति देखने से यह मालूम होता है कि वह कई मंजिलों में बनाया जाता था और उसका रूप पैगोडा-शैली में बने मंदिरों-जैसा था, जिनके कुछ उदाहरण कुल्लू-मनाली घाटी में आज भी मिलते हैं। इन मंदिरों में गर्भगृह के चारों ओर एक प्रदक्षिणा-पथ बनवाया जाता था, जिसमें चारों कोनों पर कम से कम चार स्तम्भ खड़े किये जाते थे, जिन पर बरामदों का छत आधारित था। ये मंदिर संभवतः काष्ठनिर्मित होते थे, जैसा कि बाद में बने यहाँ के कुछ मंदिरों में पाया जाता है। हो सकता है कि ऐसे शिव मंदिर यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल में बनवाये जाते थे और वह परम्परा बाद में चलती रही।

ऐसे मन्दिरों में शिवलिंग स्थापित किया जाता था, इसके लिए प्रमाण उपर्युक्त सिक्के पर मिले एक प्रतीक में मिलता है। रेप्सन महोदय ने एक ऐसे ताम्रनिर्मित सिक्के का उल्लेख किया है जिसके एक तरफ 'लिंग' का प्रतीक मिलता है और दूसरी तरफ एक बड़े पुरुष का रूप उत्कीर्ण है, जिसके हाथ में एक त्रिशूल और कुठार दिखाया गया है। उसी तरफ 'भागवत महादेवस' भी मिला हुआ[७०] है। इससे स्पष्ट है कि शिव देवता लिंग रूप में प्रकल्पित था, जो उत्पादन-प्रक्रिया का प्रतीक था। उससे न केवल सन्तानोत्पत्ति की कामना की जाती थी, वरन् उसकी पूजा, स्तुति तथा उपासना से सांसारिक उपलब्धियाँ भी वांच्छित थीं।

शिव लिंग की उपासना अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में प्रचलित थी। सिन्धु घाटी संस्कृति में तो उसकी उपासना होती ही[७१] थी। बाद में ईसवी सन् के आसपास की शताब्दियों में वह भारत के अनेक भागों में प्रचलित हो गयी। यहाँ तक कि दक्षिण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

भारत में गुडिमल्लम से जो शिव लिंग मिला है, वह अत्यन्त प्राचीन है। मथुरा से भी ऐसा ही एक अत्यन्त प्राचीन शिव लिंग मिला है। हम यह भी जानते हैं कि सम्पूर्ण उत्तर भारत में और हिमाचल में भी परवर्ती काल में बने शैव मन्दिरों में शिव लिंग की प्रतिष्ठा होती थी और वह शैव धर्मावलम्बियों की उपासना का प्रधान रूप था। वैसे उसकी कल्पना पुरुष रूप में बहुत पहले ही की जा चुकी थी, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। पशुपति शिव का रूप सिन्धु घाटी संस्कृति के काल में चलाई गई मुद्राओं पर मिलता है। इसका उल्लेख बाद के साहित्य में भी है, सम्भवतः इसीलिए द्वितीय शताब्दी ई० पू० में या उसके पूर्व ही शैव धर्म में पाशुपत-सम्प्रदाय का विकास हुआ, जिन्होंने संगठित होकर इस धर्म का प्रचार भारत के विभिन्न भागों में किया[७२]। इन्होंने भक्तिमार्ग का पालन किया और उसे देवेश्वर के रूप में मानकर उसकी उपासना की। सब कुछ उसे समर्पित करके मोक्ष की कामना[७३] की। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उदुम्बरों के पूर्ण विकास का काल द्वितीय शताब्दी ई० पू० से लेकर द्वितीय शताब्दी ई० हैं, जिस समय महाभारत की रचना हुई, जिसमें भक्तिमार्ग का बार-बार वर्णन किया गया है। ध्यातव्य है कि गीता में वर्णित विषय की उत्पति सम्भवतः इससे कुछ पूर्व हो गई थी। श्वेताश्वर उपनिषद् में भी शैव-उपासकों और उनकी भक्ति का उल्लेख है। यही वह समय है, जब पूजा-पद्धति का विकास हुआ और पौराणिक हिन्दू-धर्म एक संगठित धर्म के रूप में चारों ओर फैलने लगा। इसी समय इसमें नये-नये सम्प्रदायों का जन्म हुआ, जिसमें शैव सम्प्रदाय प्रधान[७४] था।

हिमाचल में शैव धर्म का विकास कुनिन्दों के सिक्कों से भी जाना जा सकता है, जो इस क्षेत्र से अधिक मात्रा में मिले हैं। इन पर भी अनेक शैव प्रतीक जैसे-'नन्दिपद' और सर्प मिलते हैं। कुनिन्दों के राज्य का प्रधान देवता शिव ही था, जिसके लिए उदुम्बरों की तरह उनका भी राज्य समर्पित था। यहाँ उनके एक विशेष प्रकार के सिक्कों का उल्लेख किया जा सकता है, जिन पर 'भगवत छत्रेश्वर महात्मनः' लिखा[७५] हुआ है। इससे स्पष्ट रूप से प्रमाणित है कि कुनिन्दों के राज्य का प्रधान देवता शिव था और वे उसे छत्रेश्वर कहते थे, जो सम्भवतः छत्र की तरह उनकी और उनके राज्य की रक्षा करता था। सम्भव है कि अमोधभूति या अन्य कुनिन्द गणराजाओं के काल में हिमाचल के दक्षिणी-पूर्वी भागों में उसके लिए अनेक मन्दिरों का निर्माण किया गया हो, जो समय के कारण अब नहीं हैं।

यौधेयों के सिक्कों से भी इस क्षेत्र में शैवधर्म के प्रसार के प्रमाण मिलते हैं। इन पर भी खड़े शिव की आकृति मिलती है, जिसमें वह एक हाथ में त्रिशूल धारण

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

किये हैं और दूसरे में कुठार लिए हैं तथा कमर में सम्भवतः मृगचर्म पहने हुए हैं। इसके अतिरिक्त सिक्कों पर इस धर्म के अन्य प्रतीक भी मिलते हैं, जिनमें 'नन्दी वृषभ' प्रधान[७६] है।

भारत के इस क्षेत्र में इस समय शैव सम्प्रदाय का बड़ा विकास हुआ जान पड़ता है। शिव के पुत्र कार्तिकेय की भी पूजा अत्यधिक प्रचलित मालूम पड़ती है। सम्पूर्ण यौधेय राज्य में वह बड़ा प्रिय देवता था और सम्भवतः यौधेयों ने उसे अपना राज्य समर्पित कर रक्खा था। कार्तिकेय शक्ति और युद्ध का देवता माना जाता है। (देखिये चित्र ३) यौधेयों ने एक तरफ शकों से लोहा लिया था और दूसरी तरफ कुषाणों को हराया था। अतएव बहादुर जाति में कार्तिकेय की पूजा का प्रचलन और विस्तार स्वाभाविक था। वह शिव के पुत्र रूप में कल्पित है, जिसने राक्षसों (विदेशियों) के विनाश के लिए जन्म लिया था। उसे यौधेयों का राज्य बड़ा प्रिय था और वह पूरे राज्य का सर्वप्रिय देवता था, जैसा कि महाभारत के सभापर्व में वर्णित है। इसके अतिरिक्त यौधेयों के अधिकांश सिक्कों पर उसे खड़ा दिखाया[७७] गया है। यहाँ उसका षडानन रूप अंकित है। वह हाथों में अस्त्र लिए हुए है। सिक्कों पर उसके लिए अभिलेख भी अंकित कराया गया है और उसे 'ब्रह्ममय देव' तथा 'कुंभार' कहा गया है। ऐसा लगता है कि प्राचीन पंजाब और उसके इन क्षेत्रों में उसके लिए अनेक मंदिर बनवाये गये[७८] थे।

यौधेयों के राज्य में कुमार की पत्नी षष्ठी या कृत्तिका की भी पूजा प्रचलित जान पड़ती है, क्योंकि सिक्कों के एक तरफ एक नारी प्रतिमा बनी हुई है जो सम्भवतः षष्ठी देवी का रूप है। हमने पहले ही लिखा है कि वह काल पौराणिक धर्म के विकास का समय था, जिसमें प्रधान देवों के साथ उनके परिवार देवताओं की भी पूजा[७९] प्रचलित थी। षष्ठा देवी की पूजा सम्पत्ति और सन्तान के हेतु की जाती थी। संम्भवतः उसके लिए भी देव गृहों का निर्माण कराया गया था।

शैवधर्म के विकास की यह स्थिति गुप्त-काल से पूर्व की है, क्योंकि उदुम्बरों, कुनिन्दों तथा यौधेयों के राज्य का तब तक पतन हो चुका था, जिनके सिक्कों के आधार पर हमने इसके विकास का इतिहास ऊपर लिखा है। यह स्थिति तृतीय शताब्दी ई० पू० से लेकर चौथी शदी ई० तक थी, जिसमें शैव धर्म हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में फैला। इन दिनों इस क्षेत्र का दूसरा प्रमुख धर्म बौद्ध धर्म था, जैसा कि हमने पहले ही लिखा है। इन गणराज्यों के प्रशासक शैव धर्म में विश्वास रखते हुए भी धर्म-सहिष्णु थे, जिससे उनके राज्य में शैवेतर धर्म भी विकसित हुए। सम्भवतः

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

शाक्त धर्म, वैष्णव धर्म तथा सूर्य-पूजा भी इन क्षेत्रों में धीरे-धीरे फैल रही थी, लेकिन शैव धर्म के समक्ष वे इधर इस समय अधिक लोकप्रिय न हो सके। शैवधर्म पूर्ववत् गुप्त और गुप्तोत्तर काल में इस क्षेत्र में विकसित होता रहा।

हिमाचल प्रदेश में शैव धर्म का विकास गुप्त और गुप्तोत्तरकाल में और भी हुआ[८०]। इस काल में सम्भवतः सम्पूर्ण प्रदेश इस धर्म और उससे सम्बन्धित कला से भर गया। काँगड़ा, कुल्लू और लाहौल के अधिकतर प्राचीन शैव मन्दिर इसी काल में बनाये गये, जिन्हे शैव प्रतिमाओं तथा अन्य हिन्दू देवी देवताओं से अलंकृत किया गया।

शैव धर्म के इन प्राचीन केन्द्रों में संभवतः काँगड़ा का बैजनाथ[८१] मन्दिर कुल्लू क्षेत्र में स्थित निमेण्ड के शैव मन्दिर और लाहौल में स्थित त्रिलोक नाथ का मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये तीनों स्थान गुप्त काल में शैव धर्म के प्रधान केन्द्र बन चुके थे, जिनकी प्राचीनता न केवल उनके भग्नावशेषों से ज्ञात होती है, अस्तु उनकी सूचना हमें कुछ अभिलेखों से भी मिलती है। उदाहरणार्थ निर्मण्ड के मन्दिर से प्राप्त ताम्र पत्र अभिलेख, जो सातवीं शताब्दी में लिखाया गया था, मिहिरेश्वर शिव के मन्दिर के लिए दिये गये दान का उल्लेख[८२] करता है। यह नाम वैसे वहाँ के सूर्य मन्दिर एवं प्राचीन सूर्य-पूजा की ओर संकेत[८३] करता है, जिसका यहाँ सम्भवतः इस समय तक पतन हो गया था। यहाँ शिव ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया था। यहाँ के अन्य प्राचीन मन्दिर में चंडी देवी मन्दिर के प्रांगण में लघुकाय शिव मन्दिर को भी गिनाया जाता है। इन बातों से यह स्थान एक प्रधान शैव पीठ मालूम होता है। प्रतिहारों के काल में भी यह पहले जैसा विकसित होता रहा; इसीलिए इसे पर्वतीय क्षेत्र का काशी कहा जाता था और भारत के प्रधान शैव तीर्थों में इसकी गणना की जाती थी।

बजौरा कुल्लू क्षेत्र का दूसरा प्रधान शैव केन्द्र[८४] था, व्यास नदी के किनारे स्थित मैदानी भाग में विकसित एक लघु किन्तु प्रधान व्यापारिक केन्द्र के पास बसाया गया था, जैसा कि निकट में स्थित आधुनिक हाट नामक स्थान से मालूम होता है। यहाँ सम्भवतः कई शैव मन्दिर बनवाये गये थे जिनमें कुछ गुप्तकालीन थे। कुछ मंदिर उससे पूर्व के भी रहे होंगे। असम्भव नहीं है कि ह्वेनसांग द्वारा वर्णित देव मन्दिरों में उनकी ओर संकेत किया गया[८५] है, जिसके अब खंडहर भी हमें नहीं दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु यहाँ स्थित विश्वेश्वर महादेव का मन्दिर उस विशाल मन्दिर नगर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

की ओर संकेत करता है, जो उसके चारों तरफ नदी के किनारे कभी बसाया गया था।

यह मन्दिर कुल्लु के सबसे प्राचीन मन्दिरों में से एक है। यह शिखर-शैली में निर्मित है, जिसे हम उत्तर भारतीय मन्दिर या नागर-शैली में बना हिन्दू मन्दिर कहते हैं। इसमें बना गर्भगृह, जहाँ प्राचीन शिव लिंग अब भी विद्यमान है, उनकी प्राचीनता का साक्षी है। इसका द्वार पूर्व की ओर नदी को तरफ खुलता है, जिसका जीर्णोद्धार संभवतः सोहलवीं या सत्रहवीं ई० में कराया गया था। यहाँ टाँकरी लिपि में उत्कीर्ण अभिलेख मन्दिर के निरन्तर विकास तथा शैव धर्म के आगे विकास की कहानी कहता है। मन्दिर में मूलतः एक प्रदक्षिणा-पथ भी बनवाया गया था, जिसका अवशेष आज विद्यमान नहीं है, लेकिन गर्भ गृह की बाहरी दीवारों में बने विशाल ताख और उनमें स्थित विशाल मूर्तियाँ इस ओर संकेत करती है। इनमें एक में गणेश, दूसरे में विष्णु और तीसरे में महिषकार्दिनी दुर्गा की प्रतिमाएँ आज भी देखी जा सकती हैं, जो मूर्ति-कला की दृष्टि से बड़ी उच्चकोटि की कृतियाँ है। अन्य सुन्दर प्रतिमाओं में गंगा और यमुना की मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो द्वार के दोनों तरफ तराशी गई हैं। मन्दिर की अन्य मूर्तियों में सूर्य की खड़ी प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है, जो कभी यहाँ के प्रांगण में स्थित थी और अब वह शिमला के राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है।

इस मन्दिर के निर्माण की तिथि के सम्बन्ध में कई मत प्रतिपादित किये गए हैं। कोई इसे आठवीं-नवीं शताब्दी में निर्मित बताता है तो कोई इसे ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी की कला का उदाहरण मानता है। वैसे यह मन्दिर प्रतिहारों के काल में निर्मित मन्दिरों के समान है और प्रतिहार कालीन मन्दिर-कला शैली का एक सुन्दर नमूना[८६] है। अतएव इसके निर्माण की तिथि को नवीं-दसवीं शताब्दी ई० के आस पास कहीं रक्खा जा सकता है। ऐसा ही समय उसमें प्राप्त मूर्तियों की कला-शैली से भी मालूम होता है।

कांगड़ा क्षेत्र में बैजनाथ शैव धर्म का सम्भवतः सबसे प्राचीन केन्द्र है। यहाँ के बैजनाथ मन्दिर से दो अभिलेख मिले हैं, जिन्हें हम बैजनाथ प्रशासित की संज्ञा देते हैं। इनमें बैजनाथ मन्दिर के निर्माण, उसके जीर्णोद्धार के लिए दिये गये दानों का वर्णन मिलता[८७] है।

प्रथम प्रशस्ति के अनुसार कीरग्राम अर्थात् आधुनिक बैजनाथ के दो प्राचीन

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

व्यापारियों ने नवीं शदी के प्रारम्भ में एक शिव मन्दिर का निर्माण करवाया, जहाँ पर एक शिव लिंग पहले से विद्यमान था, जिसे वैद्यनाथ कहते थे। अतः यह सिद्ध होता है कि इस स्थान पर गुप्त काल में ही लिंगरूप शिव की उपासना की जाती थी और उसके लिए मन्दिर का निर्माण किया गया था, जो बाद में गिर गया। इसे अतएव, नवीं शदी के प्रारम्भ में मन्युक और आहुक नामक दो धनी व्यापारियों ने निर्मित करवाया। मन्दिर का निर्माण नायक तथा योधुक नामक दो शिल्पकारों ने किया था, जिसमें से प्रथम सुशर्मनगर का निवासी था, जो कोट काँगड़ा का प्राचीन नाम था।

प्रशस्ति में इस मन्दिर के लिए दिये गये दानों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें उल्लेख है कि मन्दिर निर्माण के बाद उसके निर्माता व्यापारियों ने दान दिया। मन्दिर के लिए अन्य दान देने वालों में रल्हण का नाम उल्लेखनीय है, जो सुशर्मपुर (कोटकाँगड़ा) का ज्योतिषी था। उसने दो द्रोण वार्षिक अनाज दान में दिया, जो उसके नवग्राम में स्थित खेतों के जोतने वाले प्रतिवर्ष देते थे। इसी प्रकार कीरग्राम (बैजनाथ) के ही निवासी एक-दूसरे ब्राह्मण ने नवग्राम में स्थित अपने आधे-हल वाला खेत दान में दिया, जो मन्दिरों की सम्पत्ति हो गई और उसकी सम्पूर्ण पैदावार प्रतिवर्ष मन्दिर के खर्च के लिए मिलने लगी। इसी प्रकार मन्दिर को एक खेत और दान में मिला, जिसे कीरग्राम के एक दूसरे धनी व्यापारी ने दिया था। बाद में वहाँ के छोटे सामन्त नरेश लक्ष्मण चन्द्र ने अपने राज्य की मण्डपिका (custom-house) के आय से दो दम्म प्रतिदिन देने का वादा किया और उनकी माता ने प्रलम्ब नामक ग्राम में स्थित अपने खेत से एक हल खेत भी दान में दिया। इन दानों से उत्साहित होकर मन्दिर के निर्माण करने वाले दोनों व्यापारियों ने इसे कुछ और दान दिये। प्रशस्ति में लिखा है कि उन्होंने कीरग्राम में स्थित अपनी एक तेल की मशीन दान में दी, जिससे मन्दिर में प्रकाश के लिए जलाने वाला तेल निरन्तर मिलने लगा। उन्होंने मन्दिर के भोग के लिए अपना चार हलवाला एक खेत भी दान में दिया और मन्दिर की मरम्मत के लिये अपनी एक दूकान भी दान में दी, जिसकी आय से उसका निरन्तर जीर्णोद्धार संभव हुआ।

इन दानों से और उसके खर्चों से बैजनाथ मन्दिर की महिमा का थोड़ा-सा अन्दाज लगाया जा सकता है। प्रशस्ति में लिखा है कि मन्दिर में एक पुरी (गर्भ गृह) थी, जिसे अद्युतम कहते थे और उसके सामने एक मण्डप बना हुआ था, जो अनेक मूर्तियों से सुसज्जित था, जिनमें शिव के गण प्रमुख थे। मन्दिर के द्वार के दोनों तरफ गंगा और यमुना की मूर्तियाँ उकेरी गई थीं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

आज भी यह मन्दिर बैजनाथ कस्बे के उत्तर में नदी के समीप स्थित अपनी प्राचीन गरिमा की कहानी कहता हुआ खड़ा[८८] है। उसके चारों ओर प्राचीर-सीमा बनाने वाली दीवार मन्दिर की विशालता की परिचायक है, जो पूर्व से पश्चिम में १२० फी० लम्बी और चौड़ाई में ६० से ७५ फी० विस्तृत है। इस मन्दिर में समय-समय पर कुछ विस्तार भी किये गये। उसमें बना पुजारी का कक्ष तथा उत्तर और पश्चिम की तरफ बने छोटे-छोटे अन्य मन्दिर बाद में ही जोड़े गये मालूम पड़ते हैं। ब्यूलर महोदय का मत है कि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार सात बार करवाया गया और १८७६ ई० में काँगड़ा के सम्राट संसारचन्द्र ने इसकी अच्छी तरह मरम्मत करवायी। कुछ भी हो, यह मन्दिर प्रतीत काल से लेकर आज तक शैव धर्म का एक प्रधान केन्द्र बना हुआ है और दूर-दूर से अपने भक्तों को समय-समय पर आमन्त्रित करता रहा है। आज भी वहाँ वर्ष में कई बार मेले लगते हैं।

यहीं पर एक दूसरा भी शिव मन्दिर स्थित है, जो प्राचीनता की दृष्टि से उल्लेखनीय[८९] है। यह नगर में पश्चिमी किनारे पर बनवाया गया था। इसके अब सिर्फ खण्डहर मात्र मिलते हैं। ब्यूलर ने पिछली शताब्दी में यहाँ उसके चार स्तम्भों वाले मण्डप को देखा था, जो ३३ फी० लम्बा और २० फी० चौड़ा था। इसका शिखर ३५ फी० ऊँचा था। यह पूर्व को ओर खुलता था। इसके पीछे की तरफ दो द्वार थे, जिनसे प्रदक्षिणापथ में जाया जा सकता था। इसके दो प्रस्तर निर्मित गवाक्ष बने थे, जिनसे गर्भ गृह में प्रकाश जाता था। इसके दक्षिणी दीवार में बने ताख पर ब्यूलर ने एक प्रस्तर खण्ड देखा था, जिसमें अभिलेख उत्कीर्ण था, लेकिन दुर्भाग्य से वह मिट चुका था, अतएव पढ़ा नहीं गया। नहीं तो वैद्यनाथ मन्दिर की तरह इस मन्दिर के प्राचीन गौरव तथा उसके लिए दान में दिये गये दानों का ज्ञान हम कर सकते थे। यह मन्दिर अनेक मूर्तियों से सजा था, जिसमें सूर्य की उस प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है, जिसे ब्यूलर ने देखा था।

लाहौल में स्थित त्रिलोक नाथ मन्दिर हिमाचल का दूसरा प्रधान शैव[९०] पीठ था। सौभाग्य से उसके अवशेष वहाँ अब भी मिलते हैं। यह अब बौद्ध का भी एक प्रधान धर्म केन्द्र माना जाता है। मन्दिर में अब अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की पूजा की जाती है, जिसकी प्रतिष्ठा सम्भवतः आठवीं शताब्दी में तान्त्रिक बौद्ध आचार्य पद्म-सम्भव ने की थी। जाहिर है कि शैव धर्म में आस्था रखने वालों की संख्या धीरे-धीरे इस क्षेत्र में कम हो गई और बौद्ध धर्म का प्रसार अधिक हुआ, जिससे शैव केन्द्र को बौद्ध धर्म केन्द्र में परिवर्तित कर दिया गया। फिर भी प्राचीन मूल धर्म का,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जो शैव धर्म था, मूलोच्छेदन न हो सका, क्योंकि शैव हिन्दुओं की संख्या यहाँ की घाटी में कम न थी। परिणामतः मन्दिर का नाम यथावत् बाद में भी चलता रहा और यह शैव केन्द्र इतिहास की आँधी और तूफान से जूझता हुआ आज तक अपने को बचाता रहा।

यह इस क्षेत्र के शैव धर्म एवं कला का एक प्रधान केन्द्र था। वैसे कला की दृष्टि से मन्दिर अधिक सुन्दर नहीं है, लेकिन प्राचीन होने के कारण वह अब भी बड़ा महत्वपूर्ण है। वह यहाँ की पहाड़ी मन्दिर शैली में निर्मित है, जहाँ हिन्दू और बौद्ध आजकल एक साथ पूजा करते हैं। वहाँ के वार्षिक मेलों में दोनों वर्गों के लोगों की भीड़ होती है।

हिमाचल के अन्य शैव क्षेत्रों और केन्द्रों में चम्बा और भरमौर तथा वहाँ के प्राचीन मन्दिरों का उल्लेख करना अनिवार्य है। यहाँ हिमाचल के शैव मन्दिर सबसे अधिक संख्या से पाये जाते हैं। इनमें से अनेक की सूचना तो वहाँ से प्राप्त अभिलेखो से मिलती है और अनेक शैव मन्दिरों की ओर संकेत वहाँ से प्राप्त शैव मूर्तियों और शिवलिंगों से मिलता है, जिनके कुछ अवशेष मिलते हैं। इनमें से अनेक प्राचीन मंदिर सम्भवतः काष्ठनिर्मित थे और समय के कारण अब नष्ट हो चुके हैं। गुप्तकालीन सांस्कृतिक वातावरण, पौराणिक हिन्दू धर्म का चारों ओर प्रसार तथा तवी नदी की उपजाऊ घाटी उनके निर्माण के विशेष कारण थे।

चम्बा के अवशिष्ट शैव मन्दिर गुप्तोत्तरकालीन हैं। इनकी संख्या अनेक हैं। इन्हें चम्बा के राजाओं ने समय-समय पर बनवाया था, जिन्हें हम उनकी वंशावलियों तथा उनके द्वारा उत्कीर्ण अभिलेखों से जानते[६१] हैं।

इस क्षेत्र में शैव धर्म कुषाण-काल में प्रचलित हो गया था, जैसा कि एक कुषाणकालीन शूलपाणि शिव की प्रतिमा से मालूम होता है, जो चम्बा और भरमौर के बीच स्थित एक स्थान से मिली है। यह खड़ी प्रतिमा उसी शैली में निर्मित है, जिसमें कुषाण-काल का प्रभाव देखा जाता है। हो सकता है कि ऐसा प्रभाव इस क्षेत्र में थोड़ा देर में पहुँचा हो। इनमें भरमौर के शैव मन्दिर सबसे प्राचीन है, जो इस क्षेत्र में शैव धर्म के प्रसार और उसकी लोकप्रियता के सही परिचायक हैं। इस काल में इसे राज-संरक्षण भी मिला, अतएव भरमौर में शैव मन्दिरों की भरमार हो गई।

यहाँ मणिमहेश का मन्दिर संभवतः सबसे प्राचीन है, जिसे चम्बा के प्राचीन

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

नरेश मेरुवर्मा ने बनवाया था। यह मन्दिर संभवतः मध्यकाल के प्रारम्भिक काल में बनवाया गया, जैसा कि मन्दिर के समक्ष प्रस्थापित अष्टधातु से निर्मित शिववाहन नन्दी वृषभ की प्रतिमा से मालूम होता है। मन्दिर के गर्भ गृह में प्रस्थापित विशाल शिव लिंग उससे कुछ प्राचीन लगता है, क्योंकि वह प्रस्तर निर्मित है और मन्दिर-द्वार के तारतम्य में नहीं बनाया गया है। गर्भगृह में प्रस्थापित प्रतिमायें नियमतः द्वार के तारतम्य में बननी चाहिए और उसी प्रकार मन्दिर शिखर की ऊँचाई का पैमाना भी होना चाहिए। यह मन्दिर एक बड़े आयताकार चबूतरे पर बना है और उसका द्वार उत्तर की तरफ खुलता है। सामने स्थित वृषभ की विशाल प्रतिमा उसकी शोभा बढ़ाती है।

चम्बा में निर्मित गौरीशंकर का मन्दिर इस क्षेत्र का दूसरा जीवित शैव केन्द्र है। इसे चम्बा के नरेश युगाकर वर्मा ने निर्मित कराया था, जो साहिलवर्मा का उत्तराधिकारी था। इसमें रखी पीतल निर्मित शिव की प्रतिमा इस क्षेत्र की कला-परम्परा की एक अनुपम निधि है। यहाँ त्रिमुख लिंग मन्दिर का भी उल्लेख करना आवश्यक है। चम्बा के शैव मन्दिरों में उसका भी एक स्थान है।

चम्बा से कुछ ही दूर स्थित साहो में बना चन्द्रशेखर (शिव) का भी मन्दिर यहाँ उल्लेखनीय है। इसके द्वारबिम्ब पर बनी दो मूर्तियाँ प्राचीन मालुम पड़ती हैं। निकटस्थ साराहना से मिले शारदा अभिलेख में इस मन्दिर का वर्णन मिलता है, जिससे यहाँ प्रस्थापित शिव की महिमा का कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है।

चम्बा-भरमौर का यह क्षेत्र प्राचीन पर्वतीय भारतवर्ष का एक प्रधान शैव-पीठ मालूम पड़ता है। इस क्षेत्र को आज भी चौरासी कहा जाता है, जिससे यहाँ स्थित उन चौरासी शैव मन्दिरों की ओर संकेत मिलता है, जो परम्परा के अनुसार यहाँ कभी विद्यमान थे। इनके अवशेषों को वहाँ अब भी देखा जा सकता है। इनमें प्रायः छोटे-बड़े शिव लिंग प्रमुख हैं। शैव धर्म में महती आस्था रखने वाले लोगों की भावना की ओर यहाँ मिले उन अनेक अभिलेखों से भी संकेत मिलता है, जिनमें शिवोपासना का उल्लेख है। इस क्षेत्र से ऐसे अनेक प्रस्तर-खण्ड भी मिले हैं, जिन्हें प्रपात-प्रस्तर नाम दिया जाता है। इन पर भी अन्य देवी-देवताओं के साथ शिव की प्रतिमाएँ उकेरी गई हैं।

यह क्षेत्र आज भी धर्म-विश्वास की दृष्टि से एक प्रधान शैव क्षेत्र मालूम होता है। यहाँ के निवासी गद्दी आज भी शिव के उपासक हैं। प्रायः प्रत्येक ग्राम में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

शिवलिंग या नन्दी वृषभ पर आसीन भुजंगधारी शिव की प्रतिमा दिखलाई पड़ती है। इस इलाके में प्राय: प्रत्येक घर में आज भी शिव की पूजा की जाती है। प्रत्येक घर में उसके लिए प्रतिवर्ष एक यज्ञ किया जाता है, जिसे गद्दी भाषा में 'नुआला' कहते हैं। इसमें लोग नाच-नाच कर गीत गाते हैं और शिव सम्बन्धी कथायें कह-सुनकर आनन्द मनाते हैं।

मण्डी हिमाचल में शैव धर्म का दूसरा प्रधान क्षेत्र[१२] था। इस दृष्टि से, इसीलिए, इसे इस क्षेत्र का काशी माना जाता है। अनेक साक्ष्यों से यह मालूम होता है कि आज की तरह प्राचीन काल में यह स्थान शैव धर्म का एक प्रमुख केन्द्र था। मैदानों से शैवधर्म जब इन पर्वतीय घाटियों की ओर बढ़ने लगा, तो यह स्थान प्रमुख व्यापार-मार्ग पर स्थित होने के कारण और व्यापार के लिए एक प्रधान केन्द्र होने के कारण अनेक धर्मावलम्बियों का भी केन्द्र बन गया। इसे यहाँ व्यापारियों के साथ-साथ राजाओं का भी संरक्षण मिला, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ शैव मन्दिरों एवं मूर्तियों का निर्माण अधिक संख्या में किया गया।

यहाँ के शैव भग्नावशेषों में सम्भवत: पंचवक्त्र का मन्दिर सबसे प्राचीन है। इसकी निर्माण शैली और उसकी मूर्तियों को देखने से यह मालूम होता है कि यह पूर्व मध्यकाल में कभी बनवाया गया था। इसके गर्भगृह में भगवान पंचवक्त्र शिव की विशाल प्रतिमा अब भी देखी जा सकती है, जो धर्म, मूर्तिशास्त्र एवं कला की दृष्टि से एक अनूठी रचना मानी जा सकती है। यह उत्तर भारतीय शिखर शैली में निर्मित एक छोटा-सा मन्दिर है, जिसमें केवल गर्भगृह और मण्डप ही बनवाये गये थे। इसका ऊँचा प्रधान शिखर अब भी ज्यों का त्यों विद्यमान अपनी प्राचीन समृद्धि की ओर संकेत करता है। मण्डप की छतें गिर गई है, लेकिन दीवारें अब भी विद्यमान हैं। इनमें उकेरी शिल्प कलायें आज भी उस भव्य अलंकारण की ओर संकेत करती है, जिससे सम्पूर्ण मन्दिर कभी बड़ा सुसज्जित तथा वैभवपूर्ण था। यहाँ का उत्साही धार्मिक जागरण और धनी आर्थिक परिवेश इसकी समृद्धि के प्रधान कारण थे।

गुप्त या गुप्तोत्तर काल में यहाँ सम्भवत: अनेक शैव मन्दिर बनवाये गये थे, जिनके अब हमें न तो अवशेष मिलते हैं और न जिनकी सूचना किसी प्राचीन अभिलेख से मिलती है। परन्तु व्यास नदी के दूसरे किनारे पर बसी प्राचीन मण्डी सम्भवत: यहाँ के शैव धर्म की प्रधान स्थली थी। वहाँ बिखरी प्राचीन मूर्तियों को देखने से ऐसा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अनुमान होता है। वहाँ के मध्यकालीन तथा आधुनिक मन्दिरों से भी इसी ओर संकेत मिलता है। कुछ भी हो, शैव धर्म यहाँ निरन्तर विकसित होता रहा और मध्यकाल में वह यहाँ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा। उस समय यहाँ अनेक शैव मन्दिर बनवाये गये, जो आज भी वहाँ विद्यमान है। इनमें हम यहाँ उन दो मन्दिरों का उल्लेख कर सकते हैं जो व्यास नदी के किनारे आमने-सामने अब भी खड़े हैं। इनमें त्रिलोकनाथ का मन्दिर प्रायः अधिक प्राचीन है, जिसके निर्माण और काल की सूचना हमें कई स्रोतों से मिलती है। इसे सोलहवीं शताब्दी में अजवर सेन की पत्नी ने बनवाया था। नई मण्डी के भूतनाथ मन्दिर का निर्माण राजा अजवरसेन ने स्वयं करवाया था। यहाँ इस मन्दिर का वही स्थान है, जो काशी में बाबा विश्वनाथ के मन्दिर का है। इसे आज भी इस नगर का संरक्षक देवता माना जाता है। सैकड़ों शैव उपासकों की भीड़ आज भी वहाँ लगी रहती है।

हिमाचल के अन्य मध्यकालीन शैव मन्दिरों में हम उन अनेक अवशेषों का उल्लेख कर सकते हैं, जिन्हें यहाँ के क्षेत्रीय शासकों ने समय-समय पर बनवाया[१९] है। नगर किले के निचले भाग में बने गौरी शंकर का मन्दिर, मणिकरण के बिजली महादेव का मन्दिर, मन्डी क्षेत्र में स्थित मगरू महादेव का मन्दिर तथा छतरी की महादेवी मन्दिर, काँगड़ा क्षेत्र में स्थित जिन्दगोल नन्दिकेश्वर महादेव तथा त्रिलोकपुर और बाबादेवत् सिद्ध के शिव मन्दिर तथा सिसोल ग्राम में स्थित मुक्तेश्वर का मन्दिर, निर्मण्ड में बने कपालेश्वर शिव का मन्दिर तथा हाटकोटी में बने शैव मन्दिर, सुकेत क्षेत्र में स्थित पंगना का अम्बरनाथ मन्दिर तथा अमल विमल का शिव मन्दिर आदि विशेष प्रसिद्ध हैं, जहाँ अब भी वर्ष में कई बार मेले लगते हैं और महादेव शिव की पूजा करने के लिए हजारों लोग दूर-दूर से आते हैं।

बाद में यहाँ शिव की लोकप्रियता समानतः धीरे-धीरे कुछ कम होती गई। इसका स्थान शक्ति ने ले लिया, जिसकी उपासना प्राचीन काल में भी बराबर की जाती थी। हिमाचल प्रदेश आज भी शैवोपासना का एक प्रधान क्षेत्र है और उसमें आस्था रखने वाले लोग उसके हर क्षेत्र में देखे जाते हैं। प्राचीन और मध्यकाल की तरह वह आज भी यहाँ की संस्कृति एवं कला का एक अभिन्न अंग है और उसके विकास का एक प्रधान प्रेरणा-स्रोत है।

शाक्त धर्म—

हिमाचल में शक्ति की पूजा बहुत पहले से प्रचलित मालूम होती है। इसके

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

विकास में शैव धर्म ने विशेष रूप से योगदान दिया। प्राचीन काल में पार्वती को शिव की धर्म पत्नी के रूप में प्रकल्पित किया गया था और उसकी पूजा शिव के साथ-साथ की जाती थी[९४]। वैसे इस पर्वतीय क्षेत्र में हेमवती की पूजा होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि वह एक तरफ नगाधिराज हिमालय की पुत्री थी और दूसरी तरफ कैलाशपति शिव उसका पति था, जिसे हिमालय का संरक्षक देवता माना जाता है।

भारत में मातृदेवी की पूजा सैन्धव घाटी सभ्यता में ही प्रचलित थी। वह उस समय जनन-क्रिया की देवी मानी जाती थी। उस समय उसकी मूर्तियों के साथ-साथ उसके विभिन्न प्रतीकों की कल्पना की गई थी। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तथा तत्संबंधी अन्य सांस्कृतिक स्थानों से मातृ देवी की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई है, जो उसकी पूजा के साधन[९५] थे। वहीं से साथ ही साथ कुछ चक्राकार प्रतीक भी मिले हैं, जिन्हें शक्ति का प्राचीन रूप स्वीकार किया जाता है। ऐसे प्रतीक उत्तर भारत के विभिन्न ऐतिहासिक केन्द्रों से भी प्राप्त हुए हैं, जिन्हें छठीं शताब्दी ई० पू० के आस-पास के शताब्दियों में बना बताया जाता है।

वैदिक साहित्य में भी कई देवियों का उल्लेख किया गया है। इनमें श्री लक्ष्मी, वाक्, सरस्वती (नदी का दैवी रूप) तथा पृथ्वी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उमा हेमवती की भी चर्चा उत्तर वैदिक साहित्य में की गई है और सूत्रसाहित्य की रचना के समय तो उसका संसर्ग शिव के साथ कर ही दिया गया था। इस तरह बढ़ते हुए शैव धर्म के संसर्ग में आने से और देवी को शिव की अर्द्धाङ्गिनी रूप में कल्पित करने से शक्ति पूजा के प्रचार और प्रसार में काफी मदद मिली है, इसमें दो मत नहीं है।

विभिन्न सांस्कृतिक इकाइयों के संपर्क में आने के कारण शक्ति-उपासना में विविध पक्षों का विकास हुआ[९६]। वह पहले एक माँ के रूप में कल्पित की गई। उसे संसार की उत्पत्ति का कारण माना गया। इससे उसके सौम्यरूप का प्रचलन हुआ। बाद में उसे सृष्टि की संरक्षिका स्वीकार किया गया और समय आने पर उसे आसुरी शक्तियों की विनाशकारिणी भी माना गया। इस तरह उसके व्यक्तित्व में एक भयानक रूप की भी कल्पना की गई। अतः उमा तथा पार्वती के साथ-साथ उसे दुर्गा, चंडी, काली, कराली, महाकाली, चामुण्डा तथा महिषमर्दिनी आदि नाम दिये गये। बाद में उसके इन रूपों को उसकी मूर्तियों में यथास्थान दिया गया और ऐसी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अनेक मूर्तियाँ बनाई गईं, जिनमें उसका यह रूप प्रदर्शित किया गया। विद्वानों का कहना है कि देवी की इस प्रकार की कल्पना में विभिन्न लोगों एवं पर्वतीय घाटियों तथा जंगलों में रहने वाली आदिजातियों के धार्मिक विश्वासों और क्रियाओं ने अधिक योगदान दिया और उसकी पूजा-विधियों, क्रियाओं तथा साधनाओं में उनके जादू-टोनों तथा रूढ़ियों ने अपना स्थान बना लिया। धीरे-धीरे वे शक्ति-उपासना के अभिन्न अंग बन गये।

इन्हीं कारणों से हिमाचल में शक्ति की उपासना बड़े जोरों से प्रारम्भ हुई। गुप्त-काल इसके विकास का एक महत्वपूर्ण युग मालूम होता है, क्योंकि यहाँ से हमें इस काल की कुछ मूर्तियाँ तथा मन्दिर मिले हैं। इनमें से कुछ तो अब नष्ट हो चुके हैं। लेकिन वे अपना कुछ अवशेष छोड़ गये हैं, जिससे यहाँ के शाक्त धर्म के विकास का इतिहास लिखने में मदद मिलती है।

इन शाक्त मन्दिरों में सम्भवतः चंबा-लाहौल में स्थित मुकुला देवी का मन्दिर सबसे प्राचीन है, जो किसी न किसी रूप में अब तक बच[१७] गया है। यह स्थान लाहौल में एक ऐसे ग्राम में स्थित है, जो मय्यारनाला तथा चन्द्रभागा नामक नदी के संगम पर बसा है। इस ग्राम का प्राचीन नाम मुकुला था, जो बाद में सत्रहवीं शदी में उदयपुर नाम से प्रसिद्ध हुआ, क्योंकि वह उस समय चम्बा-नरेश उदय सिंह का राजकीय केन्द्र बनाया गया। इसी मन्दिर के निर्माण की सही तिथि अज्ञात है। विद्वानों की धारणा है कि यह गुप्तकाल में कभी बनवाया गया था, जब पौराणिक हिन्दूधर्म में शाक्त संप्रदाय अपने विकास पर था। कहा जाता है कश्मीर-नरेश अनन्तदेव की पत्नी सूर्यमति ने ग्यारहवीं शदी में इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। बाद में मध्यकाल में जब इस क्षेत्र में लामा बौद्ध धर्म का विकास हुआ, तो इसे एक बौद्ध मन्दिर में बदल दिया गया और देवी दुर्गा के स्थान पर मारीची वज्रवाराही की पूजा होने लगी। फिर भी यह शक्ति उपासना का एक प्रसिद्ध केन्द्र निरन्तर बना रहा। आजकल यहाँ एक अष्टधातु निर्मित दो फीट ऊँची मूर्ति पूजी जाती है जिसे बौद्ध लोग दौरजे फांग मो (वज्रवाराही) कहते हैं।

आधुनिक मन्दिर नये और पुराने निर्माण का एक अद्भुत सम्मिश्रण है। पुराने अवशेषों में इसके द्वार-बिम्ब के साथ उसके मण्डप की छत तथा उसके चार स्तम्भ गिने जाते हैं और मन्दिर का अवशिष्ट भाग मध्यकालीन माना जाता है। बाहर से देखने में तो यह उतना आकर्षक नहीं है, जितना कि यह अन्दर से सुन्दर है। इसकी भीतरी छत पर काष्ठ में रामायण और महाभारत के अनेक कथानकों और

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

चरित्रों का बड़ी सुन्दरता से अंकन किया गया है।

हिमाचल के अन्य प्राचीन मन्दिरों में चम्बा-भरमौर क्षेत्र के तीन मन्दिर तथा कांगड़ा के कुछ मन्दिर उल्लेखनीय है, जब कि शक्ति-पूजा के केन्द्र इस प्रदेश के प्रायः हर भाग में बिखरे थे। लेकिन दुर्भाग्य से अन्य प्राचीन शाक्त पीठों के अवशेष अब उपलब्ध नहीं है। इनमें से अधिकांश के स्थान पर मध्यकाल में या आधुनिक काल में नये मन्दिरों का निर्माण कराया गया जान पड़ता है।

चम्बा-भरमौर के शाक्त-निर्माणों में लक्षणा देवी का मन्दिर तथा छतरारी का शक्ति-मंदिर उल्लेखनीय है[६८]। इन अवशेषों के साथ दुर्गा की तथा अन्य देवों की अनेक मूर्तियाँ गिनाई जा सकती है, जो इस क्षेत्र से प्राप्त हुई है। (देखिये चित्र ७)

लक्षणा देवी का मन्दिर सबसे प्राचीन है। इसे मेरुवर्मा ने आठवीं शदी ई० में बनवाया था। इसमें तीन फीट चार इंच ऊँची महिषमर्दिनी दुर्गा की अष्टधातु की एक भव्यमूर्ति प्रतिष्ठित है, जिसमें देवी को महिषासुरनामक राक्षस को मारते हुए दिखाया गया है। यह मूर्ति बड़ी ही सुन्दर एवं जानदार है और हिमाचल की प्राचीन मूर्तियों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इसे गुग्गा नामक कलाकार ने बड़ी मेहनत से बनाया था, जैसा कि इसकी वेदिका पर लिखे अभिलेख से ज्ञात होता है। यह मन्दिर देखने में छोटा है। लेकिन सुन्दरता की दृष्टि से हिमाचल के प्रमुख मंदिरों में गिना जाता है। यह उत्तर भारत की नागरशैली में बना है, जिसके शिखर पर एक छतरी रखी हुई दिखाई गई है, जो पर्वतीय मंदिरों की एक विशेषता है। इसके द्वार का निर्माण लकड़ी से किया गया है और मंदिर के भीतर काष्ठ में खचित कारीगरी विशेषरूप से दर्शनीय है। द्वार पर अंकित गंगा-यमुना की मूर्तियाँ तथा ललाटबिम्ब पर निर्मित अन्य मूर्तियाँ तथा अलंकरण मंदिर की शोभा बढ़ाते हैं। इसी प्रकार अन्दर भी वह मूर्तियों तथा अन्य प्रकार के उकेरे गये अलंकरण से सुसज्जित है। विद्वानों ने इसमें प्राप्त कला को प्राचीन भारत की उच्च कोटि की कला में गिना है और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसे गुप्तकालीन सुन्दर मूर्तियों के समकक्ष माना गया है और इनमें से कुछ पर युनानी कला का भी प्रभाव देखा गया है।

चम्बा और भरमौर के बीच छतरारी नामक स्थान पर निर्मित शक्ति देवी का मन्दिर यहाँ का दूसरा प्रधान शक्ति केन्द्र है।[६९] इसमें भी अष्टधातु से बनी दुर्गा की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। इस मन्दिर को भी गुग्गा नामक शिल्पकार ने बनाया था, अतएव इसकी निर्माण-शैली तथा बनावट लक्षणा देवी के मन्दिर से भिन्न नहीं है। उसकी तरह यह भी अन्दर की तरफ पौराणिक मूर्तियों से बहुविध अलंकृत है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इस क्षेत्र से मिली दुर्गा की कुछ मूर्तियाँ भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। उदाहरणार्थ वासु परगना में स्थित तुर नामक स्थान से कुछ शाक्त मूर्तियाँ मिली है, जिनमें कुछ चतुर्भुजी देवी की खड़ी प्रस्तरमूर्ति विशेषरूप से दर्शनीय है। हो सकता है कि यहाँ भी कभी शक्ति-मंदिर विद्यमान रहा हो। बेरा परगना में स्थित देवीकोठी नामक स्थान भी एक शाक्त पीठ मालूम पड़ता है, जैसा कि स्थान के नाम से ही द्योतित होता है।

काँगड़ा क्षेत्र में शक्ति की पूजा अधिक प्रचलित मालूम होती है। यहाँ से कई प्राचीन शाक्त मंदिरों के अवशेष[१००] मिले हैं। हरमनगोएट्ज ने भवानी मंदिर के प्रांगण में मिलने वाली दशभुजी देवी (मारीची ?) को सातवीं शदी में बना बताया है। हरिपुर में देशमुखी देवी की काष्ठ-प्रतिमा को भी इन्होंने इसी काल में रखा है। काँगड़ा के किले में निर्मित मंदिर में अम्बिका देवी की एक मूर्ति मिली थी, जिसे गुप्तोत्तर काल में कभी रक्खा जा सकता है। इस मंदिर का अब खण्डहर मात्र मिलता है। लगता है कि इस क्षेत्र में शक्ति-पूजा गुप्तकाल में प्रचलित की गई थी, जिसका पूर्वमध्यकाल में यहाँ अधिक विकास[१०१] हुआ। सम्भवतः इसी काल में कोट-काँगड़ा के एक भाग भवन नामक स्थान में निर्मित भवानी मंदिर को भी रक्खा जा सकता है। यहाँ से प्राप्त एक अभिलेख में मंदिर के सम्बन्ध में कुछ सूचनायें मिलती हैं, जिसका कुछ भाग शारदा लिपि में लिखा है और बाद का आधा भाग देवनागरी में लिखा है, जो पन्द्रहवीं शताब्दी में लिखाया गया था। लेख में यहाँ प्रतिष्ठित देवी को ज्वालामुखी नाम दिया गया है, जिसे बाद में भवानी भी कहने लगे, जिसकी प्रशस्ति लेख के प्रारम्भ में उत्कीर्ण है। इसकी रचना राघव नामक सन्यासी ने की थी, जो वेदान्त दर्शन में दक्ष था। काशी से आये पंडित यहाँ निवास करते थे और षड्दर्शनों, स्मृतियों तथा यज्ञविद्याओं का अध्ययन करते थे। यहाँ के कटोच नरेशों का संरक्षण इस मंदिर को सदैव मिलता रहा। इस युग में बने यहाँ के शाक्य मंदिरों में ब्रजेश्वरी देवी का मंदिर विशेष प्रसिद्ध है, जो काँगड़ा की संरक्षिका मानी जाती है। इसे प्राचीन काल में बागेश्वरी कहते थे। यहाँ यह ध्यातव्य है कि वाक् (वाणी), एक वैदिक देवी थी, जिसका तादात्म्य बाद में दुर्गा के साथ किया गया। कहा जाता है कि यहाँ कभी अश्वमेघ यज्ञ किया गया था और तभी इस देवी की स्थापना हुई थी। इसे किसने और कब बनवाया, ये बातें हमें सही तरह से ज्ञात नहीं है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह शाक्त पीठ जगत्प्रसिद्ध था, यहाँ लोग भारत के विभिन्न भागों से सहस्रों की संख्या में आते थे और देवी के लिए सोने तथा हर प्रकार की अन्य कीमती

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वस्तुएँ दान में देते थे। इसी के परिणामस्वरूप वह मंदिर अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए प्रसिद्ध था। अतएव धन के लोलुप महमूद गजनवी ने १००६ ई० में काँगड़े पर आक्रमण किया और इस मंदिर में सुरक्षित लाखों स्वर्ण मुद्राओं, सोना तथा अन्य बेशकीमती वस्तुओं को उठा ले गया। कहा जाता है कि वही यहाँ प्रतिष्ठापित देवी-प्रतिमा को भी ले गया। विद्वानों की यह भी धारणा है कि उसने मंदिर को भी नष्ट किया और उसके स्थान पर एक मस्जिद का भी निर्माण करवाया गया। बाद में यहाँ शक्ति-मंदिर की पुनः स्थापना की गई, लेकिन उस मंदिर का सही रूप फिर न लाया जा सका, जिसकी विशालता एवं सुन्दरता के लिए वह प्राचीन काल में चारों ओर प्रसिद्ध था।

यह मंदिर मध्यकाल में हिन्दुओं का एक प्रमुख तीर्थस्थान बना रहा। कटोच नरेशों का संरक्षण इसे निरन्तर मिलता रहा, जिससे मन्दिर की मर्यादा सदैव बनी रही। प्रतिवर्ष लाखों यात्रियों के आगमन और दान देने की प्रथा से यह पुनः समृद्ध हो गया, जिससे विदेशी लुटेरों और लोलुप मैदानी शासकों की निगाह इस पर पुनः पड़ी। जोनराज की राजतरंगिणी में वर्णन मिलता है कि कश्मीर-नरेश शहबुद्दीन ने (१३६३ ई०-८६ ई०) सुशर्मपुर (काँगड़ा) के राजा पर आक्रमण किया। इसी तरह दिल्ली नरेश फीरोज तुगलक ने १३६५ ई० में इसे लूटा और शेरशाह के सेनानायक ख्वास खान ने १५४० ई० में इस पर आक्रमण किया। फिर भी काँगड़ा नगर और मन्दिर अपने विकास की ओर निरन्तर अग्रसर होते रहे। मुगल सम्राट अकबर की कृपा यहाँ के मंदिरों की ओर थी। कहा जाता है कि वह कभी टोडरमल के साथ यहाँ आया था। युरोप के कुछ यात्रियों ने भी इसे इस समय देखा था। उदाहरणार्थ १६११ ई० में विलियम पिन्च काँगड़ा आया था। उसने यहाँ एक प्रस्तर निर्मित मूर्ति देखी थी जो जय दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध थी। उसने उसके मंदिर का भी उल्लेख किया। १६१५ ई० में आये युरोप के दूसरे यात्री थामस कोर्यट ने इसे माता की मूर्ति बताया है। १६६६ ई० में फ्रांसीसी यात्री थेवेंनट भी इसका उल्लेख करता है और कहता है कि नगरकोट की देवी अत्यधिक प्रसिद्ध थीं और इससे यहाँ के ब्राह्मणों को बड़ा लाभ होता था, क्योंकि हजारों यात्री प्रतिवर्ष देश के विभिन्न भागों से आकर अनेक वस्तुएँ और रुपये-पैसे दान में देते थे।

सिक्खों के काल में भी इस मंदिर को बड़ी प्रतिष्ठा मिली। महाराजा रणजीत सिंह यहाँ की देवी में बड़ी आस्था रखते थे। अतः उस समय भी इस मंदिर को संरक्षण मिला, जिससे इसके विकास में किसी प्रकार की बाधा नहीं आई।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ज्वालामुखी मन्दिर इस क्षेत्र का दूसरा प्रमुख शाक्त[१०२] केंन्द्र है। यह स्थान धर्मशाला से ३४ मील दूर व्यास घाटी में स्थित है। मन्दिर का रूप एकदम आधुनिक है, लेकिन इस स्थान का एक प्राचीन शाक्त पीठ होना जलन्धर-माहात्म्य से द्योतित होता है, जिसके अनुसार दैत्य जलन्धर के शरीर का एक भाग यहाँ तक फैला हुआ है। दूसरी पौराणिक कथा के अनुसार दक्षयज्ञ भंग होने के बाद जब शिव सती के मृत शव को लेकर भागे थे, तो उसकी जिह्वा इसी स्थान पर गिरी थी, अतः इसे इक्कावन महाशक्ति पीठों में से एक माना जाता है।

इस मन्दिर में देवी की कोई मूर्ति नहीं प्रतिष्ठित की गई है। इसमें केवल एक तीन फोट गहरी वर्गाकार वेदिका ही पूजा की वस्तु है, जिसके चारों तरफ प्रदक्षिणापथ बना हुआ है। अन्य मन्दिरों की भाँति इसे भी समय-समय पर राज-संरक्षण मिलता रहा है। १९ वीं शदी के प्रारम्भ में महाराजा रणजीत सिंह ने, जो इस देवी के महान् उपासक थे, इस मन्दिर के गुम्बज को अलंकृत करवाया। इसी तरह एक दूसरे शासक ने चाँदी की पत्तियों से सुसज्जित इसके द्वार का निर्माण करवाया। इस प्रकार समय-समय पर देवी को दान मिलते रहे, जिससे इसका विकास निरन्तर होता रहा। इस समय यह एक अत्यन्त जीवित शाक्त स्थान माना जाता है। यहाँ वर्ष में दो बार मेले लगते हैं और चैत्र माह के नवरात्र के दिनों में सहस्त्रों भक्त दूर-दूर से दैवी का दर्शन करने आते हैं। काँगड़ा-क्षेत्र में अन्य अनेक शाक्त केन्द्र पाये जाते हैं। धर्मशाला से आठ मील दूर धवलाधार के पाद पर बहती बनेर नदी के दाहिने किनारे पर बना चमुण्डादेवी का मंदिर इस समय विशेष प्रसिद्ध है। इसी प्रकार होशियारपुर तथा धर्मशाला मार्ग पर स्थित भरवैं नामक स्थान से लगभग डेढ़ मील दूर बना चिन्तपूर्णि देवी का मंदिर भी इस समय अत्यन्त लोकप्रिय है। यह बहुत प्राचीन मंदिर नहीं मालूम होता है। इसके गुम्बज तथा चौड़े छत इसे आधुनिक सिद्ध करते हैं। यहाँ प्रस्तर की एक पिण्डी पूजा की वस्तु है। यह छिन्न-मस्तिका देवी को प्रदर्शित करती है, जिसने इस रूप में निःशुंभ नामक राक्षस की हत्या की थी। आज यह एक प्रयत्न जीवित पूजा केन्द्र है, जहाँ वर्ष भर सहस्त्रों तीर्थयात्री आकर देवी का दर्शन करते हैं। यहाँ श्रावण माह में एक विशाल मेला लगता है, जिसमें लोग दूर-दूर से आकर देवी को हर प्रकार का भेंट चढ़ाते हैं।

मंडी-बिलासपुर क्षेत्र में पाये जाने वाले अधिकारी शक्ति-मन्दिर मध्यकालीन मालुम होते हैं[१०३]। असम्भव नहीं है कि इस क्षेत्र के प्राचीन मन्दिर समय के कारण धराशायी हो गये और उनके स्थान पर नये मन्दिरों का निर्माण किया गया। परन्तु

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अभिलेखों के अभाव में कुछ भी कहना तर्कसंगत नहीं है। पुरानी मंडी में बनवाये गये आधुनिक शक्ति-मन्दिरों में प्राचीन मन्दिरों की झाँकी देखी जा सकती है। मुंडी के कुछ लोग वास्तव में शक्ति की उपासना में विश्वास रखते थे। अतः वहाँ के राजाओं तथा धनी लोगों ने समय-समय पर शक्ति-मंदिरों का निर्माण करवाया। रिवाल्सर झील के पास नैना देवी के मंदिर का निर्माण मंडी-नरेश सूरज सेन ने सत्रहवीं शदी के मध्य में करवाया था, जो १६०५ ई० में भूचाल में गिर गया। इसी शदी में सिद्ध सेन ने सिद्धपुर में जल्पादेवी के मंदिर का निर्माण करवाया था।

हमीरपुर और मंडी सीमा पर स्थित संगोह नामक ग्राम में निर्मित नवही देवी का मन्दिर भी काफी प्राचीन है। इसे लगभग दो सौ वर्ष पुराना माना जाता है। यहाँ नवभुजावाली दुर्गा की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। इसे इस क्षेत्र का एक जीवित मन्दिर माना जाता है और जून के माह में यहाँ आज भी मेला लगता है, जिसमें लोग दूर-दूर से आकर भाग लेते हैं।

बिलासपुर जिले में स्थित नयना देवी मन्दिर का उल्लेख करना भी आवश्यक है, जिसके निर्माण के सम्बन्ध में प्रायः दो किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक के अनुसार यहाँ कभी किसी गूजर ने एक बछिया को एक चट्टान पर दूध गिराते देखा। उसे इस पर कुछ सन्देह हुआ। कहा जाता है कि उसने उस स्थान को खोदा तो उसे एक प्रस्तर-खण्ड मिला, जिसमें देवी का रूप था। उसने फिर वहाँ एक उसी देवी के लिए एक मन्दिर का निर्माण करवाया, जो नयना देवी नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरी जनश्रुति के अनुसार दक्षयज्ञ भंग के बाद सती की एक आँख यहाँ गिर गई, जिससे बाद में देवी के लिए बनवाये गये मंदिर को लोग नयना देवी कहने लगे, कुछ भी हो, यह देखने में अत्यन्त आधुनिक शाक्त पीठ मालूम पड़ता है। वहाँ प्रतिवर्ष श्रावण में मेला लगता है और नवरात्र के दिनों में देवी की विशेष पूजा होती है। यह इस क्षेत्र का अत्यन्त जीवित मन्दिर माना जाता है और सहस्त्रों की संख्या में लोग आकर देवी की वर्ष भर पूजा करते हैं।

यहाँ मंडी के तारना देवी मन्दिर का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। मन्दिर में रक्खी कुछ प्राचीन प्रतिमाओं के कारण यह स्थान भी प्राचीन शाक्त पीठ मालूम होता है। आधुनिक हिमाचल काल में बना यह मन्दिर आज भी हिमाचल के प्रमुख शाक्त स्थानों में गिना जाता है। यह तारना नामक पहाड़ी के शिखर पर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

स्थित है, जहाँ जाने के लिए बड़ी सुन्दर सड़क बनी हुई है, जिस पर कार चलाकर दर्शक मन्दिर तक जा सकता है।

इस मन्दिर की स्थापना राजा श्याम सेन ने की थी। बाद में उसके वंशज बलबीर सेन ने इस मन्दिर के गर्भगृह को अत्यधिक सुन्दर बनाया। कहा जाता है कि रणजीत सिंह ने बलबीर सेन से रियासत के लिए अधिक कर माँगा। लेकिन उसने उसे देने से इन्कार कर दिया। इसलिए उसे कैद कर लिया गया और उसे अमृतसर में गोविन्दगढ़ के जेलखाने में रख दिया। राजा बड़ा दुखी था, लेकिन वह भगवती काली का पक्का उपासक था। वह अपनी मुक्ति के लिए देवी की प्रार्थना रातोंदिन करता रहा। अन्त में कन्या-रूप में देवी ने उसे दर्शन दिया। उसने उसी समय प्रतिज्ञा की कि जब वह छूटकर मण्डी पुनः वापस आयेगा तो वह देवी के मन्दिर में सोने की पत्तियाँ उसी तरह लगायेगा, जैसा कि बड़े दरबार साहब के मन्दिर में लगा है। फिर उसे वहाँ से मुक्ति मिली। वह अपनी राजधानी में लौटा, जयपुर से कारीगरों को बुलाकर उसने मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया. इसके भीतर गर्भगृह में सोने की पत्तियाँ मढ़वाई और बीच-बीच में शीशे लगवाये।

मन्दिर का गर्भगृह वास्तव में अद्वितीय है और सम्पूर्ण भारत वर्ष में ऐसा काली मन्दिर या देव-स्थान अन्यत्र नहीं बना है। मन्दिर निर्माण कला में यह अनूठा है। मन्दिर मध्यकाल में विकसित वास्तुकला की शैली में बना है और ऊपर गुम्बद-नुमा शिखर निर्मित है। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ बना है। मन्दिर ऊँचे चबूतरे पर स्थित है, जिस पर संगमरमर के छोटे-छोटे सादे और रंगीन टुकड़े जड़े हुये हैं। यह देखने में सुन्दर लगता है और सम्पूर्ण स्थान एवं वातावरण जीवित जान पड़ता है। लगता है कि सचमुच वहाँ कोई रहता है, जो संसार के निर्माण एवं उसके संरक्षण का कारण है।

सबसे उल्लेखनीय बात उसके गर्भगृह का आन्तरिक अलंकारण है। इसमें स्वर्ण-पत्रों से निर्मित बेल-बूटे तथा गुलदस्ते आदि अत्यन्त सुन्दर हैं। यह भारतीय मन्दिर निर्माण कला में अकेला एवं अनूठा है। इस पर मुगलकालीन रंगमहल (शीश-महल) का प्रभाव है। जो अमृतसर के बड़े गुरुद्वारे से होकर मन्डी पहुँचा है। जैसे यह बड़ा दरगाह सोने के पत्तों से सजा है और बीच-बीच में शीशे के टुकड़े जड़े गये हैं, उसी प्रकार यह गर्भगृह भी स्वर्णखचित और शीशे से जटित है। इसके कारण यह मन्दिर हिमाचल में ही नहीं, वरन् पूरे भारत में अनुपम है और इस दृष्टि से न तो

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

खजुराहो के मन्दिर और न एलोरा एवं अजन्ता के मन्दिर एवं गुफायें ही इसका सामना कर सकती है। अगर भुवनेश्वर, मदुराई एवं आबू के मन्दिर अपनी विशालता एवं भव्यता के लिए विश्व-प्रसिद्ध हैं, अगर कुतुबमीनार अपनी ऊँचाई और इन्जीनियरिंग के लिए सर्व विदित है, अगर संगमरमरी ताजमहल अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात है, अगर अजन्ता अपनी चित्रवीथियों के लिए बेजोड़ है तो मन्डी का यह मन्दिर अपने आन्तरिक स्वर्णिम अलंकरण के लिए भारत में ही नहीं वरन् विश्व में एक अद्वितीय स्थान रखता है।

धार्मिक दृष्टि से भी यह मन्दिर बड़ा प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में काली का यह स्थान बड़ा पूज्य एवं श्रद्धास्पद है। प्रतिदिन दर्शनार्थियों का आवागमन बना रहता है। वैसे मेलों तथा अन्य तिथि-त्योहारों के दिन यहाँ बड़ी भीड़ रहती है। लोगों में विश्वास है कि यहाँ कोई जो भी मनौती मानता है, उसे देवी अवश्य पूरा करती हैं। अतएव कोई सन्तान-प्राप्ति की इच्छा से आता है तो कोई नई युवती अपने प्रेमी को पाने के लिए महीनों मन्दिर का चक्कर काटती रहती है। कोई धन एवं सम्पत्ति को इच्छा लेकर यहाँ आता है तो कोई अपने शत्रु के विनाश की कामना से मत्था टेकता है, क्योंकि यह देवी केवल अन्नपूर्णा ही नहीं है, वरन् वह शत्रु-संहारिणी भी है।

मूर्तिकला की दृष्टि से भी यह मन्दिर उल्लेखनीय है। प्रमुख अधिष्ठात्री देवी का मुख्य भव्य एवं भयानक है। उसका कृ ण रूप उसे काली बताने में अन्जान के लिए भी आसान है। दोनों तरफ अन्य दो मुख दिखलाई पड़ते हैं, जिससे लगता है कि यह उसके त्रिमुख रूप का प्रदर्शन है, क्योंकि वह जन्मदात्री, संसार-संरक्षिका एवं सर्व-संहारिणी तीनो है और इसी कारण वह अपने भक्तों के लिए सर्वेश्वरी है। गर्भगृह में साथ में अन्य अनेक प्रतिमाएँ भी सुरक्षित हैं। गणेश की दो प्रतिमाएँ हैं, जिसमें एक पुराने पत्थर की बनी है और दूसरी संगमरमर की है। बाइँ तरफ महिषासुरमर्दिनी देवी की खड़ी प्रतिमा रक्खी है, जो सम्भवतः प्राचीन है। प्रमुख देवी के दाइँ तरफ भैरव की एक खड़ी प्रतिमा रक्खी है, जिसमें विभिन्न आयुधों एवं मुद्राओं के साथ बारह हाथ बड़ी सुन्दरता से तराशे गये हैं। इसी के बगल में महिषमर्दिनी देवी की दूसरी संगमरमर की मूर्ति प्रतिष्ठापित है। दाइँ तरफ अर्घों में बने लिंग में तराशी गई पंचवक्याशिव की प्राचीन प्रतिमा विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसके साथ-साथ दीवारों पर रंगीन पत्थरों से निर्मित फूलपत्ते तथा सजे गुलदस्तों के युकेरे गये चित्र अत्यन्त सुहावने लगते हैं। इसे देखकर ताजमहल की दीवारों पर बने तथा रंगीन लघु प्रस्तर-खण्डों से अलंकृत विभिन्न गुलदस्ते याद आते हैं। यहीं राजा बल-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वीर सेन का एक सुन्दर चित्र भी एक शिला-फलक पर बना हुआ है, जिसमें उसे बैठे हुए दिखाया गया है। वह हाथ में एक गुलाब का फूल लिए हैं और बगल में प्रदर्शित खड्ग बड़ी सुन्दर है।

मन्दिरों का प्रदक्षिणा-पथ भी बड़ा अलंकृत, भव्य एवं जीवन युक्त मालूम पड़ता है। यहाँ गर्भगृह की बाहरी दीवार पर दुर्गा के विभिन्न रूपों के रंगों से चित्र बनाये गये हैं, जो अत्यन्त आधुनिक हैं। इनमें दशमुख महाकाली, तारा, षोडशी दुर्गा, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुर भैरवी, धूमावली, बगला, काली, कमला, मांतडी आदि रूपों में दुर्गा के चित्र विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। प्रदक्षिणा-पथ के बाहर की तरफ दीवारों पर भी दशभुजा दुर्गा, सिंहवाहिनी दुर्गा, कालरात्रि, भैरव, शैलपुत्री, ब्रह्म-चारिणी, चन्द्रघण्हा, कूष्माण्डा, स्कन्द माता, करत्यायनी तथा सिद्धदागी आदि देवी के अन्य रूपों के आधुनिक किन्तु सुन्दर चित्र बनाये गये हैं, जिन्हें देखकर शावत धर्म की शिक्षाएँ मिलती हैं। सम्पूर्ण मन्दिर पत्थरों में लिखी दुर्गासप्ताशती मालूम होती है, जिसमें शाक्त धर्म के विभिन्न स्तरों के विकास को पढा जा सकता है।

मध्यकाल में वास्तव में तन्त्र-मन्त्र-पद्धित के विकास के कारण शक्तिपूजा अत्यधिक प्रचलित[१०४] हुई। हरिवंश पुराण में जंगली तथा पर्वतीय जातियों द्वारा देवी की पूजा का अनेक वर्णन मिलता है। मार्कण्डेय पुराण के प्रचार के कारण भी उसकी उपासना में बड़ी वृद्धि हुई। इस ग्रन्थ में शक्ति-दर्शन का निरूपण बड़ी लोकप्रियता के साथ किया गया है। उसमें जहाँ एक तरफ उसकी अनेक विजयों का वर्णन है, वहीं दूसरी तरफ उसकी महत्ता का बड़े लोकप्रिय ढंग से उल्लेख किया गया है। उसके इस प्रकार के पौराणिक प्रचार से भी हिमाचल में उसकी गरिमा और भी बढ़ गई और उसके विविध रूपों का विस्तार हुआ। (देखिये चित्र ८ और ९)

तान्त्रिक धार्मिक धारा के विकास और प्रचार से शक्ति-पूजा और भी बल-वती हुई। इसके अनुसार भक्ति और मुक्ति का समन्वय किया गया। इनका कहना था कि सांसारिक भोग मुक्ति के मार्ग में बाधक न होकर सहायक होते हैं। अतः संसार त्याग का उपदेश न देकर इन लोगों ने प्रवृत्ति-मार्ग का उपदेश दिया और साधना तथा मन्त्रों द्वारा शरीर स्थित कुण्डलिनी-शक्ति को जगाने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार की पूजा के लिए मन्त्र, बीज, यन्त्र मुद्रा, तथा न्यास नामक पाँच विधियाँ बताई गई, जिनको सहायता से साधक प्रार्थना करता है और अपने इष्ट देवता से तादात्म्य स्थापित करता है। कालान्तर में इन्हें जादू और टोनों के साथ एकाकार

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

करके मनुष्यों एवं देवों को वश में करने के लिए भी प्रयत्न किया गया। तान्त्रिक पूजा आसान हो गई, जिससे सर्व साधारण में यह लोकप्रिय हो गई। इसमें स्त्रियाँ तथा शूद्र भी समान रूप से भाग ले सकते थे। शक्ति-उपासना की यह पद्धति धनी और निर्धनों में समान रूप से प्रचलित हुई।

इसी शक्ति-दर्शन के प्रभाव के कारण शक्ति-पूजा के तीन प्रमुख रूप प्रचलित हुए। प्रथम या साधारण रूप, जिसमें देवी की पूजा सामान्य तरीकों से की जाती थी और दूसरा या भयानक रूप, जिसमें उसकी पूजा बलि आदि उपायों से की जाती थी। तीसरा रूप अधिक रहस्यात्मक और दार्शनिक था। इसमें शाक्त मतानुयायी तन्त्र-मन्त्र का सहारा लेकर भक्ति और ज्ञान के माध्यम से रहस्यमय आन्तरिक शक्ति की उपासना करता था। इन रूपों की पूजा मध्यकालीन तन्त्र-ग्रन्थों में विस्तृत रूप से मिलती है। शाक्तों की देवी को आनन्द भैरवी, त्रिपुर सुन्दरी और ललिता आदि नामों से पुकारते थे।

त्रिपुर सुन्दरी देवी की आराधना तीन प्रकार की भक्ति से की जाती थी। एक में महापद्म वन में शिव की गोद में बैठी देवी पर ध्यान किया जाता था, जो सभी का कारण है। दूसरी विधि चक्र-पूजा थी। इसमें रहस्यमय चक्रों की पूजा की जाती थी, जिसे शाक्त धर्म में बाह्ययाग कहते हैं। तीसरी विधि में शाक्त सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता था और शक्ति-तत्व का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। दूसरी विधि को सबसे उपयुक्त माना जाता था, जिसमें स्त्री-योनि प्रकल्पित थी और सम्पूर्ण को श्रीचक्र कहते हैं। कालान्तर में ऐसे शाक्त उपासकों के दो वर्ग बन गये। एक को कौलिक शाक्त कहते थे, जो योनि रूप उपादान की पूजा में विश्वास रखते थे और दूसरे वर्ग को समयित शाक्त कहा जाता था, जो कल्पित योनि की पूजा में विश्वास रखते थे।

कौल सम्प्रदायी शाक्तों के भी दो अंग बन गये थे। एक को पूर्वकौल कहते थे, जो योनि के चित्र-रूप की पूजा करते थे और दूसरे को उत्तर कौल कहते थे, जो अति सुन्दर सजीव योनि की पूजा में विश्वास रखते थे। कौल लोग इस देवी को सुरा, मांस, मधु, मत्स्य तथा अन्य ऐसी चीजें समर्पित करके उसकी पूजा करते थे और स्वयं उनका प्रयोग करते थे। सैमयिकशांक्तो में ये सब वर्जित[१०४] था। (देखिये चित्र ६)

जाहिर है कि कौल शाक्त सम्प्रदाय समाज के सभी वर्गों में प्रचलित न हो सका। मैदानी भागों में वह शीघ्र ही इन्हीं प्रवृतियों के कारण अग्रिम और अलोकप्रिय हो चला। उनकी गुह्य विधायें न तो सर्वसाधारण की समझ में आईं और न

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उनका समाज में प्रचार ही हुआ। बल्कि उल्टे सामाजिक कारणों से ऐसी शाक्त पद्धतियों का विरोध हुआ और परिणामतः कौल शाक्तों को रहस्यपूर्ण स्थानों, शाक्त मंदिरों, जंगलों और पर्वतीय घाटियों का शरण लेना पड़ा, जहाँ वे निश्चिन्त होकर अपनी शाक्त साधनायें चला सके। सम्भवतः ऐसी ही धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में मध्य काल में शाक्त धर्म हिमाचल की इन पहाड़ियों में अधिक विकसित हुआ। वह काँगड़ा-मंडी से आगे बढ़कर व्यास और सतलज नदियों की घाटियों में अधिक लोकप्रिय हो गया। (देखिये चित्र १० और ११)

कुल्लू क्षेत्र में स्थित शाक्त मंदिरों में कोई भी अत्यन्त प्राचीन नहीं मालूम पड़ता है। वैसे यह हो सकता है कि इन्हीं स्थानों पर पहले शक्ति मंदिर स्थापित किये गये हों। हरमन गोएट्ज का मत है कि संध्यादेवी का मंदिर आयुधवंशीय कला-शैली में बना[१०६] है। इस क्षेत्र में कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों का सीधा शासन था; अतएव उत्तर भारतीय वास्तुकला का प्रभाव यहाँ तक फैलना अत्यन्त स्वाभाविक था। प्रतिहार शासकों में अनेक शक्ति के उपासक थे, अतएव उनके काल में इस क्षेत्र में शाक्त धर्म का विस्तार हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस काल में उत्तर भारतीय संस्कृति यमुना-घाटी से होकर पब्बर नदी की घाटी में आई और वहाँ से आगे बढ़कर उसने सतलज घाटी में पदार्पण किया। हाटकोटी तथा निर्मण्ड में धार्मिक तथा अन्य सांस्कृतिक पक्षों का विकास इसीलिए हुआ। यह तथ्य न केवल वहाँ के मंदिरों के देखने से सही मालूम होता है, वरन् वहाँ से उपलब्ध तत्कालीन मूर्तियाँ भी इसी निर्णय पर पहुँचने के लिए विद्वानों को बाध्य करती हैं। (देखिये चित्र ८) हाटकोटी में पूजित दुर्गा की एक कांस्य निर्मित अत्यन्त विशाल प्रतिमा इस दृष्टि से वहाँ उल्लेखनीय है। निर्मण्ड वैसे एक शैव पीठ था, जैसा कि हमने पहले ही लिखा है। लेकिन यहाँ शक्ति की भी पूजा की जाती थी। यहाँ उपलब्ध चण्डी देवी का मंदिर संभवतः कभी पूर्व मध्य काल में बना मालूम पड़ता[१०७] है। इसी प्रकार बजौरा में विश्वेश्वर शिव के मंदिर में प्राप्त महिषमर्दिनी दुर्गा की मूर्ति प्रतिहारों के युग में ही बनी मालूम पड़ती है। ऐसी सम्भावना है कि वहाँ शिव मंदिर के साथ कोई शक्ति-मंदिर भी था, जिसके अवशेष अब उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार जगत्सुख में भी प्राचीनकाल में शायद एक देवी मंदिर निर्मित था। इसके कुछ अवशेष संध्या देवी के मंदिर में पाये जाते हैं, जिसका निर्माण पन्द्रहवीं शदी में करवाया गया[१०८] था।

कुल्लू के अन्य मंदिर मध्यकालीन हैं। इनमें मनाली में स्थित हिडिम्बा देवी का मंदिर, (देखिये चित्र १६) कोठी में प्राप्त चण्डिका देवी का मंदिर तथा नागर में

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

निर्मित त्रिपुर सुन्दरी का लघु मंदिर और निचार का ऊषा देवी का मंदिर शाक्त धर्म के विकास की दृष्टि से गिनाये जा सकते हैं। ये सभी मंदिर विशिष्ट प्रकार की पर्वतीय पैगोडा शैली में बनाये गये हैं, जो वस्तुकला के विकास की दृष्टि से सम्पूर्ण भारतीय कला में अपना विशिष्ट स्थान रखते[१०९] हैं। (देखिये चित्र १७)

सिरमौर-महासू क्षेत्र में भी शक्ति की पूजा प्रचलित थी। हमने ऊपर लिखा है कि यह क्षेत्र उत्तर भारतीय धार्मिक धाराओं से अधिक प्रभावित रहा है और सम्पूर्ण क्षेत्र सदैव वहाँ के संप्रभु राजाओं के अधीन रहा है। अतः इस क्षेत्र में मैदानी संस्कृति का प्रभाव प्राचीन काल में काफी हद तक था, जैसा कि यहाँ के प्राचीन अवशेषों से ज्ञात होता है।

पब्बर नदी के तट पर स्थित हाटकोटी इस क्षेत्र की राजनैतिक और सांस्कृतिक नगरी थी, जिसका विकास सम्भवतः पूर्व मध्यकाल में हो चुका[११०] था। यहाँ से प्राप्त महिषमर्दिनी दुर्गा की विशाल मूर्तियाँ इसी काल में बनी मालूम होती[१११] हैं। हाटकोटी से प्राप्त दुर्गा की एक कांस्य प्रतिमा पर उपलब्ध अभिलेख भी इसी ओर संकेत करता है। स्वच्छंद भैरवी की ऐसी ही एक कांस्य प्रतिमा इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में सुरक्षित है, जो संभवतः इसी क्षेत्र (हाटकोटी) से पाई गई थी। हाटकोटी तथा आस-पास के क्षेत्रों में अनेक देवी मंदिर आज भी पाये जाते हैं, जिनका निर्माण मध्यकाल में हुई जान पड़ता है। यह क्षेत्र इस समय जुब्बल के राजाओं के अधीन था, जिसमें से अनेक शक्ति के उपासक थे। सिरमौर नरेश वीर प्रकाश (१३८७ ई०) ने भी हाटकोटी में एक दुर्गा मंदिर का निर्माण करवाया था।

रामपुर बशहर क्षेत्र में स्थित साराहन में भी भीमा काली का एक बड़ा प्रसिद्ध मंदिर है। अन्य देवी-मंदिरों में सिरमौर में स्थित रेणुका देवी का मंदिर उल्लेखनीय है, जो मध्यकाल में कभी बनवाया गया जान पड़ता है। इस क्षेत्र में स्थित यह एक महत्वपूर्ण शाक्त केन्द्र है, जहाँ आज भी वर्ष में कई बार मेले लगते हैं और वहाँ की झील में स्नान करने के लिए लोग दूर-दूर से आते हैं।

वैष्णव धर्म—

हिमाचल में वैष्णव सम्प्रदाय प्राचीन काल में उतना लोकप्रिय न हो सका जितना कि शैव और शाक्त सम्प्रदाय। वैसे विष्णु की मूर्तियाँ यहाँ गुप्त काल से ही बनाई जाती थीं और अन्य देवी-देवताओं के साथ उन्हें पूजा जाता था। इस सम्प्रदाय

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

का प्रधान देवता विष्णु था और उसमें आस्था रखने वाले भक्तों के लिए वही जगत् का स्रष्टा, संरक्षक तथा विनाशक था। इसमें विष्णु या उसके अवतारों की पूजा की जाती थी, उनकी मूर्तियाँ बनाई जाती थीं और उनके लिए मंदिरों का निर्माण किया जाता[११२] था।

भारतवर्ष के अन्य भागों में वैष्णव धर्म का प्रचार ईसवी सन् के कुछ पहले ही हो गया था। विष्णु एक वैदिक देवता था। कृष्ण वासुदेव ने छठीं शताब्दी के आस-पास या उससे कुछ पूर्व एक नये धर्म का प्रचार किया था, जो वैदिक धारा में एक सुधारवादी आन्दोलन था। पाँचवीं शदी ई० पू० के बाद उसका बड़े जोरों से प्रचार हुआ। यह पहले उत्तर भारत में मथुरा और उसके आस-पास लोकप्रिय हुआ और फिर द्वितीय तथा प्रथम शताब्दी ई० पू० तक मध्य प्रदेश और राजस्थान तक प्रचलित हो गया। इसी समय इस धर्म-धारा में प्राचीन देवता नारायण को स्वीकार कर लिया गया। फिर कृष्ण-वासुदेव-नारायण सम्प्रदाय को और भी प्राचीन बताने के लिए उसमें वैदिक देवता विष्णु को समाहित किया गया, जो मूलतः एक सौर मंडल का देवता था। इस तरह वह वैष्णव धर्म बन गया। इसमें तीसरी-दूसरी ई० पू० में कभी अवतारवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया, जिसकी पराकाष्ठा गीता में दिखाई गई और कहा गया कि जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का उत्पादन होता है, तब-तब भगवान विष्णु धरती पर अवतार लेकर धर्म और धरती की रक्षा करते हैं। इस तरह उस धर्म-सम्प्रदाय में अनेक अवतारों की कल्पना करके अन्य धार्मिक धाराओं तथा उनके प्रधान देवताओं[११३] को इसमें स्वीकार किया गया। लोकधर्म के भी अनेक पक्ष इसमें स्वीकृत किये गये। इससे देश के विभिन्न भागों में उसके प्रचार एवं प्रसार में बड़ी सहायता मिली। गुप्त काल में प्राचीन देवी श्रीलक्ष्मी को भी इस धारा में स्वीकार किया गया। उसे विष्णु की पत्नी के रूप में वर्णित करके इस सम्प्रदाय के विस्तार में बड़ी मदद मिली। इस तरह देखते-देखते वैष्णव धर्म भारत में ही नहीं, वरन् दक्षिण-पूर्व एशिया में भी फैल[११४] गया। उसके प्रसार में पहले रामायण और महाभारत—जैसे महान् ग्रंथों की रचनाओं से सहायता मिली और बाद में विभिन्न पुराणों तथा अन्य काव्य ग्रंथों के प्रणयन से उसे और भी लोकप्रिय बनाया गया। इसमें भक्ति को मोक्ष का साधन बताकर ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना से उसकी पूजा करना ही धर्म का बाह्य कर्म बन गया। इस पौराणिक मान्यता से इसके प्रचार में अत्यधिक मदद मिली। ऐसे सरल साधन द्वारा मोक्ष का द्वार सभी जातियों के लोगों के लिए खोलकर पौराणिक पंडितों ने इस सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने में बड़ी मदद[११५] की।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हिमाचल प्रदेश में यह धर्म-सम्प्रदाय थोड़ा देर में आया। जनश्रुति है कि विष्णु-पूजा पहले मायापुरी (हरिद्वार) से कुल्लू आई और वहाँ से उसका प्रचार हिमाचल के अन्य भागों में हुआ[११६]। सत्य जो भी हो, यहाँ इतना कहना तथ्यपूर्ण है कि विष्णु की प्रतिमा हिमाचल के काँगड़ा क्षेत्र में गुप्त काल में लोकप्रिय थी। ऐसी एक प्रतिमा वहाँ स्थित फतेहपुर से प्राप्त हुई है, जिस पर एक अभिलेख भी लिखा है। इसके अनुसार यह प्रतिमा छठीं शताब्दी ई० में निर्मित की गई थी[११७]।

हिमाचल के इस क्षेत्र में बैकुण्ठ-रूप विष्णु की पूजा अत्यधिक लोकप्रिय[११८] थी। कहा जाता है कि कीर देश के एक राजा ने प्रतिहार-नरेश को बैकुण्ठ विष्णु की एक सुन्दर प्रतिमा भेंट में दी थी। विष्णु की ऐसी प्रतिमाओं में चार मुख दिखाये जाते हैं, जो उसके चार व्यूह अर्थात् वासुदेव, प्रद्युम्न, संकर्षण और अनिरुद्ध के प्रतीक होते हैं। ऐसी प्रतिमायें गुप्तकाल से आगे बनने लगीं थीं। हिमाचल के कई स्थानों से ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं। ऐसी ही एक मूर्ति दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है, जो यहीं कहीं से प्राप्त हुई है।

इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म का प्रधान केन्द्र मसरूर[११९] था, जो कांगड़ा और बैजनाथ के बीच स्थित है। यहाँ चट्टान में काटा गया एक विशाल मंदिर विद्यमान है, जिसे ठाकुर द्वारा कहा जाता है। (देखिये चित्र १८) यह पंचायतन प्रकार में बना इस क्षेत्र का एक अद्भुत वैष्णव पीठ है; क्योंकि उत्तर भारत में चट्टान में कटे मंदिर प्रायः नहीं मिलते हैं।

अन्य प्राचीन वैष्णव मूर्तियों में हम निर्मण्ड से प्राप्त कुछ विष्णु प्रतिमाओं का उल्लेख कर सकते हैं। इसमें से एक विशाल प्रस्तर-प्रतिमा इस समय राज्य संग्रहालय, शिमला में सुरक्षित है, जो निर्मण्ड से लाई गई[१२०] है। यह देवता का चतुर्भुजी रूप प्रदर्शित करती है, जिसके हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म विशेष रूप से सुशोभित है। गले में सुशोभित माला तथा सिर के पीछे बनी प्रभावली विशेष रूप से दर्शनीय है। यह प्रतिमा किसी प्राचीन विष्णु मंदिर की ओर संकेत करती है।

यहाँ बजौरा के विश्वेश्वर महादेव के मंदिर में मिलने वाली विष्णु-प्रतिमा का उल्लेख करना आवश्यक है, क्योंकि यह विष्णु की एक अनूठी प्रतिमाओं में से एक[१२१] है। यह खड़ी मुद्रा में पत्थर में तराशी गई है, जिसके दोनों तरफ दो द्वारपाल खड़े हैं। यह चतुर्भुज विष्णु का रूप प्रदर्शित करती है। दाहिने दो हाथों में चक्र और

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कमल दिखाये गये हैं और बायें दो हाथों में गदा और शंख सुशोभित हैं। सिर के पीछे बना प्रभामण्डल मूर्ति की शोभा बढ़ा रहा है, जिसमें दो मूर्तियाँ मालों के साथ दर्शाई गई हैं। सिर पर बना ऊंचा मुकुट और कन्धों पर झूलते घुंघराले बाल बड़ी बारीकी और सुन्दरता से तराशे गये हैं। शरीर सभी प्रकार के आभूषणों और यज्ञोपवीत से सुशोभित है। एक लम्बी माला गले में पड़ी है, जो घुटने तक झूल रही है। दोनों द्वार-पाल हाथों में चमर लिए खड़े दिखाये गये हैं।

विष्णु की इस प्रतिमा से कुल्लू में प्रचलित विष्णु-पूजा की ओर संकेत मिलता है। नवीं शदी में बजौरा में वह गणेश, दुर्गा, सूर्य और शिव के साथ पूजा जाता था, जब कि वहाँ का प्रधान देवता लिंगरूप धारी शिव था, जिसे वह मंदिर समर्पित है। बाद में, जैसा कि हम देखेंगे, कुल्लू का प्रधान देवता राम रूप में विष्णु बना और मध्यकाल में उसे कुल्लू का संरक्षक देवता स्वीकार किया गया। इस सिलसिले में जगतसिंह के धार्मिक योगदान का उल्लेख किया जा सकता है, क्योंकि उन्हीं के काल में (१६३७ ई० १६७२ ई०) रघुनाथ की पूजा अवध से कुल्लू लाई गई बताई[१२२] जाती है। उसने सुल्तानपुर में उसके लिए एक मंदिर का निर्माण करवाया। रघुनाथ की पूजा वहीं अब भी होती हैं। वह कुल्लू का संरक्षक देवता माना जाता है। प्रतिवर्ष दशहरे के अवसर पर उसका रथ निकाला जाता है और उस समय सहस्रों लोग उसका दर्शन करने आते हैं। कुल्लू के अन्य वैष्णव मंदिरों में थावा में स्थित मुरलीधर मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है, जो आधुनिक थावा नामक ग्राम से कुछ ऊपर पहाड़ पर निर्मित है। कुल्लू के अन्य वैष्णव मंदिरों में धार स्थित त्रियुगी नारायण का मंदिर उल्लेखनीय है, जो बजौरा के सामने ब्यास नदी के उस पार स्थित है। निर्मण्ड में स्थित परशुराम का मंदिर भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

हिमाचल के चंबा-भरमौर क्षेत्र में भी विष्णु-पूजा प्रचलित थी, जहाँ शैव और शाक्त धर्म अधिक लोकप्रिय थे, जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं। कुछ विष्णु-प्रतिमायें तो पहले ही इस क्षेत्र में पूजी जाती थीं, लेकिन उसके लिए मंदिर का निर्माण दसवीं शताब्दी में किया गया[१२३]। युगाकर वर्मा ने चंबा में लक्ष्मी नारायण के मंदिर का निर्माण करवाया और उसमें पीतल की सुन्दर प्रतिमा प्रतिष्ठापित की। हरमन गोएट्ज का कहना है कि इस काल में वैष्णव धर्म चंबा का सरकारी धर्म बन गया[१२४] था। कुछ भी हो दसवीं शदी में यहाँ इस धर्म सम्प्रदाय का बड़ा प्रचार हुआ, जिसके परिणामस्वरूप विष्णु या उसके अवतारों की प्रतिमायें बनवाई गईं। यह प्रतिहार-साम्राज्य के यहाँ तक विस्तार का परिणाम माना जाता है, क्योंकि प्रतिहार नरेश

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और विशेषकर मिहिर भोज और उसके उत्तराधिकारी विष्णु के उपासक थे। अतः उनके काल में वैष्णव धर्म को अन्य धर्मों के साथ सम्पूर्ण उत्तर भारत में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। यहाँ सबसे प्रसिद्ध वैष्णव मंदिरों में चंबा का हरिराय मंदिर है। इसमें प्रतिष्ठित कांस्य की अद्वितीय प्रतिमा प्राचीन काल की अमूल्य कृति है। धोती तथा ऊँचा मुकुट धारण किये हुए देव अत्यन्त सजीव लगते हैं। (देखिये चित्र ५)

नारायण की ऐसी ही एक प्रस्तर प्रतिमा बेरा परगना में स्थित देवी कोठी नामक स्थान से मिली है, जिसमें त्रिमुख विष्णु का रूप दिखाया गया है। बराह और नरसिंह दो अन्य अवतारों को इस प्रतिमा में बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शित किया गया है। मूर्तिकला के विकास के आधार पर इसे बारहवीं शताब्दी की कृति माना जाता है।

चंबा में विष्णु के अवतारों की भी पूजा की जाती थी। इस दृष्टि से चंबा में दसवीं शदी में निर्मित नरसिंह मंदिर का उल्लेख करना आवश्यक[१२४] है। यहाँ के चौरासी क्षेत्र में दक्षिणी तरफ मणि महेश नामक शैव मंदिर के सामने पत्थर से बना यह मंदिर इस क्षेत्र का एक प्रधान पूजा-केन्द्र है। इसमें नरसिंह-रूप विष्णु की चतुर्भुज प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। इस मंदिर को चंबा नरेश युगाकर वर्मा की पत्नी त्रिभुवन नरेश ने बनवाया था, जैसा कि एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है। यह देखने में मणि महेश मंदिर से छोटा है, लेकिन सौन्दर्य में उससे कम नहीं है।

चंबा-भरमौर क्षेत्र से मिलने वाले अनेक प्रस्तर-खण्डों पर भी लक्ष्मी-नारायण, विष्णु तथा उसके अन्य अवतारों की प्रतिमाएँ मिलती हैं, जिससे इस क्षेत्र में उसकी लोकप्रियता द्योतित होती है। मध्यकाल में यहाँ इसकी पूजा में और भी वृद्धि हुई और उसके परिणामस्वरूप अन्य मूर्तियाँ भी तराशी गईं। वैसे भरमौर में राम, कृष्ण या लक्ष्मीनारायण को समर्पित कोई मंदिर नहीं विद्यमान है, परन्तु लोग वहाँ रामनवमी और जन्माष्टमी के त्योहार अब भी मनाते हैं।

अन्य मध्यकालीन वैष्णव मंदिरों में चंबा से तीन मील दूर उसके निचले भाग में स्थित उदयपुर में निर्मित एक वैष्णव मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है, जिसे १७२० ई० में राजा उदयसिंह ने बनवाया[१२६] था। मध्यकाल में यहाँ कृष्ण और उसके विविध रूपों की लोकप्रियता में वृद्धि हुई। इस काल में बने मंदिरों में वंशी गोपाल मंदिर तथा लक्ष्मीदामोदर मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मंडी-विलासपुर क्षेत्र में भी वैष्णव धर्म प्रचलित था, लेकिन यह मूलतः शिव

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और शक्ति-भूमि था। करसोग तहसील में स्थित एक ग्राम से गरुड़ पर आसीन विष्णु और लक्ष्मी की एक मूर्ति मिली है। इस दृष्टि से विलासपुर का रंगनाथ मंदिर भी उल्लेखनीय है, जो पूर्व मध्यकाल में बनवाया गया[१२७] था, (देखिये चित्र ४) मण्डी क्षेत्र में बने वैष्णव मंदिरों में हुरन्ग में निर्मित नारायण देव का मंदिर प्रमुख है, जिसे मण्डी-नरेश साहिबसेन ने सोलहवीं शताब्दी में बनवाया था। १९ वीं शदी में सुकेत-क्षेत्र में बनवाये गये नरसिंह मंदिर का भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है।

सिरमौर क्षेत्र के वैष्णव मन्दिरों में मलीदेउल नामक लक्ष्मी-नारायण मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसे भागीरथी के किनारे सिरमौर-नरेश मल्ही प्रकाश ने तेरहवीं शदी के प्रारम्भ में अपनी राजधानी राजन में बनवाया था। सिरमौर में अन्य अनेक वैष्णव मन्दिर पाये जाते हैं, जो मध्यकाल में बनवाये गये थे। वास्तव में, भारत में यह वह काल था, जब वैष्णव धर्म सम्पूर्ण देश में अत्यधिक लोकप्रिय हो चला था। तत्कालीन भक्ति-आन्दोलन से माधवाचार्य, रामानुजाचार्य, रामानन्द, कबीर-दास, तुलसीदास, सूरदास, सन्त तुकाराम, मीराबाई, महाप्रभु चैतन्य तथा दक्षिण भारत के अन्य अनेक सन्तों और महात्माओं की भक्ति के रस से आप्लावित वीणा के मधुर संगीत से सम्पूर्ण वातावरण गुंजरित हो गया था। इसके परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में विष्णु तथा उसके विभिन्न अवतारों के, जिसमें राम और कृष्ण प्रधान थे, न केवल मूर्तियाँ ही बनवाई गईं वरन् उनके लिए मंदिरों का निर्माण हुआ। भक्ति-रस की तरंगिणी ने संस्कृति के अन्य पक्षों को भी प्रोत्साहित किया, जिसके परिणाम-स्वरूप नृत्य, संगीत, चित्रकला, काव्य तथा अन्य ललित कलाओं का अत्यधिक विकास हुआ। इसमें राम से अधिक कृष्ण के ललित व्यक्तित्व ने लोगों को अधिक प्रभावित किया। ललित कलाओं में राधा के साथ उनके प्रेम सम्बन्ध को अधिक स्थान दिया गया, क्योंकि तत्कालीन सामन्ती समाज को उससे अधिक राहत मिली। ध्यातव्य है कि यही वह काल है, जब हिमाचल प्रदेश में चित्रकला की अनेक शैलियाँ जन्मीं, जो बाद में अपनी पराकाष्ठा तक विकसित हुई। (देखिए चित्र २०)

सूर्य पूजा—

हिमालय में उपर्युक्त धर्म-सम्प्रदायों के साथ-साथ सूर्य की भी उपासना की जाती थी। हम पहले ही कह चुके हैं कि यह क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन काल से वैदिक धर्म के प्रभाव में था, जिसमें सूर्य की भी स्तुति की जाती थी। बाद में जब यहाँ पौराणिक हिन्दू धर्म का विकास होना प्रारम्भ हुआ तो उनमें सूर्य की भी प्रतिमायें बनाई जाने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लगी। उसके लिए फिर मन्दिरों का भी निर्माण किया गया, उसको उपासना में व्रत रखे गये और उससे सम्बन्धित मेले भी आयोजित किये गये।

कुषाण-काल में सम्भवतः यहाँ और सम्प्रदाय का जन्म हुआ, क्योंकि इस समय भारत के अन्य भागों में भी इसकी लोकप्रियता [१२८] बढ़ी। कुछ विद्वानों का यह मत है कि भारत में सूर्य-पूजा कहीं बाहर से आई और उसमें कुषाणों का बड़ा योगदान है। इसके पक्ष में सूर्य-प्रतिमाओं में मिलने वाली वेशभूषा को विशेष प्रमाण माना जाता है, क्योंकि वह कुषाण सम्राटों की वेशभूषा से मिलती-जुलती है। विशेष करके पैरों में लम्बा जूता जो अधिकांश उत्तर भारतीय सूर्य-मूर्तियों में मिलता है, इसके लिए विशेष तर्क माना जाता है। इसी प्रकार उसकी कमर में अव्यङ्ग (कटि-मोवला) का दिखाना भी विदेशी तत्व माना जाता है। यहाँ अधिक विवाद में न बढ़ कर इतना ही कहना पर्याप्त है कि समस्या का यह एक पक्ष है और सूर्य-मूर्तियों में दोनों हाथों में कमल का प्रदर्शन और रथ सहित घोड़ों की सवारी उसकी देशी उत्पत्ति की कहानी बताती है। वैसे ऐसी भी अनेक सूर्य-मूर्तियाँ मिली हैं जिनके पैर में जूता नहीं दिखाया गया है। ऐसी मूर्तियों में शुङ्ग का तीन प्रतिमायें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अतएव विदेशी प्रभाव से भी हीन सूर्य-पूजा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी। सूर्य देवता के लिए बने वैदिक मन्त्रों से भी यही ज्ञात होता है जिसमें उसके अनेक रूपों की स्तुति की गई है।

भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में भी सूर्य-मूर्तियाँ कुछ बाद में ही मिलती हैं। वैसे यहाँ तीसरी शदी ई० तक सूर्योपासना का पौराणिक रूप लोकप्रिय मालूम होता है। लाहौल में स्थित चन्द्र-भागा नदी के तट पर स्थित मर्कुला देवी के मन्दिर में प्राप्त सूर्य-प्रतिमा को गोएट्ज महोदय इस क्षेत्र की सबसे प्राचीन मूर्ति मानते [१२९] हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत में सूर्य-पूजा का प्रचार करने वाले कृष्ण के पुत्र साम्ब को पहली सूर्य-प्रतिमा चन्द्रभागा नदी में मिली थी, ऐसा अनेक पुराणों में वर्णित है। इस आख्यान से भी इस क्षेत्र में प्रचलित प्राचीन सूर्य-पूजा पर प्रकाश पड़ता [१३०] है। चंबा-भरमौर क्षेत्र में स्थित गूं नामक स्थान से प्राप्त एक सूर्य-मूर्ति भी बड़ी प्राचीन मानी [१३१] जाती है।

यहाँ गुप्त काल या उसके कुछ बाद का समय सूर्य-पूजा के अधिक लोकप्रिय होने का समय मालूम होता है, क्योंकि इस काल में बने मन्दिरों में कहीं-कहीं सूर्य-प्रतिमाएँ मिलती हैं। उदाहरणार्थ, बैजनाथ मन्दिर में प्राप्त सूर्य-प्रतिमा सम्भवतः इसी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

काल की मालूम होती है। वहाँ के एक अन्य प्राचीन मन्दिर में एक सूर्य-प्रतिमा कनिंघम महोदय को मिली थी। बजौरा से प्राप्त सूर्य-प्रतिमा को कुछ विद्वान् गुप्तकाल में ही बनी बताते[१३२] हैं।

इस समय यहाँ कुछ सूर्य मन्दिर भी बनाये गये थे। नीरत का सूर्य-मन्दिर जो सतलज घाटी में अब भी स्थित है, इस सम्प्रदाय का विशेष लोकप्रिय केन्द्र मालूम होता[१३३] है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ किसी मूर्ति की प्रस्थापना नहीं की गई थी और उसके स्थान पर एक सूर्य-चक्र को पूजा की जाती थी। यह भारतीय सूर्य-पूजा का प्राचीन रुपया, जिसका थोड़ा सा संकेत साँब पुराण में किया गया है। यह मन्दिर उत्तर भारतीय मन्दिर-शैली में निर्मित है, जिसमें सुन्दर ऊंचा शिखर बनाया जाता था। इस क्षेत्र में ऐसे मन्दिर जैसा कि हमने पहले ही लिखा है, विशेष रूप से गुप्तोत्तर काल में बनवाये गये। इस कार्य में प्रतिहारों ने बड़ा योगदान दिया था, अतएव कुछ विद्वान् ऐसे मन्दिरों को प्रतिहार-शैली में बना बताते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रतिहार राजवंश में, जिनका साम्राज्य यहाँ तक विस्तृत था, कई सम्राट सूर्योपासक थे। इन्होंने इस धर्म-सम्प्रदाय को राज संरक्षण प्रदान किया था। इनके काल में पड़ोस में स्थित पृथूदक (पहेवा, कुरुक्षेत्र जिला) में भी एक सुन्दर एवं विशाल सूर्य मन्दिर विद्यमान[१३४] था, जिसका द्वार -बिम्ब वहाँ आज भी देखा जा सकता है। गढ़वाल और कुमायूँ की पहाड़ियों में सूर्य-पूजा प्रचलित थी। जगेश्वर, खेतीखान तथा कटरमल के सुन्दर एवं विशाल सूर्य-मन्दिर, जो अब भी देखे जा सकते हैं, इसी काल में बनवाये गये थे। कश्मीर की सुनहरी घाटी सूर्य-पूजा के लिए प्रसिद्ध थी। वहाँ का विश्व-विद्युत, मार्तण्ड सूर्य-मन्दिर इस क्षेत्र के प्राचीन लोगों को अवश्य ज्ञात रहा होगा, क्योंकि वहाँ से इस क्षेत्र के लोगों का संपर्क निरन्तर बना रहता था। राजतरंगिणी में कश्मीर में पूजित कई सूर्य-प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है।

हिमाचल के किसी अन्य भाग में स्थित किसी भी प्राचीन सूर्य-मन्दिर का ज्ञान हमें नहीं है। लेकिन उसकी प्रतिमायें चम्बा, मण्डी, कुल्लू तथा हिमाचल के कुछ अन्य स्थानों से भी मिली[१३५] है। इससे यह सिद्ध होता है कि अन्य देवी-देवताओं के साथ उसकी पूजा यहाँ प्रचलित थी जो किसी न किसी हद तक मध्यकाल में भी जीवित रही। मण्डी आदि के देव-मन्दिरों में सप्ताश्व-रथ पर आसीन सूर्य-नारायण की प्रतिमायें आज भी मिलती हैं। इससे उसकी प्राचीन लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

गणपति-पूजा--

हिमालय प्रदेश में गणपति की भी पूजा की जाती थी। यह पहले शैव परिवार का एक प्रधान देवता माना जाता था। हिन्दू धर्म में शिव के अनेक गणों की कल्पना की गई थी, जिसका प्रधान गणपति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हिन्दू धर्म में यदि अन्य देवी-देवता किसी कार्य में सफलता लाने के लिए पूजे जाते थे, तो गणपति को सफलता के मार्ग में आने वाले विघ्नों के विनाश के लिए पूजा जाता था। प्रारम्भ में सम्भवतः उसके दुष्ट स्वभाव के कारण लोगों की आस्था उसके प्रति बढ़ी, क्योंकि धार्मिक भावना की उत्पत्ति में किसी शक्ति के प्रति भय के भाव ने भी योगदान दिया था। धीरे-धीरे समय के साथ इस देवता को स्वतन्त्र स्थान दे दिया गया और वह केवल विघ्न-विनाशक ही न रहकर सृष्टि का उत्पादक तथा संरक्षक भी मान लिया गया। इसके परिणाम-स्वरूप गुप्तकाल में तथा उसके बाद एक नये गाणपत्य सम्प्रदाय का जन्म और विकास[१३६] हुआ। फिर तो उसकी मूर्तियाँ बनाई गईं और उसके लिए मन्दिरों का निर्माण हुआ।

गणेश की मूर्तियों के निर्माण में शैव धर्म की परम्पराओं ने विशेष योगनाद दिया। हिन्दू धर्म में वह शिव और पार्वती का पुत्र माना जाता है, अतः कभी-कभी उसे पार्वती की गोद में बैठा दिखाया जाता है। उसकी मूर्तियों में हाथी की मुखाकृति बनी होती हैं, जिसके सही कारण का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। ऐसा लगता है कि सेना में कठिनाइयों तथा रुकावटों को दूर करने के लिए हाथियों का प्राचीन प्रयोग ऐसी मूर्ति-विशेषता की उत्पत्ति के लिए जिम्मेदार है। और यह भी सम्भव है कि गणेश की पूजा उस क्षेत्र में पहले प्रारम्भ हुई, जहाँ हाथी अधिक पाये जाते थे और वहाँ के लोगों की जीविका के प्रधान साधन में हाथियों का प्रयोग किया जाता था। कुछ भी हो, इसमें किसी आदि जाति का ही योगदान मानना चाहिए, जिसके धार्मिक विश्वासों ने गणपति-पूजा को जन्म दिया।

हिमाचल प्रदेश में गणपति की मूर्तियाँ प्रायः हर क्षेत्र से मिली हैं क्योंकि स्मार्त हिन्दू धर्म में सभी देवी-देवताओं को एक साथ पूजा जाता था। (देखिये चित्र १२) हो सकता है कि किसी देव-विशेष में किसी वर्ग-विरोध की विशेष और सर्वोपरि आस्था थी, लेकिन पौराणिक हिन्दू धर्म में वह साथ में अन्य देवी-देवताओं को भी पूजता था। इसी के परिणामस्वरूप सभी मन्दिरों में गणेश की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं और गर्भगृह के ललाट बिम्ब पर उसकी मूर्ति का कहीं न कहीं होना एक नियम-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सा हो गया था। इसी कारण नवग्रहों के साथ भी उसकी मूर्ति का निर्माण किया जाता था जैसा कि हिमाचल के मन्दिरों में बनी मूर्तियों से मालूम होता है। यहाँ से प्राप्त गणेश की मूर्तियों में बजौरा के गणेश का उल्लेख किया जाना चाहिए, जो वहाँ के विश्वेश्वर महादेव के मन्दिर में बने एक तत्व में सुरक्षित[१३७] है। इसे गर्भ-गृह के दक्षिणी दीवार में बाहर की तरफ कमलासन पर उकेरा गया है। उसके दोनों तरफ दो हाथी बने हैं। देवता की चार भुजाओं में कुठार, सूँड का एक भाग तथा एक में पात्र प्रदर्शित है, जिसमें वह मोदक लिए हुए हैं। इसमें घुटने तक लटकती हुई माला और सर्प रूप यज्ञोपवीत बड़ी सुन्दरता के साथ प्रदर्शित हैं। उसके सिंहासन में दो सिंह दिखाये गये हैं और नीचे की तरफ उसका एक गण उकेरा गया है। उसकी ऐसी ही मूर्ति चम्बा के मन्दिर में भी मिलती है। चम्बा में गणपति का एक मन्दिर भी पाया जाता[१३८] है। यह मणिमहेश मन्दिर के ठीक सामने मेरुवर्मा द्वारा बनवाया गया था जिसमें अष्टधातु निर्मित गणेश की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई थी। यह तीन फीट ऊँची प्रतिमा चौदह इंच ऊँची वेदिका पर सुशोभित है। देवता की चतुर्भुजी मूर्ति में थोड़ा आगे निकला हुआ पेट विशेष रूप से दर्शनीय है। इसमें सर्वरूप यज्ञो-पवीत पहनाया गया है। इसकी वेदिका पर लिखे अभिलेख से मालूम होता है कि प्रतिमा तथा मन्दिर दोनों नवीं शदी ई० में बनवाये गये थे। चम्बा के मन्दिरों में आज भी इसकी विशेष प्रतिष्ठा[१३९] है। देवता की पूजा दिन में दो बार आज भी की जाती है। ऐसे ही एक गणपति मन्दिर का निर्माण मंडो-नरेश सिद्धसेन ने करवाया था, जिसे हिमाचल में बने मध्यकालीन गणपति-मन्दिर में प्रमुख स्थान दिया जाता है।

हिमाचल के अन्य देवी-देवता—

हिमाचल प्रदेश में इन प्रमुख हिन्दू देवी-देवताओं के अतिरिक्त अन्य अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। इनमें नाम-पूजा तथा यक्ष-पूजा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार की आत्माओं के दैवीकृत रूप भी यहाँ पूजे जाते थे। इनमें से अनेक तो क्षेत्रीय देवता थे, जिनकी पूजा किसी न किसी रूप में आज भी की जाती है। कुछ देवियाँ महाभारत तथा पुराणों में वर्णित चरित्रों के दैवीकृत रूप हैं, जिनकी यहाँ पूजा की जाती थी। उदाहरणार्थ, मनाली में उपलब्ध हिडिम्बा देवी का मंदिर गिनाया जा सकता है।

इस क्षेत्र में महापुरुषों और ऋषियों की भी पूजा प्रचलित थी। मनाली का वशिष्ठ मन्दिर तथा मंडी में निर्मित पराशर ऋषि का मन्दिर यहाँ उल्लेखनीय है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ऐसी पूजा-पद्धति तथा मूर्तियों का निर्माण सम्भवतः बौद्धधर्म तथा क्षेत्रीय धार्मिक विश्वास का परिणाम था। इसका प्रचलन संभवतः मध्यकाल में हुआ, क्योंकि हिमाचल के ऐसे मन्दिर प्राचीन काल में नहीं बनवाये गये थे।

हिमाचल में हिन्दू धर्म के कम महत्वपूर्ण देवताओं को भी पूजा की जाती थी। उदाहरणार्थ वरुण की प्रतिमायें यहाँ के हर भाग से मिलती हैं।[१४०] उसकी प्रतिष्ठा विशेष कर उन स्थानों पर अवश्य की जाती थी, जहाँ पानी का स्रोत मिलता था या जहाँ बावलियाँ बनवाई जाती थीं। ब्रह्मा की भी मूर्तियाँ प्राचीन काल में यहाँ गढ़ी जाती थीं और उसके लिए कभी-कभो मन्दिरों का भी निर्माण किया जाता था। ऐसा ही एक आदि ब्रह्म का मन्दिर खोकन में मिलता है, जो देखने में प्राचीन नहीं मालूम होता है। कार्तिकेय की पूजा यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी, इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। (देखिये चित्र ३) यहाँ के कुनिन्दों में उसकी पूजा अत्यन्त लोकप्रिय थी। उसके लिए मन्दिरों का भी निर्माण किया जाता था। ऐसा ही एक मन्दिर खखनाल नामक स्थान में पाया जाता है, जो मण्डी और कुल्लू के बीच स्थित है।[१४१] विद्वानों की धारणा है कि यह मन्दिर प्रतिहारों के युग में बनवाया गया था, क्योंकि कीर्तिकेय देवता की मूर्ति प्रतिहार-शैली में बनाई गई है। यह युद्ध का देवता था, अतएव प्रतिहार-विजयवाहिनी जब इस क्षेत्र में आई थी, तभी शायद इसका निर्माण किया गया था।

चंबा-क्षेत्र में कार्तिकेय की पूजा प्रचलित थी। वहाँ के बासू परगना में स्थित सुर नामक स्थान से एक प्रस्तर-खण्ड मिला है, जिसमें कार्तिकेय की मूर्ति के निर्माण का उल्लेख किया गया है, जिसे राजा दोदक ने बनवोया था। जाहिर है कि उसके लिए समर्पित मन्दिर भी वहीं कहीं स्थित था। इसे दशवीं शदी ई० की कृति माना जा सकता है। अन्य देवी-देवताओं में भैरव, जामदग्नि, नर्मदेश्वर सदाशिव (देखिये चित्र १४) राधाकृष्ण प्रमुख हैं, जिनकी मूर्तियाँ हिमाचल के मन्दिरों में पाई जाती हैं। बैजनाथ मन्दिर के प्रांगण में बर्गेस को जगन्नाथ की भी एक मूर्ति मिली थी, जो मध्यकालीन वैष्णव धर्म के विचार का द्योतक है।[१४२] अन्य प्रधान देवों में कुवेर की गणना की जानी चाहिये, जो धन-सम्पदा का प्रधान देवता था। हिन्दू धर्म में उसे विशेष स्थान दिया गया था। वह वैसे लोकधर्म का प्रधान देवता था, परन्तु कालान्तर में हिन्दू धर्म के देवमण्डल में उसे विशेष स्थान दिया गया। इसी प्रकार नागदेव भी एक अत्यन्त लोकप्रिय देवता था, जिसकी प्रतिमायें हिमाचल के अनेक स्थानों से मिली हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

गंगा-यमुना की मूर्तियाँ यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्हें यहाँ के अधिकारी प्राचीन मन्दिरों में द्वार के दोनों तरफ खड़ी मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।[१४३] लक्ष्मी की प्रतिमा तो यहाँ के एक अत्यन्त प्राचीन सिक्के पर मिलती है। वैसे विष्णु के साथ उसे अनेक बार दिखाया गया है। अन्य देवों में नवग्रहों की गणना की जानी चाहिये, जिनकी पूजा के बिना हिन्दू धर्म में प्रत्येक धार्मिक कार्य अधूरा समझा जाता है। उनकी प्रतिमायें प्रायः हर मन्दिरों में तराशी जाती थीं। इसी प्रकार दिक्पालों की भी पूजा यहाँ प्रचलित थी। उसकी एक प्रतिमा बिलासपुर के रंगनाथ मंदिर से मिली है, जो इस समय शिमला के राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है।

लोक धर्म—

इन देवी-देवताओं के साथ भारत के अन्य भागों की तरह यहाँ भी यक्षों, नागों, गन्धर्वों, अप्सराओं, पर्वतों, भूतों, राक्षसों तथा अन्य पुण्यजनों की पूजा की जाती थी। ये बड़े लोकप्रिय देव थे और भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से पूजे जाते थे।[१४४] वैदिक साहित्य में इनका उल्लेख महान तथा प्रधान देवी-देवताओं के साथ किया गया है। महाकाव्यों, पुराणों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में इनकी चर्चा मिलती है। सर्वसाधारण लोग इन देवों के सम्बन्ध में मेलों का आयोजन करते थे और उनके लिए तीर्थ-यात्रा पर जाते थे। जैन ग्रन्थ ज्ञातधर्मकथा में नागयावा, यज्ञयावा तथा भूतयावा का उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में ऐसे धार्मिक उत्सवों तथा त्योहारों को नागमह, यक्षमह, गिरिमह तथा वृक्षमह आदि नाम दिये गये हैं। इन देवों के सम्बन्ध में लोग व्रत आदि रखते थे, जिनके सम्बन्ध में विविध प्रकार की सूचनायें बौद्ध साहित्य में मिलती हैं। मिलिन्दपन्हो नामक बौद्धग्रन्थ में मणिभद्र, पिशाच, पुण्यभद्र आदि यक्षों के पूजकों का उल्लेख है और मानवगृह सूत्र में जम्भक, वैश्रवण तथा विरुपाक्ष इत्यादि लोक-देवताओं की पूजा विधियों की चर्चा मिलती है। श्रीमदभगवदगीता में भी वासुकिसर्प, अश्वत्थवृक्ष तथा गन्धर्वों की पूजा का उल्लेख मिलता है और ऐरावत गज, कामधेनु, मकर तथा गंगा आदि को विष्णु का रूप बताया गया है।

जैन धर्म—

हिमाचल प्रदेश में जैन धर्म के प्रसार के भी प्रमाण मिलते हैं। इस क्षेत्र की सीमा पर स्थित पिंजौर नामक स्थान से जैन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। वहाँ प्राचीनकाल में सम्भवतः कई जैन मंदिर निर्मित किये गये थे। इससे इस क्षेत्र में जैन धर्म के विस्तार की ओर संकेत मिलता[१५०] है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हिमाचल प्रदेश में काँगड़ा जैन धर्म का केन्द्र मालूम होता है। काँगड़ा के किले में आदिनाथ की आसन मुद्रा में बनी एक अष्टधातु प्रतिमा मिली[१५१] है। इससे यह सिद्ध होता है कि वहाँ शायद एक जैन मन्दिर निर्मित था। काँगड़ा बाजार में स्थित इन्द्रवर्मा के मन्दिर में पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा मिली थी, जिस पर एक अभिलेख उत्कीर्ण है। उसके अनुसार श्वेताम्बर संप्रदाय के जैन व्यापारी ने यहाँ एक मन्दिर का निर्माण करवाया था, जिसमें पार्श्वनाथ की यह मूर्ति स्थापित की गई थी। यह मन्दिर संभवतः नवीं शदी के मध्य में बनवाया गया था। अभिलेख में जैन व्यापारी, उसके परिवार तथा उसके गुरु अभयचन्द्र सूरी का उल्लेख है, जो अभयचन्द का शिष्य था। उसने प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा की थी। इसी क्षेत्र में स्थित बैजनाथ मन्दिर में प्राप्त एक लेख में भगवान महावीर के प्रति समर्पित एक मन्दिर का उल्लेख है। इस मन्दिर की संस्थापना में प्रयुक्त प्रस्तर-खण्ड, जो देव महावीर की प्रतिमा की वेदिका है, बैजनाथ मन्दिर में जुड़ा हुआ है। इस पर लिखे लेख के अनुसार कीर-ग्राम अर्थात् आधुनिक बैजनाथ के दो प्राचीन-व्यापारियों ने, जिनका नाम दोल्हण और अल्हण था महावीर की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाया था। प्रतिमा की प्रस्थापना देवभद्र सूरी ने १२४० ई० में की थी। इन्हीं व्यापारियों ने उसके लिए मन्दिर का भी निर्माण करवाया था। वह बाद में समय के कारण धराशायी हो गया और वेदिका सहित जैन प्रतिमा को वहाँ से हटाकर शिव के मन्दिर में लगा दिया गया। इस प्राचीन जैन मन्दिर का कोई भी अवशेष वहाँ अब नहीं मिलता है। मन्दिर के विनाश का कारण और उसकी तिथि अज्ञात है।

ब्यूलर महोदय का मत है कि ये दोनों जैन व्यापारी गुजराती थे और प्रतिमा को प्रतिष्ठापित करने वाला सूरी भी वहीं से आया[१५२] था। अपने इस मत के पक्ष में उन्होंने यह कहा है कि ये दोनों व्यापारी ब्रह्मक्षात्र गोत्र के थे, जो गुजरात में ही पाये जाते हैं। ब्यूलर का यह मत बहुत सत्य नहीं मालूम होता है। कीर ग्राम एक समृद्ध व्यापारिक केन्द्र था अतएव हर जाति के व्यापारी वहाँ आकर बस सकते थे। हो सकता है कि मूलतः ये लोग या उनके पूर्वज कभी गुजरात से आये रहे हों। लेकिन उनके नाम कश्मीरी नाम हैं और ऐसे नाम गुजरात में नहीं पाये जाते हैं। देवभट्ट सूरी तो निश्चित रूप से अभयचंद्र सूरी का शिष्य था। वह जैनवल्लभ वंश से सम्बन्धित था, जिसका उल्लेख खरतरगच्छ पट्टावली में मिलता है। उसकी मृत्यु वि० सं० ११६७ में हुई थी। ये श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते थे। यहाँ पर पार्श्व-नाथ का एक दूसरा लघु मन्दिर बनवाया[१५३] गया था। इन साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि जैनधर्म का विस्तार हिमाचल प्रदेश तक हुआ था, क्योंकि सम्पत्ति अर्जित करने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के लिए अनेक जैन व्यापारी इस क्षेत्र में आये थे और उनमें से अनेक यहाँ के निवासी बन गये थे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि काँगड़ा क्षेत्र कई धर्मों की धरती थी और सभी धर्म यहाँ समान रूप से विकसित हो रहे थे।

विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में वृक्ष-पूजा, जल-पूजा, नाग-पूजा, पर्वत-पूजा तथा पशुओं की पूजा का उल्लेख है और मत्स्य-पुराण में लगभग दो सौ देवियों का वर्णन मिलता है, जिनमें से अनेक लोकदेवियाँ थीं। इनकी पूजा ग्रामों में सामान्य लोग किया करते थे।

नागपूजा के पीछे दो भावनायें काम करती थीं। कुछ तो सर्प को हानिकारक और भयानक मानकर पूजते थे और कुछ उसके उदार तथा वरदानदायक रूप में आशा रखते थे। इन दोनों रूपों की चर्चा वैदिक साहित्य में मिलती है। नागपूजा का उदाहरण हड़प्पा संस्कृति में भी पाई जाती है। साँची और भाहुत की कलाओं में नागों की मूर्तियाँ खचित हैं। बाद में कुषाणों के काल में नागपूजा उत्तर भारत के सभी भागों में फैल गई। हुविष्क के राज्यकाल में बनी छड़ग्राँव से मिली नाग-प्रतिमा पर "भगवान नाग" लिखा गया है। कनिष्क के काल को अनेक नाग-प्रतिमायें मिली हैं, जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित हैं। गुप्तकाल में भी पूरे उत्तर भारत में नागप्रतिमायें बनाई गईं और उनके लिए मंदिरों का निर्माण किया गया। नागों को कभी मृत पूर्वजों की आज्ञा माना गया और कभी गड़ी निधि का संरक्षक और उन्हें कभी जल का भी देवता माना गया। इन्हीं कारणों से इस पूजा का प्रभाव न केवल शैव, शाक्त या वैष्णवधर्मों पर पड़ा, वरन् बौद्ध और जैन धर्मावलम्बियों ने भी अपनी मूर्तियों में उन्हें प्रतीक-रूप में स्वीकार किया। नागों की मूर्तियों में कभी केवल सर्प-फण दिखाया गया तो कभी उसके ऊपरी भाग में मानव शरीर और निचले आधे भाग में सर्प का आकार। इनके लिए अन्य देवों की तरह मन्दिरों का निर्माण किया गया और सभी प्रकार के पूजा-कर्म बनाये गये। धूप, दीप, पुष्प तथा प्रसाद आदि से उनकी पूजा की गई।[१४५]

हिमाचल में नाग देवों के अनेक मन्दिर उपलब्ध होते हैं।[१४६] इनमें हम काँगड़ा के शेषनाग का उल्लेख कर सकते हैं। इस जिले के अन्य नाग देवों बासुकि तथा तक्षक नागों का उल्लेख करना चाहिये, जिनके लिए सुन्दर मन्दिर बनवाये गये हैं। चंबा जिले में स्थित वानी के महल नाग और जमुन नाग के मन्दिर भी यहाँ उल्लेखनीय है। किन्नौर का परंग नाग इस क्षेत्र का दूसरा विशाल नाग मन्दिर है।

इनके अतिरिक्त यहाँ के ग्रामों में गुग्गा नामक देवता बड़ा लोकप्रिय है।[१४७]

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

यह इस क्षेत्र के महान पुरुषों का दैवीकृत रूप मालूम पड़ता है। इसे यहाँ मण्डलीक भी कहते हैं। उसके मन्दिरों में उसके परिवार के अन्य सदस्यों की भी मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं। इसी प्रकार यहाँ विभिन्न सिद्धों की भी पूजा होती है, जो महान आत्माओं के दैवीकृत रूप मालूम होते हैं। इनमें कितने देव प्राचीन हैं, यह कहना थोड़ा कठिन है। वैसे इनकी पूजा का आधुनिक प्रचलन उनकी प्राचीनता का द्योतक माना जा सकता है।

यक्ष वनस्पति जगत की आत्मा के दैवी रूप माने जाते हैं और इन्हें जनन-क्रिया का देवता माना जाता है।[१४८] ये उत्तर वैदिक काल से हिन्दू धर्म में तथा सर्व साधारण की पूजा-विधि में बड़ा ऊँचा स्थान रखते थे। गृह्यसूत्रों में पहली बार यक्षों के सम्बन्ध में थोड़ा विस्तृत वर्णन मिलता है। सांख्यगृह्य सूत्र में मणिभद्र का उल्लेख है। इस समय कुबेर की पूजा विवाहादि में की जाती थी और बच्चों की रक्षा के लिए ईशान के साथ उसकी स्तुति की जाती थी। शुंग कुषाण काल तक यक्षों की पूजा बड़े पैमाने पर पूरे उत्तर भारत में होने लगी। उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती गई और परिणामतः सांची और भार्हुत की कला में लगभग एक दर्जन यक्षों की मूर्तियाँ तराशी गई। इनमें कुबेर यक्ष प्रधान था। बाद में पुराणों में उससे सम्बन्धित अनेक कथायें गढ़ी गई और अन्ततोगत्वा वह धन और सम्पति का देवता बन गया। इसकी पूजा सामान्य जन-समुदाय में बड़ी लोकप्रिय हो गई। उसके लिए मन्दिरों का निर्माण किया गया। उनकी मूर्तियाँ गढ़ी गई और उनकी पूजा के सम्बन्ध में मेलों का आयोजन होने लगा।

हिमाचल प्रदेश में भी यक्षों की पूजा प्रचलित थी। कुबेर की कई प्रतिमायें यहाँ के अनेक स्थानों से मिली हैं।[१४९] इसी तरह हरीती नामक यक्षिणी की पूजा यहाँ लोकप्रिय थी। उसकी एक प्रतिमा शिमला के राज्य-संग्रहालय में सुरक्षित है। उनके लिए समर्पित मन्दिरों का ज्ञान हमें प्रायः नहीं है। सम्भवतः निधि नामक देवी भी इस क्षेत्र में पूजित एक यक्षिणी थी, जिसकी एक मूर्ति यहाँ से प्राप्त हुई है। जन साधारण में ऐसे देवी-देवताओं की पूजा अधिक प्रचलित मालूम होती है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

6

छठवां अध्याय

संस्कृति

(अ) शिक्षा, लिपि, भाषा और साहित्य

शिक्षा—

प्राचीन हिमाचल में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्य-विषय, केन्द्र और प्रणाली प्रायः वही थे, जो उस समय भारत के उतरी भाग में प्रचलित[1] थे। हमने पहले ही देखा है कि इस क्षेत्र में काफी पहले से वैदिक संस्कृति का प्रसार हो गया था। इस क्षेत्र से लगे हुए मैदानी भाग में आर्य संस्कृति का प्रधान केन्द्र स्थित था। अतीत में गुरुकुल प्रणाली यहाँ भी प्रचलित जान पड़ती है, जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक केन्द्रों में कुछ पढ़े-लिखे प्राचार्य अपने पास विद्यार्थियों को रखकर पढ़ाते-लिखाते थे। गुरु को उपाध्याय और शिष्य को अन्तेवासी कहते थे, जैसा कि उपनिषदों या अन्य वेदांग-ग्रन्थों से ज्ञात होता है। पाठ्य-विषयों[2] में प्रधानतः व्याकरण और अन्य वैदिक-विधियाँ रही होंगी, जैसा कि हमें सूत्र-साहित्य से मालूम होता है। लेकिन यह सुविधा केवल कुछ को ही थी। जाहिर है कि राजघरानों या प्रमुख व्यापारियों तथा विभिन्न प्रकार के सरकारी अफसरों के ही पुत्र इस प्रकार की शिक्षा पाते थे। ब्राह्मण वर्ग के लोग पेशे के रूप में शिक्षा प्राप्त करते थे। विभिन्न राजाओं के लड़के संभवतः धनुष-विद्या भी सीखते थे, जो परिवार वाले ही समय-समय पर सिखाते थे। आयुर्वेद शिक्षा का दूसरा प्रमुख विषय रहा होगा। यह तत्कालीन उच्च शिक्षा केन्द्रों का एक प्रमुख विषय था।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

तक्षशिला विश्वविद्यालय में यह पढ़ाया जाता था, जो भारत के इस क्षेत्र से बहुत दूर नहीं स्थित था। मौर्य-काल में और उसके पहले भी यह एक विकसित शास्त्र था, जिसका मानव जीवन में बड़ा योगदान था। इस विषय की वृद्धि बौद्ध भिक्षुओं ने भी की थी, जो इस क्षेत्र में महात्मा बुद्ध के जीवन काल में ही आ[३] गये थे। उन्होंने मैदानी शिक्षा, लिपि तथा अन्य अनेक विद्याओं का इस क्षेत्र में प्रसार किया था। चिकित्साशास्त्र और विशेष करके शल्यचिकित्सा कांगड़ा क्षेत्र में मध्यकाल में विशेष रूप से विकसित और प्रसिद्ध[४] थी। वर्णन मिलता है कि कटी नाक का आपरेशन यहाँ बड़ी सफलतापूर्वक किया जाता था। संभवतः यह विद्या इस क्षेत्र में वहाँ के लोगों को पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तराधिकार में मिली और मध्यकाल तक जीवित रही। वास्तव में बौद्ध बिहार, जिनमें हजारों की संख्या में बौद्ध भिक्षु रहते थे, इस विद्या के प्रधान केन्द्र थे और ऐसी विद्याएं गुरु अपने कुछ योग्य और सुपात्र शिष्यों को पढ़ाता और बताता था। अन्य विद्याओं में शिल्पशास्त्र और स्थापत्यशास्त्र प्रमुख थे, जो इस क्षेत्र में भी पढ़ाये और सिखाये जाते थे। यह भी उपर्युक्त विषयों की तरह गुरु द्वारा कुछ ही लोगों को बताया और सिखाया जाता[५] था। संभवतः इसी के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में अनेक मूर्तियों, मन्दिरों, स्तूपों तथा बौद्ध बिहारों का निर्माण किया गया। यहाँ के प्राचीन नगर ऐसे ही कुशल एवं प्रशिक्षित शिल्पकारों की हस्त-निपुणता के परिणाम थे, जिनके भीटे हिमाचल के विभिन्न भागों में मिलते हैं और जिनके खण्डहर कला के प्रशिक्षण का प्रमाण उपस्थित करते हैं।

प्राचीन काल में शिक्षा के दो या तीन प्रकार के प्रमुख केन्द्र हुआ करते थे। परिवार शिक्षा का प्रथम प्रधान केन्द्र था, जिससे गुरुकुल-प्रणाली का जन्म हुआ[६]। विभिन्न प्रकार के महान् विद्वानों या कलाविदों के घर नये छात्र जाकर शिक्षा प्राप्त करते थे या अन्य कलाएँ सीखते थे। बाद में विभिन्न बौद्ध बिहार शिक्षा के प्रधान केन्द्र बने। इस क्षेत्र में कई स्थानों पर बौद्ध बिहार बनवाये गये थे, जिनका वर्णन हमने पहले ही विशद रूप से किया है। यहाँ बौद्धधर्म एवं दर्शन की शिक्षा तो दी ही जाती थी, लेकिन बौद्ध भिक्षु एवं विद्वान् अन्य विषयों को भी पढ़ाते थे। लिपि और भाषा का अध्ययन और अध्यापन यहाँ होता था। आयुर्वेद, ज्योतिष्, गणित तथा अन्य कलाएँ अध्ययन-अध्यापन के अन्य प्रमुख विषय थे, जिन्हें प्राचीन बौद्ध विद्वानों ने इस क्षेत्र में लोकप्रिय बनाया।

मन्दिर प्राचीन-काल में शिक्षा के प्रचार के दूसरे प्रमुख केन्द्र[७] थे। इनमें पुरोहित एक सुशिक्षित या अर्द्धशिक्षित व्यक्ति होता था, जो अपने आस-पास के लोगों में शिक्षा-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

बिखेरता था। हिमाचल में कुल्लू, चंबा, काँगड़ा तथा सिरमौर के क्षेत्रों में ऐसे अनेक मन्दिर विद्यमान थे, जिनकी सूचना हमें उनके खंडहरों से मिलती है या उनका उल्लेख यहाँ से प्राप्त अभिलेखों में हुआ है या विदेशी यात्रियों ने उनका उल्लेख किया है। ह्वेनसांग लिखता है कि कुल्लू और ग्रुधन के संधाराम और देव मन्दिर विद्या के प्रधान केन्द्र थे। निर्मण्ड से प्राप्त अभिलेख में लिखा है कि वहाँ अथर्ववेद के अध्ययन और अध्यापन में लगे ब्राह्मण रहते थे, जिनकी आजीविका के लिए किसी समुद्रसेन नामक राजा ने एक ग्राम दान में दिया था। ऐसी ही रचनायें चम्बा और काँगड़ा से प्राप्त अभिलेखों से भी मिलती हैं। विद्या एवं संस्कृति के विकास एवं विस्तार के लिए राजाओं एवं प्रशासकों द्वारा अग्रहार दान का दिया जाना प्राचीन भारत में विशेष रूप से[८] प्रचलित था, जिसकी सूचनाएँ तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व से ही मिलने लगती हैं। गुप्तों के काल में, हर्षवर्द्धन के समय में और प्रतिहारों, गहड़वालों तथा चौहानों के काल में यह प्रथा और भी विकसित होती रही। बाद में हिमाचल में भी यह प्रथा प्रचलित हो गयी, जिसकी सूचनाएँ हमें कुल्लू और चम्बा से प्राप्त मध्यकालीन अभिलेखों में मिलती[६] हैं।

राज्य या विभिन्न समृद्ध व्यापारिक परिवार ही दान देने में समर्थ थे, अतएव उनकी सहायता एवं सहयोग से शिक्षा का प्रचार हो सका। उन्होंने सांस्कृतिक विकास में प्राचीन काल में बड़ा योगदान दिया। हर राजघरानों में पुरोहितों, पण्डितों तथा बौद्धों को शरण दिया गया। कभी तो उनकी आवश्यकता उनकी पूजा-विधि में पड़ी और कभी उन्हें पढ़े-लिखे विद्वानों को अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए स्थान एवं धन देना पड़ा और कभी राज-प्रशासन में पढ़े-लिखे लोगों को लगाना पड़ा। ऐसे सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक कार्यों में उन्हें ज्योतिषियों की भी जरूरत पड़ी, अतएव विद्याओं और विद्वानों के विकास के लिए राजवंशों को प्रोत्साहन देना अनिवार्य हो गया। समाज को सुचारुरूप से चलाने की जिम्मेदारी सम्राटों और प्रशासकों पर थी, अतएव विभिन्न विद्यालयों एवं शिक्षा के अन्य केन्द्रों को किसी भी प्रकार से चलाना उनका कर्तव्य था।

इस क्षेत्र में प्राचीन काल में स्थापित और विकसित किसी उच्च शिक्षा केन्द्र की सूचना हमें नहीं है। हो सकता है कि काँगड़ा, कुल्लू, चम्बा और सिरमौर के विभिन्न प्राचीन संस्कृतिक केन्द्रों या नगरों में उच्च-शिक्षा की व्यवस्था रही हो, जिसकी सूचना हमें नहीं है। निकटस्थ जलन्धर और थानेश्वर आदि स्थानों के यहाँ के राज-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कुमार जाकर शायद ऊँची शिक्षा प्राप्त करते रहे हों। तक्षशिला, नालन्दा, वल्लभी और विक्रमशिला के प्राचीन विश्वविद्यालयों में भी यहाँ से विद्यार्थी जा सकते थे और विभिन्न प्रकार की विद्यायें सीख सकते थे, लेकिन यह केवल धनी एवं राजघरानों के लिए ही सम्भव था। शेष जनसंख्या के छात्र ऐसे स्थानों में जाकर शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकते थे, क्योंकि इसके लिए उनके पास साधन न थे। प्राचीन काल में इस दृष्टि से राजप्रोत्साहन की भी परम्परा न थी। यह क्षेत्र वैसे भी यातायात और आवागमन के साधनों से सदैव हीन और वंचित रहा है, अतएव बाहर दूर जाकर साधनहीन गरीब लड़कों की शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता है।

लिपि, भाषा और साहित्य—

भारत के अन्य कुछ भागों की तरह प्राचीन काल में इस क्षेत्र में दो लिपियाँ प्रचलित[१०] थीं—ब्राह्मी और खरोष्ठी, जिनका ज्ञान हमें प्राचीन अभिलेखों और सिक्कों के माध्यम से होता है। इनमें ब्राह्मी अधिक प्रिय और प्रचलित मालूम होती है, क्योंकि हिमाचल के हर भाग से इस लिपि में लिखाये अभिलेख मिलते हैं, जिनकी संख्या नगण्य नहीं है। इसमें लिखा सबसे प्राचीन अभिलेख काँगड़ा जिले में स्थित पथियार नामक स्थान से मिला[११] है जो धर्मशाला से लगभग बारह मील दूर स्थित है। विद्वानों ने इसे तीसरी शदी ई० पू० में लिखाया गया मानते हैं, क्योंकि इसमें अशोक के काल में प्रचलित ब्राह्मी के अक्षर मिलते हैं। इस समय अशोक ने अपने धर्मादेशों और प्रशासन-आदेशों को अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में चट्टानों, शिला-खण्डों या स्तम्भों पर लिखवाया और उस क्षेत्र-विशेष में प्रचलित लिपियों और भाषा को नियुक्त किया। यहाँ यह लेख एक चट्टान पर लिखवाया गया है और इसमें ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों लिपियों का प्रयोग किया गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस समय इस क्षेत्र में वे दोनों लिपियाँ प्रयोग में लाई जाती थीं। इस तथ्य के अन्य भी अनेक प्रमाण हैं इसी क्षेत्र में इन दो लिपियों में लिखाया गया दूसरा अभिलेख मिला है, जिसे द्वितीय शताब्दी ई० में रखा जाता है। यह लेख धर्मशाला से पूर्व चार मील दूर स्थित कन्हिआरा नामक स्थान पर प्राप्त एक शिलाखण्ड पर लिखाया गया[१२] था। इसमें एक बौद्ध बिहार का उल्लेख है, जिसका नाम कृष्ण बिहार था। इससे साफ जाहिर है कि इन बिहारों की सहायता से लिपि और भाषाएँ विकसित हो रही थीं।

इसी तरह ईसवी सन् के पूर्व और बाद की शताब्दियों में इन क्षेत्रों में विक-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सित राज्यों या अर्द्ध गणराज्यों के सिक्के भी लिपि और भाषा के इतिहास-निर्माण में हमारी मदद करते[१३] हैं। प्राचीन त्रिगर्त जनपद में प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता था। इससे यह स्पष्ट है कि काँगड़ा क्षेत्र में ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा पाँचवी-चौथी शताब्दी ई० पू० में प्रचलित थी। यही प्रमाण उदुम्बरों के सिक्कों से भी मिलता है, क्योंकि इन पर भी ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों में छोटे-छोटे अभिलेख मिले हुए हैं।

यही स्थिति हिमाचल के कुल्लू और शिमला-सिरमौर क्षेत्रों की भी थी। कुल्लू से प्राप्त कुलूत राजा वीरयश के एक रजत सिक्के पर भी यही दो लिपियाँ और प्राकृत भाषा मिलती[१४] हैं। कुनिन्दों के सिक्कों से भी यही स्थिति ज्ञात होती है। उनके सिक्के, जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है, सतलज नदी से पूर्व शिमला-सिरमौर तथा कुमायूँ-गढ़वाल आदि क्षेत्रों से मिले[१५] हैं। इस क्षेत्र में भी ब्राह्मी लिपि बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थी, जैसा कि अशोक के शिलाभिलेख से मालूम होता है। काल्सी नामक स्थान से एक अभिलेख मिला[१६] है। यह हिमाचल के ठीक पूर्वी सीमा पर स्थित एक प्राचीन व्यापारिक, प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र था। कुनिन्दों के सिक्कों पर ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों का प्रयोग हुआ है। इससे साफ जाहिर है कि ये दोनों लिपियाँ इस क्षेत्र में प्रचलित थीं और उनके राज्य में दोनों लिपियों के जानने वाले रहते थे। ऐसा लगता है कि काँगड़ा और कुल्लू से लगे क्षेत्रों में खरोष्ठी लिपि जानने वाले थे और सिरमौर-गढ़वाल क्षेत्रों में ब्राह्मी लिपि का प्रचार था। यही स्थिति सम्भवतः सतलज नदी से पूर्व पहाड़ी भाग से लगे मैदानी भागों की भी थी।

धीरे-धीरे खरोष्ठी लिपि का इस क्षेत्र से भी पतन हो गया, जिसका प्रारम्भ कुनिन्द सिक्कों के दिनों से ही हो गया था। यह स्थिति तीसरी शताब्दी ई० के मध्य की मालूम पड़ती है। कुनिन्दों के अधिकांश सिक्कों पर भी ब्राह्मी लिपि ही मिलती है। बाद में विकसित यौधेयों के सिक्कों से यह विकास अधिक स्पष्ट हो जाता है; क्योंकि उनके सिक्कों पर जो तीसरी-चौथी शताब्दी में चलाये गये, ब्राह्मी लिपि ही मिलती है। उनके अधिक प्राचीन सिक्कों पर ब्राह्मी के साथ दूसरी तरफ खरोष्ठी में भी लेख लिखाये जाते थे, क्योंकि पंजाब और इस पहाड़ी भाग के काँगड़ा क्षेत्र के कुछ हिस्से सम्भवतः उनके अधिकार क्षेत्र में स्थित थे। धीरे-धीरे ब्राह्मी लिपि उभरती दिखती है, क्योंकि यौधेयों की मुहरों पर इसी लिपि में लेख[१७] मिलते हैं और खरोष्ठी प्रायः लुप्त होती जाती है। चौथी शदी ई० में गुप्तकालीन ब्राह्मी के अक्षर उन पर मिलते हैं।

गुप्त कालीन हिमाचल में खरोष्ठी में लिखाया गया कोई अभिलेख उसके किसी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

भी क्षेत्र से नहीं मिलती है। इस समय कुल्लू से मिले शालरी अभिलेख में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया गया[१८] है। यही लिपि काँगड़ा से प्राप्त बौद्ध मूर्तियों की वेदिका पर लिखी मिलती है, जिन्हें छठीं शदी ई० में रखा जाता है। कुल्लू घाटी के पूर्वी भाग में स्थिति निर्मन्ड से प्राप्त ताम्र-पत्र पर भी इसी लिपि में सातवीं शदी ई० में लेख लिखवाया गया, जिसे कुछ विद्वान् गुप्त ब्राह्मी नाम देते हैं, क्योंकि इसमें आगे विकसित ब्राह्मी अक्षरों का प्रयोग मिलता[१९] है। इस शदी से आगे लगभग १३वीं शदी तक विकसित मूलतः ब्राह्मी लिपि को विद्वानों ने कई नामों से पुकारा है। कुछ इसे कुटिलाक्षर कहते हैं और कुछ, सिद्धमातृका लिपि जिसका उल्लेख अलबरूनी ने किया[२०] है। वास्तव में, उत्तर भारत में इस काल की लिपि में देवनागरी लिपि के अक्षर मिलने लगते हैं। उनमें शीर्ष में लगने वाली बेड़ी लकीर भी मिलने लगती है, अतएव हम उसे देवनागरी का पूर्वरूप मानते हैं और इसीलिए इसे देवनागरी लिपि कहना अधिक उचित समझते हैं। अलबरूनी ने भी नाँगर या नागरी लिपि का उल्लेख किया है, जो उस समय पश्चिम और उत्तर भारत में प्रचलित थी। वह ऐसी ही लिपि को कभी-कभी अर्द्ध नागरी कहता है।

हिमाचल के विभिन्न भागों में ईसवी की इन शताब्दियों में ऐसी ही लिपि मिलती है। प्रतिहारों के अभिलेखों में इसी लिपि का प्रयोग मिलता है। यह भाग आठवीं शताब्दी ई० से इन्हीं के अधिकार और प्रभाव क्षेत्र के भीतर था, अतएव इस लिपि के विकास का अवसर इस भाग में भी मिला। हाटकोटी, किन्नौर तथा चम्बा से प्राप्त इस काल के अभिलेखों में इसी लिपि का प्रयोग किया गया है। इसमें आगे और भी विकास के कारण इनमें क्षेत्रीय विभिन्नताएँ बढ़ती गईं और प्राचीन खरोष्ठी लिपि, हस्तलेख, कलम और लेख्य-आधार के परिवर्तन के कारण प्राचीन ब्राह्मी या देवनागरी का रूप पश्चिमोत्तर भारत के कछ भागों में मूलतः बदल गया। इससे उस लिपि का जन्म हुआ जिसे हम शारदा लिपि कहते[२२] हैं। इसका मूल स्थान वैसे कश्मीर था, लेकिन इस प्रदेश के कुछ भाग के इसके साथ जुड़े रहने के कारण और चम्बा तथा काँगड़ा के क्षेत्रों में वहाँ से लोगों एवं विद्वानों के आने के कारण इस क्षेत्र में भी उस लिपि का प्रवेश हुआ। मध्यकाल में यहाँ इसमें भी कुछ लेख लिखवाये गये। बैजनाथ प्रशस्ति इस लिपि का सर्व प्राचीन उदाहरण है। लेकिन इस क्षेत्र में वह लोकप्रिय न हो सकी और देवनागरी अपने ढंग से विकसित होती रही। वैसे कुछ भागों में इस क्षेत्र में आधुनिक काल में एक नई लिपि का जन्म हुआ, जिसे हम टाँकरी लिपि कहते[२३] हैं। इसमें सत्रहवीं शदी से कुछ भागों में अभिलेख लिखवाये

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

गये और एक प्रकार के साहित्य का सृजन हुआ कुछ हस्त लिपियों में चित्रित ग्रन्थों की रचना हुई। इसे वैसे व्यापारी वर्ग ने अधिक प्रश्रय दिया। इस समाज में यह कहीं-कहीं आज भी लोकप्रिय है।

इसी प्रकार इस क्षेत्र में भाषा के विकास का इतिहास सिक्कों पर लिखे अभिलेखों और अन्य अभिलेखों की सहायता से लिखा जा सकता[२४] है। हमने पहले ही लिखा है कि वैदिक संस्कृति इस क्षेत्र में प्राचीन काल से विकसित हो रही थी। अतएव वैदिक संस्कृत भाषा का भी इस क्षेत्र में विकास हुआ, जिसके सही इतिहास का ज्ञान हमें इस समय नहीं है। प्राचीन भारत के साहित्यकार अपना नाम अपनी कृतियों में प्रायः नहीं देते थे और न उसके निर्माण की तिथि और अपने निवास-स्थान के विषय में ही कुछ सूचनाएँ देते थे। अतएव वैदिक साहित्य या लौकिक संस्कृत साहित्य के कौन से ग्रन्थ यहाँ लिखे गये, इसके सम्बन्ध में अधिकतर अनुमान ही लगाना होगा।

प्राचीन भारत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ जो हिमाचल के भूगोल और यहाँ की संस्कृति से अधिक परिचित है, पाणिनि द्वारा लिखित अष्टाध्यायी[२५] है अतः इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ की प्राचीन भाषा संस्कृत थी, जो पांचवीं चौथी शदी ई० पू० में इस क्षेत्र में प्रचलित थी। वास्तव में वैदिक ग्रंथ पंजाब की इन्हीं पांच नदियों के किनारे और गंगा-यमुना के दवाबे में लिखे गये, अतएव इन्हें भी इस क्षेत्र की देन मानना समीचीन होगा। महाभारत भी इस क्षेत्र से बड़ा परिचित मालूम होता है और इस क्षेत्र से उसके पात्रों का अत्यधिक सम्बन्ध यहाँ की संस्कृत-भाषा एवं उसके साहित्य की ओर संकेत करता है। सम्भवतः पाणिनि इस क्षेत्र के त्रिगर्त क्षेत्र में ही हुए थे और इसी क्षेत्र में रहकर उन्होंने अपने व्याकरण की रचना की थी। इसी तरह मनु का भी सम्बन्ध यहाँ स्थित मनाली पार्टी से जोड़ा जाता है जिसका प्रमाण केवल दन्त कथाओं में ही मिलता है। इन पर विश्वास करके यह कहा जा सकता है कि व्यास और वशिष्ट ऋषि इसी क्षेत्र में हुए थे या इस क्षेत्र में रहकर उन्होंने अपनी साहित्यिक तपस्या की थी। [वैसे ऐसा कहने के लिए इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

इस क्षेत्र में प्रचलित दूसरी भाषा प्राकृत के ज्ञान के स्रोत सिक्के और अभिलेख है जिनकी सहायता से चौथी शदी ई० पू० से लेकर तीसरी शदी ईसवीं तक प्रचलित प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएँ मिलती[२६] हैं। यह संभवतः लोकप्रिय भाषा थी, जिसे उस समय जन साधारण बोलता और लिखता-पढ़ता था। हमने पहले ही

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लिखा है कि काँगड़ा क्षेत्र से मिले तीसरी ई० पू० के अभिलेख से इस भाषा का प्रयोग किया गया है और ऐसी ही सूचना हिमाचल के पूर्वी सीमा पर स्थित कात्सी नामक स्थान पर लिखाये अशोक के एक अभिलेख से भी मिलती[२७] है। इस क्षेत्र में उस समय प्रचलित सिक्कों पर भी इसी भाषा का प्रयोग किया गया है। यह स्थिति तीसरी शदी ई० तक इस क्षेत्र में चलाये गये सिक्कों और लिखाये गये अभिलेखों से ज्ञात होती है, जिसका उल्लेख हमने पहले ही किया है। परन्तु एलन आदि विद्वानों ने इन सिक्कों और अभिलेखों में ब्राह्मी और खरोष्ठी दो लिपियों के प्रयोग के कारण उनमें प्रयुक्त प्राकृत भाषा में कुछ अन्तर देखा है जो ठीक से देखने पर मालूम होता है। अतः इस क्षेत्र में प्रचलित प्राकृत भाषा में दो बोलियाँ[२८] थीं। एक में संस्कृत का प्रभाव सुस्पष्ट प्रकट होता है। संभवतः पश्चिमी भाग में संस्कृत से कम प्रभावित प्राकृत बोली जाती थी और पूर्वीभाग में या पंजाब से लगे हिमाचल प्रदेश के क्षेत्रों में संस्कृत से प्रभावित प्राकृत अधिक प्रचलित थी। कुछ भी हो, धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन हुआ और चौथी शदी ईसवी या उससे कुछ पहले ही प्राकृत भाषा का स्थान संस्कृत भाषा ने लेना प्रारम्भ कर दिया, जैसा कि यौधेयों के सिक्कों पर मिले प्रमाणों से मालूम होता है। इनके सिक्कों पर प्राकृत भाषा का बहुत कम प्रयोग हुआ है और उन पर सुन्दर परिष्कृत संस्कृत में लिखे अभिलेख मिलते[२९] हैं। उनकी मुहरों पर तो अच्छे और बड़े-बड़े अभिलेख मिलते हैं, जिनमें साहित्यिक संस्कृत के गद्य का सुन्दर उदाहरण मिलता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि यौधेयों ने हिमाचल के मैदानों से लगे भागों पर अधिकार कर लिया था और उनका पतन चौथी शताब्दी ई० में समुद्रगुप्त के उत्थान के कारण हो गया था।

इस तरह यह कहना उचित लगता है कि गुप्त-युग के प्रारम्भ में ही संभवतः प्राकृत केवल बोलने-चालने की ही गई थी और अभिलेखों तथा अन्य साहित्यिक ग्रंथों में संस्कृत का प्रयोग होने लगा था। इस विकास के अनेक कारण थे। एक तो इस समय तक हीनयान बौद्धधर्म का पतन हो गया था, जिसके आचार्यों से प्राकृत भाषा को बड़ा प्रोत्साहित किया था और दूसरे, इसके बहुत पहले प्रथम शदी ई० में ही कनिष्क प्रथम के समय में ही महायान बौद्धधर्म का जन्म हुआ था, जिसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाने लगा[३०] था। ध्यातव्य है इस क्षेत्र से लगे भाग के प्रमुख नगर जलन्धर में ही संभवतः यह बौद्ध बैठक हुई थी, जिसमें ये निर्णय लिए गये थे। इसके साथ-साथ हिन्दू धर्म का प्रचार पुनः बड़े जोरों से प्रारम्भ हो गया था, जिसमें संस्कृत भाषा मूलतः अधिक ऊँचा स्थान ग्रहण किये हुए थी। यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

है कि खरोष्ठी लिपि का भी पतन इस काल तक हो गया था, जिसमें प्राकृत भाषा लिखी जाती थी, क्योंकि शकों और कुषाणों के पतन के साथ यह अवश्यम्भावी था, क्योंकि इन विदेशी शक्तियों की तरह वह भी एक विदेशी लिपि थी। अतएव जिस राष्ट्रीयता की दौर में कुषाण-शक्ति धराशायी हो गई थी, उसके समक्ष उनकी लिपि और उससे कुछ हद तक इस क्षेत्र में उससे चिपकी, भाषा की अवनति होनी ही थी, और उसके स्थान पर संस्कृत भाषा, जो इस काल तक राष्ट्रीय भाषा वन[३१] चुकी थी, आगे विकसित होनी ही थी।

गुप्त और गुप्तोत्तर काल में, इसलिए, इस भाषा का भारत के अन्य भागों की तरह इस क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ। गुप्त काल में काँगड़ा, कुल्लू तथा सिराज क्षेत्रों से इस काल में उत्कीर्ण अभिलेख मिलते[३२] हैं। निर्मण्ड ताम्र-पत्र अभिलेख में इस भाषा में लिखे उत्तम गद्य का उदाहरण मिलता है। वह बौद्धों और हिन्दुओं तथा अन्य धर्मावलम्बियों की भाषा थी। मूर्तियों की वेदिका पर इसमें लेख लिखाये गये। यही हाल गुप्तोत्तर काल में हिमाचल के विभिन्न भागों में हुआ जान पड़ता है, क्योंकि गुप्त सम्राटों की तरह हर्षवर्द्धन और प्रतिहार सम्राटों ने इसी भाषा को प्रश्रय दिया और उसमें अपने अभिलेख लिखवाये। हाटकोटी, चम्बा, तथा काँगड़ा में जो अभिलेख इस समय लिखाये[३३] गये, वे सभी इसी भाषा में लिखाये गये। यह स्थिति इस क्षेत्र में तेरहवीं चौदहवीं शदी तक बनी रही, जब अन्य क्षेत्रों की तरह यहाँ भी इस भाषा का पतन प्रारम्भ हो गया। यद्यपि यहाँ बाद में मध्य काल तक अभिलेखों की भाषा प्रायः संस्कृत ही बनी रही, लेकिन उसमें भाषागत और व्याकरण में की गई अशुद्धियों में उसकी अवनति देखी जा सकती[३४] है। वास्तव में, इस क्षेत्र में भी बहुत पहले से प्राकृत भाषा बिखरनी शुरू हो गई थी और संस्कृत के पतन के साथ यहाँ भी क्षेत्रीय साधारण बोलचाल की भाषा हिन्दी का जन्म हो गया था, जिसका उदाहरण चौदहवीं शदी ई० में लिखा कुल्लू के एक मन्दिर-अभिलेख में मिलता[३५] है। यहाँ की मध्यकालीन वंशावलियों में भी भाषागत यही स्थिति मिलती है, जो इस क्षेत्र की साहित्यिक कृतियों के सुन्दर उदाहरण हैं।

प्राचीन काल में इस क्षेत्र के साहित्यिक विकास के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का प्रायः अभाव है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के विकास में यहाँ के प्राचीन निवासियों के योगदान की सही सूचना हमारे पास नहीं है। हमने पहले ही लिखा है कि दन्त कथाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पाणिनि इसी क्षेत्र में हुए थे और वेदव्यास तथा मनु का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ था। बाद के भारतीय

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

साहित्य में हिमाचल के योगदान का ज्ञान हमें नहीं के बराबर है। लेकिन जलन्धर, कुल्लू और सिरमौर-क्षेत्रों में प्राचीन कालीन बौद्ध केन्द्रों में अनेक विद्वान एवं दार्शनिक रहते थे, ऐसा ह्वेन साँग के यात्रा विवरण से मालूम होता[१६] है। इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। और यह भी हम लिख चुके हैं कि काँगडा की एक मूर्ति की वेदिका पर प्राप्त अभिलेख से दो बौद्ध विद्वानों के नाम हमें ज्ञात[१७] हैं। नागार्जुन आदि बौद्ध विद्वान् सम्भवतः इसी क्षेत्र से लगे मैदानी भागों में पैदा हुए थे। तिब्बत से जाने वाले कुछ बौद्ध विद्वान यहाँ आकर निवास किये थे। साहित्य के क्षेत्र में उनके भी विभिन्न प्रकार के योगदान का अनुमान किया जा सकता है। लेकिन उनकी किसी रचना-विशेष को गिनाना कठिन है, जिसकी रचना उन्होंने इस क्षेत्र में आकर किया। इस क्षेत्र के विभिन्न मंदिरों और प्राचीन राजवंशों की शरण में रहने वाले बौद्धेतर विद्वानों का भी अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु उनकी कृतियों का ज्ञान हमें नहीं है।

बैजनाथ प्रशस्ति में बाहर से आकर काँगडा में बसे कुछ विद्वानों का उल्लेख किया गया[१८] है। प्रशस्ति में राम नामक कवि का उल्लेख मिलता है, जिसका पिता मृङ्गक किसी कश्मीर नरेश का मन्त्री था। वह एक अत्यन्त कुशल एवं मेधावी कवि था। अभिलेख में उसे कवीश्वर कहा गया है। वह द्व्यर्थक कविता लिखने में बड़ा प्रवीण था और भाषा पर उसका पूर्ण तथा अद्भुत अधिकार था।

राघव चैतन्य यहाँ का दूसरा कवि था। वह वेदान्त दर्शन में पारंगत एक ऋषि था, जिसकी कुछ कृतियों का उल्लेख शांर्गधर-पद्धति में मिलता है। यहाँ के अन्य विद्वानों में कृष्णभट्ट की नाम उल्लेखनीय है, जिसकी चर्चा बैजनाथ-प्रशस्ति में मिलती है। वह एक प्रसिद्ध कवि था, जिसे सभी शास्त्रों का ज्ञान था। वह हरिहर का भक्त था और मूलतः काशी का निवासी था। उसका पितामह, जिसका नाम कृष्णभट्ट था, षड्दर्शन की व्याख्या बड़ी कुशलता से करता था। उसने अनेक यज्ञ किये थे। उसका पिता वागीश्वर भी मीमांसा, स्मृतियों तथा यज्ञ-विद्याओं में बड़ा पारंगत था। वह भी एक कवि था और उसने भी कई काव्यों की रचना की थी। ज्वालामुखी-प्रशस्ति का अन्तिम भाग इसी कृष्णभट्ट ने लिखा[१९] था। यहाँ के अन्य विद्वानों में कर्मध्वज के शिष्य सूर्यध्वज का उल्लेख करना आवश्यक है। वह भी संस्कृत का पंडित था और कीर ग्राम के गिने-चुने विद्वानों में एक था।

प्राचीनकाल में कांगड़ा-क्षेत्र में ऐसे अनेक विद्वान निवास करते थे। यह क्षेत्र

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ज्योतिषियों का एक प्रधान क्षेत्र था, जिनमें से अनेक कश्मीर से आकर यहाँ निवास[४०] करने लगे थे। इसी प्रकार कुछ जैन विद्वान भी यहाँ रहते थे, जैसा कि बैजनाथ से प्राप्त जैन अभिलेखों से मालूम[४१] होता है।

इसके काव्य का एक नमूना बैजनाथ प्रशस्ति में देखा जा सकता है। इसके चौदह श्लोक इस प्रकार रचित हैं कि वे शिव और उमा दोनों पर समान रूप से लागू होते हैं। इसमें प्रयुक्त, छन्दों और अलंकारों के प्रयोग से उसकी काव्य-प्रतिभा का ज्ञान मिलता है। उसे व्याकरण तथा कोश का अद्भुत ज्ञान था। इसी कारण अपनी तरुण अवस्था में ही वह विश्व विश्रुत था।

इस क्षेत्र की प्राचीन साहित्यिक उपलब्धियों में केवल यहाँ के अभिलेखों और वंशावलियों को ही गिनाया जा सकता है। पिछले पृष्ठों में हमने लिखा है कि तीसरी शदी ई० पू० से ही अभिलेखों के लिखने और लिखाने की परम्परा का जन्म इस क्षेत्र में हो चुका था, जो बाद में मध्यकाल तक विकसित होती रही। इन अभिलेखों में गद्य और पद्य दोनों प्रकार की साहित्यिक शैलियों के उदाहरण मिलते हैं। गद्य काव्य का सुन्दर निदर्शन निर्मण्ड-अभिलेख में मिलता[४२] है, जिसे सातवीं शताब्दी ई० की रचना मानते हैं। बैजनाथ-प्रशस्ति और चम्बा के अभिलेखों से पद्यकाव्य के उदाहरण मिलते हैं। इन अभिलेखों में सुन्दर परिस्कृत शैली का प्रयोग किया[४३] गया है। लम्बे-लम्बे समास, सुन्दर शब्दचयन, विभिन्न प्रकार के अलंकारों का प्रयोग और विविध प्रकार के छन्दों में उनकी रचना-आदि ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनसे तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों एवं रचनात्मक उपलब्धियों का सही अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ के अभिलेख ललित भाषा में लिखे सुन्दर लघु काव्य हैं, जिनकी तुलना संस्कृत के किसी भी खण्ड काव्य से की जा सकती है।

पद्य और गद्य काव्यों के अतिरिक्त साहित्यिक रचनाओं में इतिहास-लेखन में सम्भवतः इधर के लोगों की अधिक रुचि थी। इस क्षेत्र में वंशावलियों के लिखने की एक विशेष परम्परा विकसित हुई थी। अलबरूनी का कथन है कि नगरकोट के किले में शाही वंश का इतिहास एक रेशमी कपड़े पर लिखा गया था, जिससे त्रिलोचन पाल के पूर्वजों के कार्यों पर प्रकाश पड़ता[४४] था। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इस क्षेत्र में मध्यकालीन यूरोप की भाँति इतिहास-लेखक की अपनी शैली का विकास हुआ था। इसके लिए कश्मीरी प्रभाव मूल कारण रहा होगा, जहाँ इतिहास-लेखन

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

की सही परम्परा जन्मी थी। कल्हण की राजतरंगिणी यहाँ के शिक्षित, पंडितों को अवश्य मालुम रही होगी, क्योंकि उस क्षेत्र के अनेक पंडित इस क्षेत्र में आते-जाते[१५] थे। कश्मीर से अन्य अनेक विद्वान कांगड़ा और चम्बा में निवास कर रहे थे। अतएव उनके माध्यम से वहाँ की इतिहास-लेखन परम्परा का यहाँ सूत्रपात और विकास होना स्वाभाविक था। हर्षोतर काल में भारत में चरित्र-ग्रन्थ लिखने की परम्परा चल पड़ी थी, इस शैली से भी यहाँ के लोग अपरिचित नहीं रहे होंगे। अतएव इस क्षेत्र में वंशावलियाँ लिखी गईं, जिनकी हस्तलिपियाँ एक से दूसरी पीढ़ी को मिलती रहीं। कांगड़ा, चम्बा, कुल्लू तथा हिमाचल के अन्य भागों में इसमें विकास हुआ और मध्यकाल में इसीलिए क्षेत्रीय हिन्दी भाषा में भी इनकी रचना हुई।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

7

साँतवाँ अध्याय

राज्य

(ब) राज्य, समाज एवं अर्थ-व्यवस्था

राज्य का स्वरूप—

हिमाचल प्रदेश में प्राचीनकाल में राज्य का क्या स्वरूप था, यह छठीं शताब्दी ई० पू० के बाद से मालूम होने लगता है। हमने पहले ही लिखा है कि पाणिनी ने त्रिगर्तष्ठ का उल्लेख किया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि पाँचवीं शदी ई० पू० में इस क्षेत्र में कई राज्य थे। और सब को मिलाकर सम्भवतः एक संघराज्य की स्थापना की गई थी जिसका प्रमुख उद्देश्य बाह्य शक्तियों का सामना करना रहा होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। ये सम्भवतः गणतन्त्रात्मक राज्य थे। ऐसे राज्य उस समय के उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों में भी पाये जाते थे, जिनके विषय में हमें बौद्ध साहित्य से जानकारी मिलती है। पाणिनि ने अपने काल के अन्य अनेक गणराज्यों का उल्लेख[४६] है, जो पश्चिमोत्तर भारत में स्थित थे। इनमें से अनेक सिकन्दर महान के समय में भी इस क्षेत्र में विद्यमान थे। ये राज्य आज के गणतन्त्र राज्य-जैसे न थे। क्योंकि राज्यसत्ता कुछ विशेष परिवारों के ही हाथ में होती थी और राज्य विशेष जाति या वर्ग के लोगों या कुल्लों से बना होता था। अतः इन्हें अर्द्धगण राज्य कहना अधिक उचित[४७] होगा। गणप्रमुख ही राज्य का प्रधान होता था और अन्य कुल्ल-प्रमुख उसके सहायक होते थे। उनकी सहायता से कोई

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सभा-जैसी इकाई बनती थी, जो केन्द्रीय सरकार के रूप में काम करती थी। ध्यातव्य है बिहार-क्षेत्र में लिच्छवियों का एक ऐसा ही गणराज्य था, जिसकी केन्द्रीय संस्था को बौद्ध साहित्य में 'सन्धागार' कहा गया[४८] है। इसी प्रकार के ग्यारह या बारह गणराज्य पूरे उत्तर भारत में छिटके हुए थे, जो धीरे-धीरे 16 महाजनपदों के स्थान पर चार राजतन्त्रात्मक राज्यों-कोशल, मगध, वत्स और अवन्ति—में समाहित कर लिए[४९] गये। अन्त में चौथी शताब्दी ई० पू० में इन्हीं से मगध राज्य का आगे विकास हुआ और फिर उससे उठकर वह मगध-साम्राज्य के रूप में विकसित हुआ।

इस क्षेत्र में भी सम्भवतः कुछ समय के लिए गणराज्य-व्यवस्था के स्थान पर राजतन्त्रात्मक राज्य की नींव पड़ी, जिसमें त्रिगर्त-राज्य प्रमुख था[५०]। बाद में मौर्यों के पतन के बाद सम्भवतः यहाँ के गणराज्य पुनः विकसित हुए, जिनमें हम कुदुम्बरों, कुलूतों तथा कुनिन्दों के राज्यों का उल्लेख कर सकते[५१] हैं। ये मूलतः राजतन्त्रात्मक न थे। उनका स्वरूप कुछ अर्द्धगणतन्त्रात्मक लगता है, क्योंकि उनका राजा एक अतिविशेष का प्रधान होता था, जैसा कि उनके सिक्कों पर लिखे अभिलेखों से मालूम होता है। उदाहरणार्थ वीरयश को कुलूतों का राजा कहा गया है और अमोधभूति कुनिन्दों के राजा के रूप में वर्णित हैं। वैसे गणतन्त्रात्मक राज्य व्यवस्था में प्रशासक को राजा या महाराजा नहीं कहते थे। बाद में राजतन्त्रात्मक व्यवस्था का प्रभाव पड़ने के कारण कुछ गण-प्रमुखों ने सम्भवतः राजा की उपाधि धारण करना प्रारम्भ किया। सम्भवतः कुलूतो का प्रधान प्रशासक इसीलिए 'राजा' रूप में वर्णित है[५२] और यौधेयों के प्रधान प्रशासक 'महाराजा' के रूप में। यौधेय गण-राज्य में प्रधान प्रशासक का चुनाव होता था। वह सरकारी सिक्कों पर अपना नाम नहीं लिखा सकता था। इसीलिए यौधेयें के सिक्कों पर यौधेय गणस्य जयः'' अभिलेख उत्कीर्ण है। वही राज्य का प्रधान सेनापति होता था[५३]। इन गणप्रमुखों का कैसे चुनाव होता था, यह कहना कठिन है। सम्भवतः विशिष्ट परिवार के प्रधान ही इसमें भाग लेते थे, और अधिक जमीन वाले लोग तथा धनी व्यापारी ऐसे गण-प्रमुख के चुनाव में अधिक निर्णायक सिद्ध होते थे। इन राज्यों के स्वरूप एवं प्रकृति के विषय में हमें अधिक ज्ञात नहीं है। सेना में सभी परिवार के लोगों को भरती होना पड़ता था और राज्य-प्रशासन में स्थान ग्रहण करने के लिए व्यक्तिगत पौरुष और विशेषताएँ अधिक जिम्मेदार थीं, न कि किसी परिवार-विशेष में जन्म[५४] लेना।

इनमें से कुछ राज्य नियमतः धर्मसापेक्ष थे[५५]। उदाहरणार्थ, कुनिन्दों तथा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

उदुम्बरों के गणराज्य छत्रेश्वर शिव को समर्पित किये गये थे, जैसा कि उनके सिक्कों पर लिखे लघु अभिलेखों से ज्ञात होता है। इन राज्यों की रक्षा का भार दैवेश्वर शिव पर अधिक था। राज्य की तरफ से देवों के मन्दिर बनवाये जाते थे। तभी तो एक मन्दिर का रूप उदुम्बरों के सिक्कों पर प्रदर्शित किया गया है। फिर भी, ये राज्य या उनके गण-प्रशासक अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। परिणामतः सभी धर्म-सम्प्रदाय समान रूप से विकसित हो रहे थे। शिव, शक्ति तथा कार्तिकेय की पूजा के साथ-साथ सूर्य की भी पूजा की जाती थी और बौद्धधर्म भी साथ-साथ विकसित हो रहा था।

बाद में भारत के अन्य भागों की तरह इस क्षेत्र में भी राज्य मूलतः राजतन्त्रात्मक हो गया। मौर्यों तथा शुंगों की राज-पद्धति तथा कौटिल्य द्वारा वर्णित राजनीति का प्रभाव यहाँ पड़ा।[५६] कुषाण-राजपद्धति ने भी इसे प्रभावित किया[५७]। फलतः गणराज्यों के स्थान पर जन्म के आधार पर निर्धारित राज्यों की उत्पत्ति यहाँ भी हुई, जैसा कि महाभारत में वर्णित सुशर्मपुर के राजाओं के उल्लेख से मालूम होता है[५८]। यहाँ से मिली विभिन्न क्षेत्रीय वंशावलियों से भी यही मालूम होता है। गुप्त काल में उत्कीर्ण सलाह (कुल्लू) के अभिलेख में भी ऐसी ही राजपद्धति का उल्लेख है और चम्बा कुल्लू तथा काँगड़ा के अभिलेखों में भी जन्म के आधार पर राजतन्त्रात्मक उत्तराधिकार का वर्णन मिलता है। बाद में यहाँ भी राजा के दैवी-सिद्धान्त के पालन की प्रथा चल पड़ी और राजा ईश्वर का अवतार माना[५९] जाने लगा। ऐसा मध्यकालीन अभिलेखों से ज्ञात है।

गुप्तकाल से इस क्षेत्र में सामन्तवाद के प्रचार के प्रमाण मिलने प्रारम्भ होते हैं, जो शक तथा कुषाणों के काल में प्रचलित क्षत्रप-प्रणाली से भी प्रभावित मालूम होती है, सलारू से प्राप्त अभिलेख में, जो सम्भवतः पाँचवीं शताब्दी ई० में लिखाया गया था, ईश्वर कुस्तिन के पुत्र चन्द्र हस्तिन का वर्णन मिलता है, जो संभवतः गुप्त सम्राटों के अधीन इस क्षेत्र में शासन करने वाला एक सामन्त-परिवार[६०] था। सातवीं शताब्दी में उत्कीर्ण निर्मण्ड ताम्रपत्र में भी महासामन्त समुद्रसेन का उल्लेख है, जो सम्भवतः हर्षवर्द्धन के अधीन इस क्षेत्र का एक शक्तिशाली सामन्त प्रशासक था। इस अभिलेख में भूमि तथा ग्राम के दान का भी वर्णन है, जिसे कुछ इतिहासकारों ने सामन्त-प्रथा की उत्पत्ति और उसके विकास का कारण माना है। चम्बा के नरेश तथा काँगड़ा के शासक ऐसे ही सामन्त थे, जो उत्तर भारत की केन्द्रीय सत्ता के शक्तिशाली होने पर उसके अधीन शासन करते थे, उसे भेंट तथा टैक्स देते थे और उसके कमजोर होने पर स्वतन्त्र हो जाते[६१] थे। आठवीं शताब्दी के बाद जब मैदानी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

भागों में सामन्तशाही राजनीति का विकास और विस्तार हुआ, तो वह राजपद्धति यहाँ भी बलवती हो गई, परिणामतः राजानक, रानक तथा ऐसे अन्य उपाधियों को धारण करने वाले अनेक सामन्त शासक इस क्षेत्र में विकसित होने लगे और बारहवीं शताब्दी ई० के बाद अनेक क्षेत्रीय प्रशासक राजा बन गये, जिन्होंने अपने से अधिक शक्तिशाली नरेश को जहाँ एक तरफ सेना की सेवा, भेंट तथा कर प्रदान किया, वहीं दूसरी तरफ अपने अधीन ऐसे अनेक छोटे-छोटे राजाओं को विकसित होने का अवसर दिया, जो उन्हें समय पड़ने पर सेना की मदद देते थे और समय-समय पर भेंट तथा वार्षिक कर प्रदान[६२] करते थे।

राज्य-प्रशासन—

राज्य-प्रशासन में भारत के अन्य भागों की तरह राजा ही प्रमुख अधिकारी होता था, जो मूलतः जन्मगत होता था।[६३] वही सेना का प्रधान अधिकारी, प्रधान प्रशासक और प्रधान न्यायाधीश होता था। परिवार के अन्य सदस्य जैसे राजकुमार किसी न किसी रूप में प्रशासन में उसकी सहायता करते थे। वैसे इसके लिए एक मन्त्रिपरिषद भी अवश्य रही होगी, जैसा कि भारत के मैदानी भागों में होता था। इसमें पुरोहित के अतिरिक्त सेना, वित्त-व्यवस्था, वैदेशिक नीति तथा प्रजा के धर्म एवं सम्पत्ति की देखरेख के लिए कई मन्त्री होते थे। दुर्भाग्य है कि यहाँ से प्राप्त अभिलेखों में ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता है, जिससे हम इन प्रश्नों पर पूर्णरूपेण और निश्चय के साथ कुछ कह सकें। कुल्लू से प्राप्त एक मध्यकालीन अभिलेख में मन्त्रि परिषद का उल्लेख है और उसमें एक मन्त्री का भी वर्णन किया गया है। वैसे यहाँ की राजनैतिक परम्पराएँ मैदानों से भिन्न न थीं[६४] और प्रशासन मूलतः वैसा ही था, जैसा कि गुप्त-वर्द्धन वंशीय सम्राटों के साम्राज्य में स्थित मैदानों में था। वैसी ही राज्य व्यवस्था एवं प्रशासन-प्रणाली हर्षवर्द्धन के राज्यकाल में और बाद में प्रतिहारों के शासन-काल में चलती रही।

यहाँ से प्राप्त निर्मण्ड ताम्रपत्र में, जो सातवीं शदी ई० में सम्भवतः हर्षवर्द्धन के अधीन महासामन्त महाराज समुद्रसेन के काल में लिखाया गया था, दूत नामक एक अधिकारी का उल्लेख[६५] है। इसके साथ-साथ यहाँ चाट और भट पुलिस अधिकारी भी नियुक्त किये जाते थे, जो जनता की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होते थे। वे वहाँ की प्रजा की सम्पत्ति और उनके जान व माल की देख भाल करते थे।

सरकारी आय और व्यय के प्रमुख स्रोत—

इस प्रकार कुछ अधिकारियों के माध्यम से सरकारी कार्य किये जाते थे।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

परन्तु प्रशासन का प्रमुख आधार राजकोष था, जिसे कई साधनों से भरा जाता था।[६६] सरकारी कर इसमें प्रमुख था, जो सिक्कों और चीजों-दोनों के रूप में वसूला जाता था। इस व्यवस्था को सुचारुरूप से चलाने के लिए अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। जंगल, खानें, नदियाँ तथा सरकारी जमीन सरकारी आय के अन्य प्रमुख साधन थे। छोटे-छोटे राजाओं की अपनी जमीनें होती थीं, जिनकी उपज से भी सरकारी खजाना भरा जाता था। अधीन सामन्तों द्वारा भेंट में दिया गया धन तथा कीमती वस्तुएँ राजकीय आय के अन्य प्रमुख स्रोत थे। समय-समय पर दूसरे राज्यों पर किये गये आक्रमण में लाये गये धन सोने-चाँदी आदि से भी सरकारी खजाने प्रायः भरे जाते थे।

खेतों का उपज की कुछ अंश राजकीय कोष का प्रधान स्रोत था। प्राचीन-काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में यह सरकारी खजाने की आय का प्रमुख साधन माना था। यहाँ यह उपज का छठांश था या चतुर्थांश, यह कहना कुछ कठिन है। असम्भवतः देश और काल के अनुसार राजस्व का यह स्रोत घटता-बढ़ता रहता था। बाहर आने-जाने वाली वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता था। काँगड़ा क्षेत्र में ऐसा कर सिक्कों में लिया जाता था। कीर ग्राम के शासक लक्ष्मणचन्द्र के ऐसे ही एक सरकारी दफ्तर का उल्लेख बैजनाथ प्रशस्ति में किया गया है। इसे यहाँ 'मण्डपिका' कहते थे। इस दफ्तर से कभी-कभी दान भी दिये जाते थे। राजा लक्ष्मणचन्द्र ने इससे दो द्रम्म प्रतिदिन वहाँ के शिव-मन्दिर में खर्च के लिए दान-स्वरूप देने का वचन दिया था। इस प्रशस्ति में लक्ष्मणचन्द्र की पाँच-छः पुश्तों का उल्लेख है, जो कीर ग्राम नामक छोटे-से राज्य-इकाई के क्षेत्रीय शासक थे। अतः यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि मण्डपिका नामक दफ्तर राज्य की सरकारी आय का एक प्रमुख साधन बहुत प्राचीन काल से प्रथा में था[६७]। ध्यातव्य है कि राजकीय आय का यह साधन मौर्यों, कुषाणों, गुप्तों तथा वर्द्धनों के खजाने के लिए आमदनी का एक प्रमुख स्रोत था।

कुल्लू-क्षेत्र में स्थित निर्मण्ड नामक स्थान से प्राप्त ताम्रपत्र में उद्रङ्ग नामक कर का उल्लेख है, जो गुप्तकाल में राजकीय खजाने का एक प्रमुख[६८] स्रोत था। इस क्षेत्र में भी क्रय और विक्रय पर तरह तरह के कर लगाये गये थे, ऐसा अनुमान करना तर्क सम्मत है। इसी ताम्रपत्र में तालपुर नामक कस्बे का उल्लेख है, जिसके व्यापारी ने उद्रङ्ग दान में दिया था। सरकारी आय के अन्य साधनों में राजकीय भूमि और उससे वार्षिक उपज प्रमुख था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राजा के पुत्र, तथा रानियों के भी अपने-अपने कुछ खेत होते थे, जिनमें मजदूरों को लगा कर काम

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

करवाया जाता था। ऐसी सम्पत्तियों की आमदनी यद्यपि सरकारी खजाने में न जाकर राज-परिवार की वैयक्तिक सम्पत्ति होती थी, फिर भी राजाओं के धन में इससे काफी वृद्धि होती थी। बैजनाथ[६९] प्रशस्ति में उल्लेख मिलता है कि राजा लक्ष्मणचन्द्र की धर्मपत्नी लक्षणिका ने शिव के लिए कुछ भूमि दान में दिया था। प्रलम्ब नामक ग्राम में उसके कुछ अपने खेत थे, जिनसे वर्ष में काफी अन्न मिलता था। निर्मण्ड ताम्र-पत्र में वर्णन मिलता है कि महाराज समुद्रसेन की माता मिहिर लक्ष्मी ने मिहिरेश्वर शिव के मन्दिर के लिए केवल एक ग्राम ही नहीं दान में दिया था, वरन् उसने कुछ उपजाऊ जमीनें भी दान में दी थी, जिससे मन्दिर का खर्च चलाया[७०] जाता था।

अन्य सरकारी आय-साधनों में वन, घास के मैदान, पशु-सम्पदा, लकड़ी, तथा जमीन के नीचे उपलब्ध खनिज-पदार्थ थे। निर्मण्ड ताम्र-पत्र में ग्राम की सम्पत्तियों में जलस्रोत तथा 'द्वेस भूमि' का उल्लेख है, जो आय के विभिन्न माने[७१] जाते थे।

सरकारी खजानों के व्यय के साधनों में सेना का संगठन प्रमुख था। पैदल सेनानियों का खर्च, घोड़ों, हाथियों तथा अन्य पशुओं के खरीदने तथा खिलाने का खर्च और सेना के अन्य बड़े अधिकारियों के व्यय सरकारी खर्चों में प्रमुख थे। इसी प्रकार राज परिवार का वैयक्तिक खर्च भी कम न होता था। सामन्तशाही प्रथा में राजमहल और दरबारी शान शौकत को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर रखना एक सामान्य बात थी। इसी प्रकार मन्दिरों तथा बौद्ध बिहारों का निर्माण भी शाही खजाने से किया जाता[७२] था। प्रजा की भलाई के लिए भी अनेक कार्य किये जाते थे। हमने पहले ही लिखा है कि कांगड़ा में सिंचाई के लिए तालाब खोदवाने का उल्लेख एक मौर्य-कालीन अभिलेख में किया[७३] गया है। कल्हण की राजतरंगिणी में वर्णन मिलता है कि सिंचाई के लिए नदियों का पानी प्रयोग में लाया जाता था और इसके लिए वहाँ से पानी उठाने के लिए कश्मीर में कुछ मशीनों का प्रयोग किया जाता था, जिसमें चक्राकार मशीनें प्रयोग में लाई जाती थीं। अतः निकटस्थ हिमाचल में कृषि की व्यवस्था के लिए सरकार ऐसा करती रही होगी, ऐसा सोचना तर्क से दूर नहीं लगता है। इसी प्रकार सड़कों और पुलों के निर्माण में भी सरकारी व्यय अभीप्सित थे और सरकारी नौकाओं तथा वाहनों के बगैर प्रशासन चलाना कठिन था। आपत्तियों के काल में किसानों की सहायता करना सरकार का धर्म[७४] था। अतिवृष्टि और अना-वृष्टि के कारण आये दिन अकाल आते ही थे। इस क्षेत्र में घनघोर तुषारपात फसलों

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

के विनाश का दूसरा प्रमुख कारण था। शत्रुओं के आक्रमण से भी समाज की साधारण आर्थिक दशा दयनीय हो जाती थी। ऐसे कालों में सरकार किसी न किसी रूप में जन-साधारण की आर्थिक सहायता करती थी। इसी प्रकार धार्मिक विकास में भी सरकार के कुछ अफसर, अधिकारी या व्यक्ति मन्दिरों तथा ब्राह्मणों को अग्रहार दान देते थे। प्राचीनकाल में ऐसे कार्य भी व्यय के प्रधान स्रोत माने जाते थे। शिक्षा के क्षेत्र में सरकार को कुछ न कुछ व्यय करना ही पड़ता था। विभिन्न स्तर के विद्वानों और कलाकारों को सरकार हर प्रकार का प्रश्रय देती थी और उनके खर्च के लिए वह हर प्रकार की सहायता करती थी।

समाज

समाज का संगठन और स्वरूप—

यहाँ का समाज, जैसा कि हमने पहले ही लिखा है कई प्रकार की नस्लों तथा जातियों के लोगों से बना था। इनमें एक तरफ सीमावर्ती क्षेत्रों में मंगोल नस्ल के लोगों का योगदान था, तो दूसरी तरफ नीचे से आये आर्यों तथा भूमध्य सागरीय नस्लों के लोगों का। यहाँ की कोल, किरात तथा रवका नामक आदि जातियों के लोग मूलतः समाज के विकास में योगदान[७५] दिये थे। इन सब का सम्मिलित रूप ही यहाँ की सामाजिक रूपरेखा की आधार-शिला थी। बाद में भारत के विभिन्न मैदानी भागों तथा कश्मीर और मध्य पर्वतीय भागों से आये लोग, जिनमें हर प्रकार के वर्गों के लोग थे, यहाँ के समाज के अंग बन गये। इन सभी की मान्यताओं का एक साथ विकसित रूप ही यहाँ का प्राचीन समाज[७६] था।

इसमें परम्परागत भारतीय समाज का वर्गीकरण तो था ही, जिसे हम ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कहते हैं। बाद में शूद्रों के कई वर्ग बन गये, जिनमें विभिन्न प्रकार से कर्मों में लगे लोग दूसरे-दूसरे सामाजिक वर्गों में विभाजित हो गये। जैसे चर्मकार, कुम्भकार, नापित आदि। सामाजिक वर्ग-विभाजन में हाथ से काम करने वाले लोगों ने अधिक योगदान दिया। इसी प्रकार धीरे-धीरे दासों की प्रथा भी यहाँ के समाज में[७७] आई। वे बड़े-बड़े जमींदारों के खेतों में तथा राजाओं या अन्य विशिष्ट वर्गों के परिवारों में काम करते थे। उनकी दशा यहाँ प्रायः वैसी ही थी, जैसा कि भारतीय मैदानी भागों में पाई जाती थी। वैसे एक अभिलेखीय (निर्मण्ड ताम्रपत्र) साक्ष्य से मालूम होता है कि यहाँ दासों को कुछ लोग अपनी सम्पत्ति का एक भाग

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

समझते थे । अतः उन्हें दान में भी दिया जा सकता था। उनकी दशा अतः बड़ी दयनीय थी। यहाँ के किसानों का एक वर्ग प्रायः धनी नहीं होता था, क्योंकि प्राकृतिक विपत्तियाँ तथा राजकीय वर्गों के अत्याचार उनकी गरीबी के मूल कारण थे। सामन्तशाही युग में भारत के सभी भागों में सामान्य कृषकों की प्रायः यही दशा थी।

समाज के विशिष्ट वर्गों में राज परिवारों, विभिन्न धनी व्यापारियों, कारीगरों विद्वानों तथा राजाओं के आश्रय में रहने वाले अन्य लोग और अधिकारी थे। उनका जीवन स्वभावतः सुलभ और ऊँचा था। काँगड़ा, कुल्लू, चम्बा तथा हिमाचल के अन्य भागों में विकसित नगरों में ऐसे अनेक व्यापारी, अधिकारी तथा विद्वान रहते थे, जिन्हें समाज के अभिजात वर्गों में गिना जा सकता है। यहाँ बने अनेक मन्दिरों में रहने वाले पुरोहित लोग भी समाज के उच्च लोगों में गिने जाते थे। ब्राह्मणों में कुछ ज्योतिषी तथा पुरोहित का कार्य करते थे, अतः समाज में उन्हें ऊँचा स्थान दिया गया था। यहाँ की बैजनाथ प्रशस्ति में ऐसे कुछ ज्योतिषियों एवं ब्राह्मणों का[७८] उल्लेख है, जिनके पास अधिक जमीनें होती थी। इनमें से कुछ कश्मीर से आये थे और कुछ उत्तर भारतीय नगरों से। काशी से आये आत्रेय गोत्र के कुछ ब्राह्मण काँगड़ा के प्रशासकों की छत्रछाया में रह रहे थे। वे छः दर्शनों में पारंगत होते थे और यज्ञ-क्रियाओं के ज्ञाता तथा वेदान्त दर्शन में दक्ष थे। संस्कृत भाषा में कविता करने वाले अनेक कवि भी काँगड़ा, कुल्लू तथा चम्बा की घाटियों में रहते थे, जिन्हें समाज में अधिक ऊँचा स्थान दिया जाता था। निर्मण्ड लेख में अथर्ववेद में पारंगत पंडितों का उल्लेख है, जो दान के अधिकारी समझे जाते[७९] थे। यह सम्पूर्ण क्षेत्र ऊँचे प्रकार के ऋषियों के निवास-स्थान के रूप में सदैव प्रसिद्ध था। इसमें से कुछ का बाद में दैवीकरण भी किया गया और उनके लिए मन्दिरों का भी निर्माण किया गया।

समाज के अभिजात वर्गों में हम उन अनेक व्यापारियों को गिन सकते हैं, जो यहाँ के विभिन्न नगरों में रहते थे। इनमें से कुछ का उल्लेख बैजनाथ-प्रशस्ति में किया गया है, जो कीरग्राम, नवग्राम तथा सुशर्मपुर में[८०] रहते थे। ऐसे ही अनेक व्यापारी कुल्लू, चम्बा तथा हिमाचल प्रदेश के अन्य व्यापारिक केन्द्रों में निवास करते थे। वे मन्दिरों का निर्माण कराते थे और पुराने मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए विभिन्न प्रकार के दान देते थे।

निर्मण्ड ताम्रपत्र में तालपुर नामक कस्बे के एक निवासी का उल्लेख मिलता

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

है, जिसका नाम कम्क[८१] था। उसने कपालेश्वर शिव के लिए उद्रंग (टैक्स) दान में दिया था। वहीं के निवासी दिन्न तथा सुलभक नामक भूमिपतियों ने मन्दिर के लिए कुछ जमीनें दी थीं यहाँ के अन्य अभिजात लोगों में लेखक तथा विद्वान् उद्योतर्क का उल्लेख किया जा सकता है, जिसे इस ताम्रपत्र का रचयिता कहा गया है। वह वहाँ की सभा का प्रमुख सभासद था। अनेक प्रकार के कार्यों में उसकी सलाह ली जाती थी।

हिमाचल के प्राचीन अभिजात वर्गों में विभिन्न प्रकार के कलाकारों, शिल्पियों, वास्तुकारों तथा अन्य प्रकार के कारीगरों का उल्लेख किया जा[८१] सकता है। इस क्षेत्र में प्रतिमाओं तथा मन्दिरों के निर्माता कारीगर भी रहते थे। काँगड़ा ज्वालामुखी-प्रशस्ति में सूगिक नामक शिल्पी का उल्लेख है, जो काँगड़ा में १५वीं शदी में रहता था। वह पुस्तर खण्ड पर अभिलेख उत्कीर्ण करने में दक्ष[८३] था। इस क्षेत्र का दूसरा प्रसिद्ध शिल्पी नायक था, जिसके पिता का नाम अस्रिक था। वह सुशर्मपुर नामक नगर में रहता था, जिसे बाद में कोट काँगड़ा कहा गया। ऐसी सूचना हमें बैजनाथ-प्रशस्ति में मिलती[८४] है। धोधुक द्वितीय नामक कारीगर का भी उल्लेख इसी अभि-लेख में मिलता है। ये लोग मन्दिर तथा अन्य प्रकार के भवनों के निर्माण में अत्यन्त कुशल होते थे। समाज में उनका स्थान बड़ा ऊँचा होता था। ऐसे ही कुछ कलाकारों का उल्लेख चम्बा से मिली प्राचीन मूर्तियों की वेदिका पर उत्कीर्ण अभिलेखों में किया गया[८५] है। इनमें गुग्गा नामक शिल्पी उल्लेखनीय है जो मूर्ति बनाने में अत्यन्त कुशल था। उसने चम्बा की प्राचीन मूर्तियों तथा मन्दिरों का निर्माण किया था। लगता है कि हिमाचल के प्राचीन राजघरानों में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

भारत के अन्य भागों की तरह परिवार सामाजिक संगठन का सबसे छोटा रूप था। सीमान्ती क्षेत्रों में समाज सम्भवतः मातृसत्तात्मक था, जिसमें प्रधान महिला घर-गृहस्थी का आधार थी। अन्य क्षेत्रों में पितृप्रधान परिवार थे, जिनमें पिता घर का मुखिया होता था। एक परिवार में पिता, माता, सभी पुत्र और पुत्रियाँ, चाचा-चाची, ताऊ-भतीजे तथा पितामह आदि एक साथ रहते थे। सबकी एक ही सम्पत्ति होती थी। वे एक ही घर में रहते थे और एक रसोई में बना खाना खाते थे। इस तरह इस क्षेत्र में भी संयुक्त परिवार का प्रचलन था। बैजनाथ-प्रशस्ति में लिखा है कि मन्युक और आहुक नामक दो व्यापारी सगे भाई थे और संयुक्त परिवार के सदस्य[८६] थे। उनकी एक ही सम्पत्ति थी, जिनमें मकान, दूकानें, मशीनें तथा खेत आदि सम्मिलित थे। पति-पत्नी तथा भाई आदि मिलकर धर्म-कार्य करते थे और

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

दान आदि देने में भी सभी समान रूप से सम्मिलित होते थे ।

स्त्रियों की दशा—

समाज में स्त्रियों का स्थान भारत के अन्य भागों की तरह[८७] था । केवल सीमान्ती क्षेत्रों में स्त्री सामाजिक कार्यों में तथा अर्थ-व्यस्वथा में अपने पति से आगे रहती थी । सम्भवतः इसीलिए साहित्य में इन क्षेत्रों में प्रचलित स्त्री-राज्य का उल्लेख किया गया है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन क्षेत्रों में स्त्रियाँ आज भी खेती करती हैं तथा जीविकोपार्जन में अपने पति से अधिक कर्मशील और उत्साही रहती हैं, और पुरुष घर में या बाहर आराम से जिन्दगी बिताने में रुचि रखता है ।

प्राचीनकाल में यहाँ स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होती थीं, क्योंकि शिक्षा के लिए दूर-दूर जाना पड़ता था । हो सकता है कि उच्चवर की कुमारियाँ और महिलायें घर के कार्यों में दक्ष होती थीं और उनमें से कुछ शायद पढ़ी-लिखी भी होती थीं । उनके विवाह की प्रथा मैदानों-जैसी थी । पिता पुत्रियों के लिए वर की खोज करता था और उचित वर मिलने से उनका विवाह कर दिया जाता था । यहाँ राक्षस, पैशाच तथा अन्य प्रकार के विवाह भी प्रचलित रहे होंगे, जिनमें लड़कियों को छीनकर, खरीदकर या शराब आदि पिलाकर विवाह बन्धन में बाँध लिया जाता था । सगोत्रों में विवाह सम्बन्ध नहीं किये जाते थे । सीमान्ती क्षेत्रों में दूसरे समाज की कन्याओं को स्वीकार किया जाता था और वहाँ अन्तर्जातीय विवाह नियम के बाहर न थे । अनुलोम विवाह सामाजिक नियमों के अनुसार थे, लेकिन प्रतिलोम विवाह भी होते रहे होंगे, ऐसी सम्भावना है । वैसे इन प्रश्नों का सही उत्तर देने के लिए हमारे पास साक्ष्यों का अभाव है । कुछ क्षेत्रों में बहुपतित्व की प्रथा अवश्य थी, जैसा कि जनश्रुतियों में पाण्डव-कथाओं के प्रचलन से ज्ञात होता है, जिनके अनुसार द्रौपदी के पांच पति थे । बहुपत्नीत्व की प्रथा तो प्रचलित थी ही । एक राजा के कई रानियाँ होती थीं । राज-घरानों में कुछ दासियाँ भी रखी जाती थीं, जिनमें कुछ को राजाओं की रखैल भी बनना पड़ता था । पूर्व मध्यकाल में इसीलिए समाज में स्त्रियों की दशा गिरती[८८] गई । बहुपत्नीत्व की प्रथा की वृद्धि हुई । मन्दिरों में देव-दासियाँ रखने की प्रथा घर कर गई । बाल-विवाह की प्रथा का भी प्रचलन हुआ और समाज में परिणामतः सती-प्रथा का भी अधिक प्रचार हुआ । मध्यकालीन समाज में इसी कारण बाद में स्त्रियों की दशा और भी दयनीय हो गई । यहाँ से प्राप्त अगणित सती-स्मारकों से यह बात सिद्ध होती है । यहाँ मृत पति के साथ न केवल उसकी पत्नियाँ ही सती होती थीं,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

वरन्-उसके साथ दासियाँ तथा परिचारिकायें भी अनुमरण-व्रत का पालन करती थीं। इसके पीछे समाज में प्रचलित अशिक्षा, धार्मिक रुढ़ियाँ, ढकोसले और अन्धविश्वास जितने जिम्मेदार थे, तत्कालीन समाज में प्रचलित आर्थिक व्यवस्था भी उतनी ही जिम्मेदार थी, जिसमें स्त्री-पुरुष पर पूर्णरूपेण आधारित थी और पति के मृत्यु के बाद उसकी सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा का कोई प्रबन्ध न था। बहुत कम दशाओं में वह पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी अतः समाज में उचित जीवन जीने का कोई सहारा न होने के कारण मृत पति के साथ जलकर मरना ही उनके लिए एक मात्र मार्ग था। धीरे-धीरे इस प्रथा को पौराणिक धर्म का एक अङ्ग बना दिया गया। वैसे कुछ विधवायें जीना भी चाहती थीं और उन्हें सती होने के लिए मजबूर नहीं किया जाता था। मध्यकालीन हिमाचल में विधवाओं के विक्रय की सूचना मिलती है, जो नियम न होकर समाज में एक विशिष्ट घटना मात्र ही स्वीकृत होनी चाहिए।

स्त्रियाँ घर और समाज की शोभा होती थीं। पति के लिए जहाँ वे उसके सम्पति की प्रदर्शन होती थीं, वहीं वे अपनी सुन्दरता तथा कटीली-कटाक्षों के कारण उसके हृदय की अधिकारिणी थीं। उन्हें आभूषणों का बड़ा शौक था, जैसा कि भारत के अन्य भागों की औरतों में भी था। उनके बालों की विभिन्न सज्जा-शैली, कानों तथा गले के आभूषण, जो कई प्रकार के होते थे, और हाथों तथा पैरों के रंगीन गहनें प्राचीन स्त्री-मूर्तियों में देखे जा सकते[६०] हैं। वैसे इस क्षेत्र की कुमारियों तथा महिलाओं के स्वस्थ गुलाबी गाल, काले घने केश-पाश, बड़ी-बड़ी कमल-जैसी आँखें, कमसिन हिरणियों-जैसी आँखों के हावभाव तथा नदी की लहरियों-जैसी चंचल कटाक्ष, लाल गुलाब के फूल-जैसा गौर बदन तथा झरते निर्झर-जैसी मधुर मुस्कान, और खुले मौसम-जैसा उनका व्यवहार उनके आकर्षण के विशेष भाग थे। इसीलिए प्राचीन साहित्य में किन्नरियों तथा कुलूत-बालाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है और चम्बा की प्राचीन मूर्तियों में उनके सौन्दर्य का अद्भुत निदर्शन है। इसीलिए आज भी इस प्रदेश की जनश्रुतियों, कथाओं तथा लोकगीतों में उनका बहुविध वर्णन मिलता है, जिनमें पति या प्रेमी उनका गुलाम नजर आता है।

सामान्य जन-जीवन—

प्राचीन साहित्य में यहाँ के पुरुषों की भी बड़ी चर्चा की गई है। वे यदि देखने में हृष्ट-पुष्ट होते थे तो लड़ने में किसी से कम न थे। स्वभावतः वे वीर होते थे और

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लड़ने-भिड़ने में रुचि रखते थे। वे कुश्ती के बड़े शौकीन होते थे, जैसा कि हिमाचल की कुछ प्राचीन मूर्तियों से मालूम होता है, जहाँ कुश्ती लड़ते हुए लोगों का प्रदर्शन बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया[६२] है। उनकी बहादुरी का भी प्रदर्शन प्राचीन मूर्तियों में बड़ी बारीकी के साथ किया गया है। ह्वेनसाँग के अनुसार कुल्लू के लोग शरीर से सख्त और भारी होते थे और देखने में साधारण थे। उनका स्वभाव कठोर और भयानक था तथा न्याय और वीरता उनके बहुत प्रिय[६२] थे। काँगड़ा के लोगों के स्वभाव पर कल्हण की राजतरंगिणी से प्रकाश पड़ता[६३] है।

यहाँ के लोग स्वभावतः धार्मिक होते थे। विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा में उनका विश्वास था। स्त्री-पुरुष दोनों प्रायः धर्मभीरु होते थे और धर्माचरण में विश्वास रखते थे। तिथि-त्योहारों में उनको रुचि थी। समय-समय पर मन्दिरों तथा तीर्थों में जाते थे तथा देवों के लिए माला आदि अर्जित करते थे। वे व्रत और उपवास रखते थे तथा धार्मिक मेलों में भाग लेते थे। वे ललित-कलाओं में भी शौकीन थे। (देखिये चित्र २१ और २२) नृत्य, गीत, तथा संगीत से उन्हें प्यार था, क्योंकि यहाँ के रमणीय झरने, पहाड़ी नदियों की कलकल ध्वनि और हरहराते जंगली वृक्षों से निकलती सुरम्य संगीत उन्हें उत्साह प्रदान करते थे। चारों ओर बिखरा हुआ सुलभ प्राकृतिक सौन्दर्य यदि कुछ को चित्र बनाने के लिए उत्साहित करता था, तो कुछ को कविता लिखने की प्रेरणा देता था। सम्भवतः इसीलिए यहाँ अनेक विद्वानों, लेखकों, कवियों और कलाकारों का जन्म हुआ, जिनके विषय में सूचनायें हमें यहाँ के प्राचीन[६४] अभिलेख से मिलती है और जिनकी कला-निपुणता का दर्शन हमें यहाँ की प्राचीन मूर्तियों में होता है। बाद में विकसित विभिन्न चित्रकला की शैलियाँ ऐसे ही सौन्दर्य एवं रुचि से उद्भूत रचनायें मानी जानी चाहिए, जो हिमाचल की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत की अनूठी कलाकृतियाँ स्वीकार की जाती हैं। इसी प्रकार गीत गाते, बाजा बजाते तथा विभिन्न प्रकार के नृत्य में तल्लीन लोगों का चित्रण यहाँ की प्राचीन मूर्तियों में मिलता[६५] है, जो हमारी ऐसी सूचनाओं के प्रधान अंग हैं।

अर्थ-व्यवस्था

कृषि—

हिमाचल प्रदेश की अर्थ-व्यवस्था हमें कुछ हद तक ज्ञात है। अत्यन्त प्राचीन काल में जंगलों से उत्पन्न वस्तुएँ लोगों की आवश्यकताओं के प्रमुख प्रयोग थे। उस

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

समय पशुओं से प्राप्त वस्तुओं का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाता था। हमने पहले ही लिखा है कि प्रागैतिहासिक काल में प्रस्तरनिर्मित औजारों का निर्माण करके लोग पशुओं को मारते थे। और उनके मांस का भक्षण करते थे तथा उनकी खालों को वस्त्र के रूप में प्रयोग करते थे। वे नदियों के किनारे या अन्य पानी वाले स्थानों के निकट प्रकृत्या बनी गुफाओं में रहते थे। परन्तु दुर्भाग्य से इस क्षेत्र की प्राचीन गुफा-गृहों की खोज अब तक नहीं हुई है, जब कि प्रागैतिहासिक मानव के प्रस्तर-अस्त्र कुछ भागों से ढूंढ़ निकाले गये हैं, जैसा कि हमने पहले ही वर्णन किया है। उस युग में मनुष्य फलों को खाता था तथा अन्य प्रकार की वनस्पतियों का भी प्रयोग करता था।

इस क्षेत्र में कृषि-जैसे पेशे की उत्पति और विकास कब हुआ, यह हमें ज्ञात नहीं है। इस क्षेत्र का वैदिक कालीन मानव पशु-पालन अवश्य करता था, क्योंकि वेदों में उसका उल्लेख है। उनके मांस का भक्षण, चमड़ों का प्रयोग और उनके ऊन की उपयोगिता उन्हें मालूम थी। वे उनके दूध का प्रयोग विभिन्न तरीकों से करते थे। सम्भवतः इसी युग में यहाँ लोग खेती भी करने लगे थे, क्योंकि वेदों में कुष्ठ नामक पौधे तथा उससे उत्पन्न तेल का औषधि के रूप में प्रयोग[९६] वर्णित है। अन्य प्रकार के फलों का उत्पादन और प्रयोग कल्पना से बाहर नहीं हैं।

छठीं शताब्दी ई० पू० के पहले इस क्षेत्र में भारत के अन्य भागों की तरह कृषि एवं पशुपालन का विकास हुआ जान पड़ता है। कौटिल्य यहाँ के लोगों को 'वार्ताशस्त्रोप जीवी' कहता है; जिसका अर्थ यह है कि लोग कृषि करते थे और पशु-पालन तथा व्यापार करके अपनी जीविका चलाते[९७] थे। कुछ लोग स्वभावतः बहादुर और लड़ाकू होने के कारण सेना में भरती होकर अपनी जीविका का अर्जन करते थे। यहाँ की खेती में लौहनिर्मित फलवाले हल का प्रयोग कब प्रारम्भ हुआ, यह कहना कठिन है। वैसे छठीं शदी ई० पूर्व में मैदानों से बौद्ध तथा अन्य धर्मों को यहां फैलाने वाले लोग संस्कृति के हर पक्षों को लाये होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस काल में यहाँ जनसंख्या भी बहुत कम न थी, अतएव उनके भोजन के लिए अन्नोत्पादन कुछ अंश तक किया ही जाता था। बाकी अंश मैदानों से आता था।

मौर्य-काल में यहाँ कृषि-कार्य में कुछ अवश्य विकास हुआ, क्योंकि तीसरी शदी ई० पू० में कांगड़ा में एक स्थान पर तालाब खोदवाने की व्यवस्था की गई थी, जैसा कि उसी काल के एक अभिलेख से ज्ञात[९८] होता है। कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

में जमीनों का हर प्रकार से प्रयोग करने की बात की[९६] है। अतः इस समय खेती में वृद्धि अवश्य हुई होगी, ऐसा अनुमान है। बाद के कालों में इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई, क्योंकि इस क्षेत्र में धातुओं का प्रयोग होने लगा था। यहाँ की एक गुप्तोत्तर-कालीन मूर्ति में हल चलाते एक किसान का चित्रण मिलता[१००] है, अतएव बैलों की मदद से यहाँ लौह निर्मित फाल वाले हल का प्रयोग होने से कृषि-उत्पादन में वृद्धि हुई, ऐसा कहना तर्क सम्भव जान पड़ता है। यहाँ की कुछ जमीन बड़ी उपजाऊ थी। सातवीं शदी में आये चीनी, यात्री ह्वेनसांग ने कुल्लू को भूमि को बड़ा उपजाऊ बताया[१०१] है। उसका कहना है कि "यहाँ की भूमि बहुत घनी तथा उपजाऊ है। फसलें समय पर पूर्णरूपेण बोयी जाती हैं और काटी जाती हैं। फूल और फलों का आधिक्य है और पेड़ पौधों से वनस्पति-संसार हरा-भरा है। बर्फीली पहाड़ों के निकट होने के कारण यहाँ अत्यन्त कीमती जड़ी-बूटियाँ अधिक संख्या में मिलती हैं, जो औषधि की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं।"

ह्वेनसांग यहाँ प्राप्त धातुओं का भी उल्लेख करता[१०२] है। उसका कहना है कि सोना, चाँदी तथा ताँबा यहाँ पाया जाता है। वह यहाँ से प्राप्त कुछ कीमती पत्थरों का भी उल्लेख करता है तथा यहाँ से निकाले जाने वाले देशी ताँबे का भी वर्णन करता है। ध्यातव्य है कि पड़ोसी राज्यों को भी इन वस्तुओं की आवश्यकतायें पड़ती थीं। मध्यकालीन युद्धों में यहाँ से प्राप्त धातुओं को समझौतों का एक मुद्दा कहा गया है।

हर्षोत्तर कालीन युग में यहाँ कृषि के पेशे में हुई वृद्धि का उल्लेख तत्कालीन अभिलेखों में भी मिलता है। निर्मण्ड ताम्रपात्र में, जो सातवीं शदी ई० में उत्कीर्ण बताया जाता है, सूलिश नामक ग्राम का वर्णन है, जिसे महासामन्त समुद्रसेन ने वहाँ के एक शैव मंदिर तथा उसके पुरोहितों के खर्च के लिए दान में दिया[१०३] था। अतएव यह तो अपने आपमें सिद्ध होता है कि कुल्लू में ऐसे अनेक ग्राम थे, जहाँ काफी आबादी थी और उनकी जीविका का प्रमुख साधन कृषि था। खेतों से अत्यधिक उपज का अनुमान वहाँ विकसित बड़े नगरों से भी लगाया जा सकता है। इनमें से एक तो कुल्लू की राजधानी ही थी, जिसकी विशालता का परिचय हमें ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से मिलता[१०४] है। आसपास अच्छी खेती के बिना नगरों का विकास संभव ही नहीं है।

इस काल में कांगड़ा-क्षेत्र में कृषि में बड़ा विकास हुआ जान पड़ता है। बैजनाथ

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

की प्रशस्ति में तथा कांगड़ा से मिले अन्य प्राचीन अभिलेखों में यहाँ स्थित कुछ ग्रामों का उल्लेख किया गया है, जो मंदिरों के लिए दान में दिये गये[१०५] थे। कुछ ऐसे ग्राम भी वर्णित हैं, जहाँ लोगों की जमीनें थीं, जिसमें खेती की जाती थी। बैजनाथ-प्रशस्ति में 'नवग्राम' ग्राम (कस्बे) का उल्लेख है, जहाँ हर प्रकार का अनाज पैदा किया जाता था। सुशर्मपुर के एक ज्योतिषी ने इसी स्थान से दो द्रोण (पात्र में माप कर) अनाज बैजनाथ शिव के मंदिर में भोग के लिए दान किया था (नवीं शताब्दी)। इस ज्योतिषी का नाम था रल्हण, जो जाति से ब्राह्मण था और संभवतः कश्मीर से आकर इस शहर में रह रहा था। वह असुक का पुत्र था। दान देने से यह मालूम होता है कि वह सुशर्मपुर (कोट कांगड़ा) के धनी नागरिकों में से एक था। उसने नवग्राम में भूमि-सम्पत्ति बनाई थी, जहाँ कुछ नौकरों या दासों के माध्यम से वह खेती करवाता था और इसी की उपज से कुछ अनाज प्रति वर्ष मंदिर के लिए दान में देने का वचन दिये था।

ऐसा ही एक जमींदार ब्राह्मण कीर ग्राम में भी रहता[१०६] था। उसका नाम गणेश्वर था, जो गोविन्द का पुत्र था। इसके भी खेत नवग्राम में थे। बैजनाथ मंदिर के लिए उसने भी आधा हलवाला खेत दान में दिया था। नवग्राम में उसके पास इतना खेत था, जितने में चार द्रोण बीज बोया जा सकता था। बैजनाथ के पास ही एक दूसरा ग्राम आबाद था, जिसका नाम प्रलम्ब[१०७] था। यहाँ भी बहुत अच्छी खेती होती थी। कीर ग्राम में शासन करने वाले लक्ष्मण चन्द्र की पत्नी लक्षणिका के नाम यहाँ कुछ खेत थे, जिसमें से उसने एक हलवाले खेत को बैजनाथ शिवमंदिर के खर्च के लिए दान में दिया था। निर्मण्ड ताम्रपत्र में भी शूलिस नामक ग्राम का उल्लेख है, जिसे महाराज समुद्रसेन की माता मिहिरलक्ष्मी ने एक शिव-मंदिर के लिए दान में दिया[१०८] था। उसी के पास में तालपुर नामक एक कस्बा या नगर स्थित था, जहाँ कई भूमि-पति निवास करते थे। इनमें फक्क, सुलभक तथा दिन्न का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने मिहिरेश्वर नामक शिव मंदिर के लिए जमीनें दान में दी थीं।

व्यापार—

व्यापार-कार्य में पहले वस्तुओं का आदान-प्रदान किया जाता था। ग्राम के लोग नगरों में व्यापारियों को कोई सामान देकर दैनिक वस्तुएं प्राप्त करते थे। धीरे-धीरे इस क्षेत्र में भी सिक्कों का प्रचलन हुआ। सम्भवतः छठीं शदी ई० पू० में इस प्रदेश के कुछ भागों में व्यापार-कार्य में सिक्कों का प्रयोग होने लगा[१०९] था। त्रिगर्त-राज्य के सिक्कों पर 'त्रकत जनपदस' लिखा है। आहत सिक्के भी यहाँ प्रचलित थे

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जिनका उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में किया गया है। हिमाचल के काँगड़ा तथा शिमला-क्षेत्र से आहत सिक्कों के कई ढेर मिले हैं। उदुम्बरों तथा कुनिन्दों के अपने सिक्के थे और वे अत्यधिक संख्या में चलाये गये थे। कुलूतों का भी एक चाँदी का सिक्का मिला हुआ है। कुषाणों के भी सिक्के इस क्षेत्र में प्रयोग में लाये जाते थे। गुप्तकालीन सिक्के तथा हर्ष के चलाये हुए सिक्के इस क्षत्र से नहीं प्राप्त हुए हैं। नवीं शदी में कांगड़ा-क्षेत्र में द्रम्म नामक सिक्के प्रयोग में लाये जाते थे। ऐसे ही दो द्रम्यों का दान बैजनाथ (कीरग्राम) के शासक लक्ष्मण चन्द्र ने अपनी मण्डपिका से शिवमंदिर के लिए दान में दिया[११०] था। यहाँ आयात और निर्यात होने वाली वस्तुओं से कर वसूला जाता था। ऐसे कर या शुल्क लेने के लिए दफ्तर प्रायः प्रत्येक राज्यों में होते थे। सड़कों पर आने-जाने तथा सामान के आयात-निर्यात को इस प्रकार अधिकार में रक्खा जाता था।

यहाँ के व्यापार में स्वभावतः प्रतिदिन की आवश्यकताओं वाली वस्तुएं अधिक थीं। खाद्यसामग्री कुछ हद तक निकट में स्थित मैदानी भागों से आती थी। आयात की अन्य वस्तुओं में लोहा तथा कुछ अन्य खनिज पदार्थ थे। नमक सम्भवतः बाहर से ही यहाँ लाया जाता था। वैसे आयात-निर्यात की वस्तुएँ यहाँ के अभिलेखों में कहीं भी वर्णित नहीं है। निर्यात की जाने वालो वस्तुओं में ऊन तथा ऊनी सामान, जैसे कम्बल तथा ऊनी कपड़े प्रमुख थे। महाभारत में वर्णन मिलता है कि पर्वतीय राजाओं ने युधिष्ठर को कीमती ऊनी वस्त्र उपहार में दिये[१११] थे। सम्भवतः यहाँ की शहद भी भारत के मैदानों में लोगों को बहुत प्रिय[११२] थीं। कुष्ठ का तेल तो निश्चित रूप से विदेशों में भेजा जाता था और इस विनिमय से यहाँ के लोगों को काफी आमदनी होती थी। कोमती लकड़ी और उनसे बना हुआ सामान भी यहाँ से बाहर भेजा जाता[११३] था। आज की तरह फल भी निर्यात की एक प्रमुख वस्तु थी, ऐसा ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से मालूम होता है। उसने लिखा है कि कुल्लू में हर प्रकार के फल बहुत बड़ी मात्रा में उपजाये जाते थे। यहाँ से कुछ वस्तुएँ विदेश भेजी जाती थीं, उसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि गुजरात के कुछ व्यापारी आकर काँगड़ा में निवास कर[११४] रहे थे। वे इस पहाड़ी भाग तथा मैदानों के बीच के व्यापार के मध्य काम करते थे और गुजरात, बम्बई तथा सिंध के तटवर्ती बन्दरगाहों से विदेशी व्यापार भी करते थे। रोम के इतिहासकारों का कथन है कि भारतोय अदरख और नील रोम और यूनान के बाजारों में बहुत बिकते[११५] थे। यहाँ उपजे सूखे फल भी व्यापार को वस्तुएँ रही होंगी, ऐसा अनुमान है। इसी प्रकार यहाँ मिलने वाली कुछ इमारती

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation-of-America- HHFA(USA)

लकड़ी भी फारस तथा यूनान के देशों में भेजी जाती थी। दक्षिण भारत और तटों पर उपजे गर्म मसाले यहाँ लाये जाते थे और गुजरात के व्यापारियों को ऐसे व्यापार में बड़ी आय होती थी। इस व्यापार में रेशमी कपड़े का भी बहुत अंश रहा होगा, ऐसा सोचना तर्क सम्भव है, क्योंकि हिमाचल की घाटियों से होकर जाने वाले मार्ग भारत को जहाँ एक तरफ लद्दाख और मध्य एशिया से जोड़ते थे, वहीं दूसरी तरफ वे उत्तरी भारत को तिब्बत और पश्चिमी चीन से सम्बद्ध करते[११६] थे।

यहाँ के प्रमुख व्यापारिक मार्ग प्रधान नदियों की घाटियों के सहारे बनाये गये थे। बीच-बीच में उन्हें खास-खास दर्रों से होकर गुजरना पड़ता था और कहीं-कहीं वे पहाड़ों की चोटियों के ऊपर से[११७] जाते थे। गङ्गा-यमुना का दोआब यमुना-घाटी से जुड़ता था और कन्नौज से चलकर थानेश्वर होता हुआ एक राजमार्ग सुघ्न की राजधानी आता था। इसी मार्ग पर काल्सी पड़ता था, जहाँ अशोक का एक अभिलेख मिला है। इसके बाद वह टौन्स और पब्बर नदियों की घाटियों से होकर और कुछ पहाड़ पार करके सतलज घाटी में मिलता था। इसके बाद वहाँ से निर्मण्ड होते हुए वह कुल्लू और लाहौल जाता था और वहाँ से वह लद्दाख तथा मध्य एशिया के प्रमुख व्यापार मार्ग से जुड़ जाता था। इसी मार्ग का एक भाग स्पिति और किन्नौर होकर तिब्बत से उत्तर भाग को जोड़ता था।

पंजाब के मैदानी भाग को इस क्षेत्र से जोड़ने के लिए मुख्यतः दो मार्ग थे। रोपड़ से बिलासपुर होते हुए लोग मण्डी जाते थे और वहाँ से व्यास की घाटी में होकर कुल्लू जाया जाता था। यह मार्ग आज भी प्रायः वही है। दूसरा मार्ग उधर होशियारपुर-जलन्धर होता हुआ काँगड़ा जाता था और बाद में व्यास वाले मार्ग में मिल जाता था और दूसरा मार्ग धर्मशाला से होकर चम्बा जाता था, जहाँ वह उस मार्ग से मिलता था जो इस क्षेत्र को लाहौल से जोड़ता था। इसी मार्ग से चम्बा के आक्रमणकारी लाहौल आते थे और वहाँ से कुल्लू तक आक्रमण करते थे। सम्भवतः कश्मीर से आने वाला मार्ग इसी मार्ग से जुड़ जाता था, जिससे वहाँ के व्यापारी कुल्लू, स्पिति तिब्बत आते-जाते थे। इन व्यापार-मार्गों की कुछ सूचना तो ह्वेनसाँग के यात्रा-विवरण से मिलती है और उनका कुछ हद तक ज्ञान प्राचीन काल में विकसित नगरों या बस्तियों की स्थिति से होता है। विभिन्न मन्दिरों की स्थिति से भी इन मार्गों को जाना जा सकता है।

यातायात के साधनों का केवल अनुमान ही किया जा सकता है। कुनिन्दों के

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सिक्कों पर एक प्रकार के पहाड़ी पशु का चित्रण मिलता[११८] है। स्पष्ट है कि यहाँ की अर्थ-व्यवस्था में इसका बड़ा उपयोग था। इन्हीं पर सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता था। एक मध्यकालीन अभिलेख में ऐसे ही कुछ पशुओं को उपहार रूप में देने के लिए राजनैतिक समझौता किया गया[११९] है। पहाड़ी बकरियाँ भी हल्के सामान को इधर-उधर ले जाती थीं, ऐसा सोचना तर्क सम्मत है क्योंकि आज कल के गद्दी लोग भी इनका इस रूप में कभी-कभी उपयोग करते देखे जाते[१२०] हैं। अन्यथा पहाड़ पर तो सामान लाने और ले जाने वाले मुख्यतः मनुष्य ही होते हैं, जो थोड़ा-थोड़ा करके अधिक से अधिक सामान लाते और ले जाते हैं। यहाँ के प्राचीन नगरों में आज की तरह मुख्य सामान-वाहक ऐसे ही सैकड़ों व्यक्ति थे, जिनके जीवन-निर्वाह का माध्यम सामान ढोना होता था।

नदियों में सम्भवतः कहीं-कहीं लकड़ी के पुल बनाये जाते थे। कल्हण की राजतरंगिणी में काष्ठ-निर्मित पुलों का जगह-जगह वर्णन मिलता है, जिनका निर्माण कराना राजाओं का प्रमुख कार्य होता[१२१] था। इस क्षेत्र में भी, आशा है कि, ऐसे पुल बनाये जाते थे, जिनसे होकर कहीं-कहीं नदियों को पार किया जाता था। अन्यथा लम्बे रास्ते से होकर नदियों का सामना ही नहीं किया जाता था।

व्यापार के कुछ प्रमुख केन्द्र—

हिमाचल प्रदेश में भारत के अन्य भागों से अनेक प्रकार के व्यापारी आकर बसते थे। जाहिर है कि प्रमुख व्यापार-मार्गों पर स्थित बाजार या नगर उन्हें आकृष्ट करते थे, क्योंकि चारों ओर से उपभोक्ता और व्यापारी आकार वहीं अपनी जरूरत के सामान खरीदते थे। कांगड़ा-क्षेत्र में बैजनाथ ऐसा ही एक व्यापारिक केन्द्र था, जहाँ पर सम्भवतः गुजरात तक के व्यापारी आकर रह रहे थे। इसे प्राचीन काल में कीरग्राम कहते[१२२] थे। यहाँ से प्राप्त एक प्राचीन अभिलेख में कुछ जैन व्यापारियों का उल्लेख है, जिनके पूर्वजों को ब्यूलर महोदय गुजरात से आया हुआ[१२३] मानते हैं। उन्होंने यहाँ एक जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था और उसके लिए दान आदि भी दिया था। ऐसे ही जैन व्यापारी कोट कांगड़ा में भी रह रहे थे, जैसा कि वहाँ से प्राप्त जैन मन्दिर तथा मूर्तियों से मालूम होता है।

इस प्रदेश का दूसरा प्राचीन व्यापारिक स्थान मंडी था। यहाँ की पुरानी मंडी का भाग प्राचीन काल में यहाँ का एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। यह एक प्रमुख व्यापार मार्ग पर स्थित था। व्यास नदी के मीठे जल ने उसे अधिक सुहावना

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

और रहने योग्य बनाया था। मैदानी भाग से निकट स्थित होने के कारण यहाँ खाद्य सामग्री सरलता से आ जाती थी, जिसे यहाँ के व्यापारी पहाड़ के अन्य आन्तरिक भागों में भेजते थे। इसी प्रकार ऊपर से आया सामान भी यहाँ से मैदानी भागों में भेजा जाता था। इसे वास्तव में पहाड़ी भाग का द्वार-स्थल कहना उपयुक्त होगा।

कांगड़ा-क्षेत्र में स्थित अन्य प्राचीन व्यापारीब स्तियों में कन्हिआरा उल्लेखनीय है, जहाँ से कुषाणों के कुछ सिक्के मिले हुए[१२४] हैं। यहाँ से द्वितीय शदी ई० में दो लिपियों में उत्कीर्ण एक छोटा-सा अभिलेख भी मिला है, जिसमें बौद्ध विहारों का उल्लेख है। इस ग्राम के पास की पहाड़ी से आज भी स्लेटी पत्थर निकाला जाता है, जो व्यापारिक वस्तुओं में एक प्रमुख स्थान रखता है। इन बातों से यह स्थान अत्यन्त प्राचीन लगता है, जहाँ हर प्रकार के समाज के लोग रहते थे। कई भाषायें और लिपियों के प्रयोग करने वाले प्रायः किसी नगर या प्रमुख व्यापारिक केन्द्र में ही निवास करते हैं। इसी क्षेत्र में ऐसा ही एक स्थान पथिआर[१२५] था, जो काँगड़ा जिले में स्थित आज एक ग्राम है। यहाँ से भी दो लिपियों में लिखा एक अभिलेख मिला है, जिसे विद्वानों ने तीसरी शदी ई० पू० में रक्खा है। अतः यह भी इस क्षेत्र का एक अत्यन्त प्राचीन स्थान मालूम पड़ता है।

यहाँ के कुछ प्राचीन व्यापारिक केन्द्रों को हम सिक्कों की प्राप्ति से भी जान सकते हैं। आहत सिक्कों के एक ढेर मिलने से अर्की नामक स्थान एक प्रमुख बाजार परिलक्षित होता[१२६] है। यहाँ से पूर्व मध्यकालीन सिक्कों का भी ढेर इधर फिर मिला है, जिससे यह स्पष्ट है कि यह स्थान एक प्रमुख बाजार तथा व्यापारिक स्थान था, जो एक प्रसिद्ध बस्ती के रूप में मध्यकाल तक विकसित होता रहा। कालका-कसौली मार्ग पर भी प्राचीन काल में कुछ व्यापारिक बस्तियाँ स्थित[१२७] थीं। यहाँ से भी कुषाणों के सिक्कों का एक ढेर मिला है।

हिमाचल की अन्य प्राचीन बस्तियों तथा यहाँ के कुछ व्यापारिक केन्द्रों को हम मन्दिरों, मूर्तियों तथा अन्य प्रकार के स्मारकों और खण्डहरों की प्राप्ति और उपस्थिति से जान सकते हैं। प्रसिद्ध मन्दिरों के स्थान अपने आप ही बस्तियों के द्योतक होते हैं। इसी तरह मूर्तियों या अन्य स्मारकों की स्थापना प्रायः उन्हीं स्थानों पर की जाती है, जहाँ लोग आबाद रहते हैं। इनमें से अनेक मन्दिरों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। उनका यहाँ पुनः वर्णन करना विषय को दोहराना होगा। यहाँ

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हम केवल कुछ प्राचीन स्मारकों या अवशेषों की ओर संकेत करेंगे, जिनसे इस क्षेत्र में वसी कुछ प्राचीन बस्तियों का कुछ हद तक अन्दाज लगाया जा सकता है।

कुछ अन्य प्राचीन अवशेष—

प्राचीन अवशेषों को जानने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है। इनमें साहित्य में उल्लिखित प्राचीन निर्माणों को तो ध्यान में रखा ही जाता है, साथ ही साथ उनके दृश्य अवशेष अपने आप ही अतीत के साक्षी होते हैं, लेकिन इतिहास की दृष्टि से परीक्षण करने के बाद ही उनकी प्राचीनता सिद्ध की जाती है।

प्राचीन अवशेषों में वे समस्त भौतिक वस्तुएँ गिनी जाती हैं, जिनका मानव ने उपयोग किया था। इनमें उसके प्रस्तर या धातु निर्मित हथियार और उसके निवास स्थान प्रमुख हैं। पूजा के घर जैसे मन्दिर, या गोन्पा आदि और ऐसे निर्माण भी हैं, जिन्हें किसी की याद में बनवाया जाता है या किसी विशेष कारण से जिन्हें स्थापित किया जाता है, जैसे स्तम्भ, स्ती-स्थान या प्रस्तर शिला-खण्ड। ऐसी चीजें और लेखन-आधार भी गणनीय हैं जिन पर कुछ लिखा होता है या जिन पर कुछ बना होता है। ऐसे अवशेष धरती से ऊपर चिरकाल तक अपने सिर को ऊँचा किये हुए प्राचीन वैभव और संस्कृति की कहानी कहते रहते हैं। इनका निर्माण प्रायः ऐसी सामग्री से बना होता है जो समय के कुठाराघात से भी नष्ट नहीं होते हैं और यदि होते भी हैं तो पुरातत्व शास्त्री, इतिहासकार या कलापारखी बचे-खुचे भागों से कल्पनानुसार उनका पुर्ननिर्माण कर लेते हैं।

इन अवशेषों के ज्ञान के कई साधन हैं। कभी-कभी नदियों के बाढ़ से या उसके मार्ग परिवर्तन के कारण संस्कृतियाँ ढह जाती हैं और वहाँ के सभी भवन या अन्य भौतिक निर्माण धरती की गोद में समाहित हो जाते हैं। कभी-कभी भूचाल आने के कारण नगर व ग्राम-संस्कृतियाँ उजड़ जाती हैं और उनके भवन, किले, मन्दिर इत्यादि टूट-फूट कर धराशायी हो जाते हैं। अग्नि के प्रकोप से भी निर्माण विनष्ट होते हैं और उनका खण्डहर-मात्र शेष रह जाता है। इसी तरह कभी-कभी आक्रमणों से भी प्राचीन निर्माणों का विनाश होता है और उनके मूल रूप को जानते के लिए अन्य विद्याओं का सहारा लेना पड़ता है। फिर भी इन सभी परिस्थितियों में प्राचीन निर्माणों के अवशेष किसी न किसी रूप में बच ही जाते हैं और उनका कुछ भी बचा हुआ अंश उनके अतीत कालीन वैभव एवं सौंदर्य की गाथा कहता है। इनमें पकी ईंटों, प्रस्तर-खण्डों आदि से बने भवन या मन्दिर इत्यादि और कुछ नष्ट न होने वाली वस्तुएँ बच जाते हैं। लेकिन काष्ठ निर्मित निर्माण एवं वस्तुएँ काल के गाल में समा जाती हैं, क्योंकि उन्हें न तो सड़ने और गलने

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

से बहुत दिन तक बचाया जा सकता है और न अग्नि के प्रकोप से उनका कुछ भी अंश बचता है। यही बात उन कला-कृतियों का भी होता है जो काष्ठ-निर्मित होती हैं। पक्की मिट्टी, पत्थर तथा धातुओं से बनी वस्तुएँ बच जाती हैं और समय आने पर ऐसे अवशेष कभी न कभी प्रकाश में आ ही जाते हैं।

इस प्रदेश के कुछ प्रागैतिहासिक अवशेष काँगड़ा के गुलेर-क्षेत्र से प्रकाश में आये हैं। इनमें उस समय के मनुष्यों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले कुछ पत्थर से बने औजार हैं, जिन्हें तत्कालीन जानवरों को मारने के लिए और भोजन-सामग्री जुटाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। इन औजारों की खोज से हिमाचल का यह क्षेत्र देश के प्रागितिहास के नक्शे में आ गया है और सोहन घाटी के दक्षिण ऐशिया में सबसे प्राचीन घाटियों में से एक है और प्रागितिहास की दृष्टि से वह बड़ी समृद्ध[१२८] है। ज्ञातव्य है कि सोहन नदी-घाटी पाकिस्तान में चले जाने से हमारे देश की पुरातत्विक दृष्टि की जो हानि हुई थी, इस घाटी की खोज से उसकी कुछ हद तक पूर्ति हुई है। ऐसे ही कुछ प्रस्तर कालीन औजार नालागढ़ और सुकेती क्षेत्रों से भी ढूंढ़ निकाले गये हैं, जिन्हें विद्वानों ने लगभग ४०००० वर्ष प्राचीन माना[१२९] है।

हिमाचल प्रदेश से ऐसे स्थान या अवशेष अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं जिन्हें हम उस काल में रखें जो हमारे इतिहास में प्रोटोहिस्ट्री का युग कहा जाता है। सिन्धु घाटी की संस्कृति के विकास को हम इसी युग में रखते हैं। उस काल में भी यहाँ संस्कृति का विकास हुआ था, ऐसी सम्भावना है, क्योंकि हड़प्पा और मोहन जोदड़ो और रोपड़-जैसे उस संस्कृति से सम्बन्धित स्थान उन्हीं नदियों के किनारे विकसित थे, जिनका उद्‌गम इसी क्षेत्र में पाया जाता[१३०] है। अतः उस काल के भी कुछ अवशेष इस क्षेत्र से मिलने चाहिए, ऐसी हमारी धारणा है। यह भी ध्यान रखना है कि वैदिक आर्यों से भी यह क्षेत्र अपरिचित न था, क्योंकि इसी भाग से लगे हुए मैदानी भागों में वेदों की रचना हुई थी। इन बातों पर हम पहले ही कुछ प्रकाश डाल चुके हैं।

छठीं शताब्दी ई० पू० के इस तरफ निर्मित अवशेषों और स्मारकों का ज्ञान हमें कुछ अधिक वैज्ञानिक तरीकों से ज्ञात है। हमने पहले ही संकेत किया है कि इस समय इस प्रदेश में छोटे-छोटे कई राज्यों का उदय हो गया था, अतएव उनके नगरों, सांस्कृतिक केन्द्रों तथा भौतिक उपलब्धियों का कुछ हद तक अनुमान लगाया जा[१३१] सकता है। वैसे इनमें से अनेक अज्ञात हैं। बौद्ध स्मारकों के सम्बन्ध में कुछ सूचनायें

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

ह्वेनसाँग के यात्रा-विवरण[१३२] से मिलती हैं, जिनका हमने ऊपर विस्तार से वर्णन किया है। कुछ अन्य बौद्ध अवशेषों में हम काँगड़ा में स्थित फतेहपुर से प्राप्त आसनमुद्रा में बैठी एक बुद्ध-प्रतिमा का उल्लेख कर सकते हैं, जिस पर एक लघुअभिलेख उत्कीर्ण है, जिसके आधार पर उसे छठीं शताब्दी की कृति माना जा सकता[१३३] है। कोट-काँगड़ा के पास स्थित चारी नाक स्थान से वज्रवाराही की एक खंडित[१३४] मूर्ति मिली है। इनसे इस क्षेत्र की प्राचीन बौद्ध बस्तियों की ओर संकेत मिलता है। कुल्लू में स्थित एक स्थान से कुषाण कालीन एक ताम्रपात्र (लोटा) मिला है, जिस पर भगवान बुद्ध के एक जुलूस का बड़ा ही हृदयग्राही चित्र प्रदर्शित किया गया[१३५] है। कहा जाता है कि यह लोटा किसी प्राचीन बौद्ध बिहार से मिला है, जहाँ बौद्ध भिक्षु रहते थे। हो सकता है कि यह वही स्थान हो, जहाँ ह्वेनसाँग गया था। यही बात हमें अवलोकितेश्वर की उस प्रस्तर मूर्ति से ज्ञात होती है जो सुल्तानपुर (कुल्लू) के निकट स्थित कैलात नामक स्थान से मिली है।

यहाँ के प्राचीन अवशेषों में हमें उन प्रस्तर-स्तम्भों को भी गिनना चाहिए जिन्हें किसी की स्मृति में स्थापित करवाया गया था। इन्हें सती-प्रस्तर या स्मारक-प्रस्तर नाम दिया जाता है। ऐसे अवशेष हिमाचल के सभी भागों से मिलते हैं।

यहाँ के ऐसे ही प्राचीन अवशेषों में जल-स्रोत प्रस्तर-खण्ड की भी गणना की जानी चाहिए, जो हिमाचल के प्रत्येक भाग से मिलते हैं। इन पर कभी-कभी अभिलेख भी मिलते हैं, जिनमें बनवाने वाले का नाम और उद्देश्य लिखा होता है। इन पर वरुण देवता की प्रतिमा के साथ अन्य देवी-देवताओं की भी प्रतिमा खचित होती है। कभी गंगा-यमुना की भी प्रतिमायें बनाई जाती हैं और बनवाने वाले राजा के पिता या माता की भी मूर्तियाँ बनाई जातो हैं, जिनकी स्मृति में उसका निर्माण किया जाता था। कला और संस्कृति की दृष्टि से इनका बड़ा महत्व है।

नगर तथा नगर-जीवन—

किसी भी क्षेत्र-विशेष में नगरीय संस्कृति के विकास के लिए विद्वानों ने कुछ आमूल शर्तों और दशाओं का रहना अनिवार्य बताया है। उदाहरणार्थ जनसंख्या में वृद्धि, ग्रामीण-संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास, कृषि तथा अन्य उत्पतिमूलक साधनों में वृद्धि। उनका कहना है कि नगरों के विकास के लिए खाद्यसामग्री इतनी अधिक उपजाई जानी चाहिए कि वह ग्रामीण जनसंख्या के उपयोग से बचे, जिससे ऐसे लोग उस पर निर्भर हो सकें जो अन्न नहीं पैदा करते हैं तथा अन्य व्यवसायों में लगकर अपना जीवन-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

निर्वाह करते हैं, इसी प्रकार राजशासन, नृपतन्त्र एवं प्रशासन की व्यवस्था में विकास तथा लेखन-कला की उत्पति और प्रयोग भी नगरीय संस्कृति के विकास के लक्षण एवं सहायक तत्व माने जाते[१३६] हैं। साथ ही साथ धातु एवं लौह निर्मित वस्तुओं का प्रयोग, आवागमन के उचित साधन, व्यापार में वृद्धि, व्यापारी-वर्ग का विकास, अर्थ-व्यवस्था में क्रमिक उन्नति एवं विनिमय में प्रयुक्त होने वाले सिक्कों की उत्पति और प्रचलन आदि कुछ ऐसे आधारभूत प्रधान, लक्षण एवं अनिवार्य आवश्यकतायें हैं, जिनसे नगरीय संस्कृति की उत्पति होती है और कस्बों तथा नगरों के संस्थापन एवं उनके उत्तरोत्तर विकास में मदद मिलती है। ये ऐसे सामाजिक एवं आर्थिक तत्व हैं, जिनसे एक तरफ नगर-निर्माण की आवश्यकता एवं उत्पत्ति की प्रेरणा मिलती है और दूसरी तरफ इनसे उनका आगे विकास होता है।

हिमाचल प्रदेश में नगरीय संस्कृति की उत्पति एवं उसके विकास की शर्तों के विद्यमान रहने के प्रमाण अत्यन्त प्राचीन काल से मिलने लगते हैं। उदाहरणार्थ लोगों को लेखन-कला का ज्ञान इस क्षेत्र में चौथी शताब्दी ई० पू० में हो गया[१३७] था, राजनीति एवं प्रशासन-व्यवस्था संगठित रूप में छठीं-पाँचवीं शदी० ई० पू० में यहाँ विकसित हो गई थी और व्यापार में प्रयोग आने वाली वस्तुएँ भी यहाँ होती थीं, जैसे अच्छा से अच्छा ऊन यहाँ होता था और इसी प्रकार कुष्ठ नाम की जड़ यहाँ मिलती थी, जिसे औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था और उससे बने तेल की माँग यहाँ ही नहीं वरन् विश्व के अन्य भागों में भी[१३८] थी। सिक्के का भी प्रचलन इस क्षेत्र में मौर्य-काल में हो गया था। आहत सिक्के इस क्षेत्र में स्थित कई स्थानों से मिले हैं। धर्म के क्षेत्र में भी यहाँ विकास हो गया था और इस क्षेत्र में कई स्थान धर्म के केन्द्र बन गये थे। उदाहरणार्थ बौद्ध धर्म छठीं-पाँचवीं शदी ई० पू० में ही इस क्षेत्र में फैल गया था, जिसे अशोक के समय में भारत के अन्य भागों की तरह यहाँ भी अत्यधिक प्रोत्साहन मिला[१३९] था। इसी तरह यह क्षेत्र ऐसी सीमा पर स्थित है, जहाँ से होकर विभिन्न देशों के लोगों एवं व्यापारियों को आना-जाना पड़ता था। कहने का तात्पर्य यह है कि नगरीय संस्कृति की उत्पत्ति और विकास के लिए यहाँ सम्पूर्ण रूप से सहायक वातावरण विद्यमान थे।

नगरीय जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए खाद्य सामग्री भी अत्यधिक मात्रा में मिल जाती थी। लगे हुए मैदानी भाग बड़े उपजाऊ थे, जहाँ से पर्याप्त अन्न उपलब्ध होता था। इन्हीं कारणों से राज-शासन की कई इकाइयाँ यहाँ अत्यन्त प्राचीनकाल में ही बन गई थीं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हमने पहले ही कहा है कि इस क्षेत्र में कई छोटे-छोटे लघुराज्यों का उल्लेख पाणिनि ने किया है, जो छठी शदी ई० पू० और उसके आस-पास विकसित थे। इनमें त्रिगर्त का जनपद प्रमुख था। अन्य राज्यों में उदुम्बरों, कुलूतों एवं कुनिन्दों के राज्य थे। इन राज्यों के होने के प्रमाण उनके सिक्कों से भी मिलता[१४०] है। मौर्यों, कुषाणों एवं गुप्तों के प्रशासकीय केन्द्र भी यहाँ थे। अतएव उनकी राजधानियों एवं अन्य प्रशासकीय या सांस्कृतिक केन्द्रों की संस्थापना एवं उनके विकास की कल्पना तर्क मूलक है। इनमें से कुछ का उल्लेख ह्वेनसाँग के यात्रा-विवरण में मिलता[१४१] है और एक का उल्लेख उत्वी, अलबरूनी[१४२] एवं फरिश्ता इत्यादि इतिहासकारों ने किया है। कल्हण की राजतरंगिणी में यहाँ के कुछ नगरों या राजधानियों का उल्लेख[१४३] है। पुरातत्व शास्त्र से इनके जानने में हमें कोई मदद नहीं मिली है, क्योंकि यहाँ पर्यवेक्षण या उत्खनन प्रायः नहीं के बराबर किया गया है। केवल यहाँ के कुछ अभिलेखों में कुछ नगरों या बस्तियों का थोड़ा-सा उल्लेख मिलता है। कहीं-कहीं मन्दिरों के होने से आस-पास में बसे अवशेषहीन नगरों, बाजारों या ग्रामों की कल्पना की जा सकती है।

कुल्लू के सबसे प्राचीन नगर की सूचना हमें ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से मिलती है। उसके अनुसार भगवान बुद्ध कभी कुल्लू आये थे। जाहिर है कि वहाँ के तत्कालीन राजा या गणप्रशासक ने उन्हें निमन्त्रित किया होगा। उसका अपना एक राजधानी-नगर रहा होगा, जैसा कि उस समय उत्तरभारत के अन्य गणराज्यों की सुन्दर राजधानियाँ हुआ करती थीं। बाद में यहाँ सम्राट अशोक भी आया और उसने वहाँ एक स्तूप का निर्माण करवाया। ह्वेनसांग के यात्रा-काल में यह नगर अनेक बौद्ध एवं देवमंदिरों से सुसज्जित था और उसका फैलाव काफी दूर तक विस्तृत था। दुर्भाग्य से न तो उस स्तूप का ही हमें ज्ञान है और न उस काल में आवाद मंदिर तथा नगरावशेषों की ही सूचना हमें है। हो सकता है कि प्राचीन जगत्सुख[१४४] और केलात के आस-पास ही इस प्राचीन नगर के अवशेष धरती की गोद में छिपे हों और पुरातत्वविदों के प्रयत्न के फलस्वरूप कभी प्रकाश में आये। (देखिये चित्र १५)

कुल्लू-क्षेत्र के अन्य प्राचीन नगरों का ज्ञान हमें वहाँ के अभिलेखों एवं वंशावलियों से भी मिलता है। चौथी या पाँचवीं शदी ई० में लिखाये एक अभिलेख में कुछ सूचना मिलती है, जो सलारु के पास स्थित एक स्थान से मिला[१४६] है। इसमें लिखा है कि महाराज श्री चण्डेश्वर हस्तिन ने शालिपुरी नामक एक नगर की स्थापना की थी। यह स्थान मंडी और कुल्लू सीमा पर स्थित सालरी ग्राम मालूम पड़ता है, जो

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्राचीनकाल में कुल्लू का एक भाग मालूम होता है। इस नगर के अवशेष संभवतः नष्ट हो चुके हैं या धरती की गोद में चिरकाल से सो रहे हैं।

इस क्षेत्र का दूसरा प्राचीन नगर जगत्सुख[१४७] था, जिसे विहंगामिनी के ग्यारहवें वंशज ने अपनी राजधानी बनाया था, जैसा कि यहाँ की वंशावली से मालूम होता है। यह नगर संभवतः पूर्वमध्यकाल में कभी बसाया गया था। यहाँ पर अनेक इमारतें एवं स्मारक बनवाये गये थे, जिसके अवशेष संध्यादेवी मंदिर में देखे जा सकते हैं, जो १५ वीं शदी में निर्मित कराया गया था। यहाँ के प्राचीन मंदिर से सम्बन्धित मकरवाहिनी गंगा की एक मूर्ति इस समय लाहौर संग्रहालय में है। इस नगर का पतन मध्य काल में संभवतः आक्रमणों के कारण हुआ और वहाँ के राजाओं ने पहले नगर को अपना राज्य-केन्द्र बनाया और फिर सुल्तानपुर को।

हाट नामक स्थान यहाँ का दूसरा प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र था, जो व्यापार के क्षेत्र में भी बड़ा विकसित हुआ मालूम पड़ता[१४८] है। इस स्थान की प्राचीनता बजौरा के विश्वेश्वर के मंदिर से मालूम होती है, जो संभवतः नवीं-दसवीं शदी ई० में कभी बनवाया गया था। हमें तो यह स्थान मंदिरों का नगर मालूम पड़ता है, क्योंकि कुलान्तपीठ माहात्म्य में वर्णित व्यास और पार्वती नदियों के संगम पर बसा यह स्थान एक प्रधान शैवपीठ जान पड़ता है। यहाँ कभी अनेक मंदिर निर्मित थे, जैसा कि यहाँ बिखरी मूर्तियों से मालूम होता है। यहाँ के निर्माणों के अवशेष संभवतः धरती में सुरक्षित है। यह मध्यकाल में निरन्तर विकसित होता रहा, क्योंकि १७ वीं शदी में लिखाये टांकरी लेख में ग्राम––दान का उल्लेख है।

इस क्षेत्र का दूसरा प्रधान सांस्कृतिक केन्द्र निर्मण्ड था, जो सतलज नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। इसकी प्राचीनता का ज्ञान हमें विशेषकर वहीं के परशुराम मंदिर में प्राप्त एक ताम्रपत्र अभिलेख[१४९] से मिलता है। वैसे यहाँ के मंदिर और उनके अवशेष तथा वहाँ से मिली मूर्तियाँ इस नगर की प्राचीनता के द्योतक हैं। इस अभिलेख के अनुसार यहाँ का प्राचीन प्रशासक, जिसका नाम वरुणसेन था, महासामन्त महाराज की उपाधि धारण करता था और उसके अधीन अनेक सामन्त थे, जिनके किरीट के रत्नों से उसका पैर चमत्कृत होता था। उसका राज्य बहुत विशाल था। उसी के वंश में कई महासामन्त हुए थे। इनमें उसके पुत्र महाराज महासामन्त सज्जय सेन, उनके पौत्र महाराज महासामन्त रविसेन और उसके प्रपौत्र महाराज महासामन्त समुद्रसेन उल्लेखनीय हैं, जिसके राज्यकाल में यह ताम्रपत्र लिखाया गया था। वह

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सातवीं शदी ई० में कभी यहाँ का प्रशासक था। उसकी रानी मिहिरलक्ष्मी ने यहाँ के मिहिरेश्वर शिव के मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए तथा वहाँ के ब्राह्मणों के लिए एक ग्राम अग्रहार दान में दिया था। यह मंदिर बहुत पहले बनवाया गया था, जिसमें महाराज सर्ववर्मन ने कपालेश्वर शिव की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी। अभिलेख में वर्णित इस राजवंशावली की तीन पीढ़ियों के वर्णन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह सांस्कृतिक केन्द्र कभी गुप्तकाल में स्थापित किया गया था। सतलज नदी का मीठाजल मिलने के कारण और उत्तरभारत को सतलज-यमुना नदियों की घाटियों से जोड़ने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्ग पर स्थित होने के कारण सम्भवतः यह स्थान एक छोटे-मोटे नगर के रूप में पहले ही विकसित हो सका था। वहाँ का धार्मिक परिवेश उसके आर्थिक विकास का दूसरा कारण था। इसे वास्तव में हिमाचल का काशी कहा जाता था। अतएव यहाँ पर दूर-दूर से यात्री आकर अनेक प्रकार के द्रव्य का उपहार देकर स्थान को आर्थिक सहायता देते थे। पास में स्थित उपजाऊ जमीन से कुछ खाद्य सामग्री मिल जाती थी। अन्यथा शेष आवश्यक अन्न और वस्तुएँ मैदानों से लाई जाती थीं। सूलिशग्राम तो अग्रहार में ही दिया गया था, जो वहीं कहीं पास में स्थित था।

इसी ताम्रपत्र में तालपुर नामक एक अन्य स्थान का उल्लेख है, जिसके नामान्त शब्दपुर से वह वहाँ का एक छोटा-मोटा नगर मालूम[१५०] होता है। इसमें अनेक व्यापारी तथा समृद्ध व्यक्ति रहते थे, जिनके पास अधिक जमीनें होती थीं। इस अभिलेख में वहाँ के एक समृद्ध व्यापारी या भूमिपति का उल्लेख है, जिसका नाम फक्क था। उसने भी उपर्युक्त मन्दिर के लिए उद्रंग (कर, धन) दान में दिया था। यहाँ के अन्य धनी कृषकों में दिन्न तथा सुलभक नामक व्यक्तियों का उल्लेख अभिलेख में किया गया है, जिनकी जमीनें वहीं पास में स्थित थीं, जिनमें से कुछ अंश उन्होंने मन्दिर के लिए दान में दिया था। यह स्थान आज भी इस क्षेत्र का एक प्रमुख व्यापारिक एवं सांस्कृतिक नगर है।

काँगड़ा-क्षेत्र के प्राचीन नगरों का ज्ञान हमें कई स्रोतों से मिलता[१५१] है। यह क्षेत्र, जैसा कि कहा जा चुका है, प्राचीन त्रिगर्त नाम से प्रसिद्ध था। महाभारत में उल्लेख मिलता है कि कौरवों के मित्र सुशर्मा ने मुल्तान से आकर यहाँ काँगड़े के किले का निर्माण करवाया, जिसे प्राचीन काल में भीमनगर कहते थे। ऐसी सूचनाएँ हमें बहुत बाद में हुए इतिहासकार उत्बी से मिलती है, जो महमूद गजनवी का मन्त्री था। फरिश्ता ने इसे भीम कोट कहा है। काँगड़ा नाम संभवतः बहुत बाद में पड़ा,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

क्योंकि प्राचीन साहित्य में इस नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। अलबरूनी ने इसे नगरकोट नाम से सम्बोधित किया है, जिससे वहाँ स्थित किले और नगर दोनों का एक साथ बोध होता[१५२] है। इसके सन्निकट स्थित प्राचीन राजधानी को सुशर्मपुर कहते थे, जिसका उल्लेख प्राचीन वैजनाथ प्रशस्ति में किया गया है। इसे व्यूलर महोदय ने नगरकोट (या काँगड़ा) से अभिन्न माना है। चौदहवीं शदी में भी यह सुशर्मपुर के नाम से भी प्रसिद्ध था, क्योंकि जोनराज की राजतरंगिणी में उल्लेख मिलता है कि कश्मीर नरेश शहवुद्दीन के आक्रमण से सुशर्मपुर के नरेश ने किला छोड़ कर वहाँ के भवन मन्दिर में शरण ली थी। तेरहवीं शदी में लिखे गये द्वितीय बैजनाथ प्रशस्ति में कीरग्राम नामक एक नगर का उल्लेख है, जिसका स्वामी नयचन्द्र था।

काँगड़ा का उल्लेख पहली बार चन्द्र बरदाई कृत पृथ्वीराज रासो में मिलता है, जहाँ यह उल्लेख किया गया है कि काँगड़ा और उसके पर्वतीय क्षेत्रों के नरेश ने तोमर नरेश अनंगपाल को भेंट दिया था। मुगल इतिहासकार अबुलफजल का वर्णन बड़ा स्पष्ट है, जिसके अनुसार पर्वत पर बसा शहर नगरकोट कहा जाता था और उसके किले को काँगड़ा कहते थे। वास्तव में दोनों को मिला कर उसे नगरकोट या कोट-काँग ा कहा जाता था। प्रारम्भिक यूरोप-यात्रियों ने भी इसे इन्हीं नामों से जाना है। विलियम फिच, जो १६११ ई० में आया था, इसे नगरकोट कहता है और वहाँ स्थित दुर्गामन्दिर का वर्णन करता है। थामस कोर्यट भी इसे इसी नाम से पुकारता है, जिसकी सूचना उसे सरथामसरो (१६१५) के साथी टेरी से मिली थी। फ्रांसीसी यात्री थेवनट ने भी इसे नगरकोट ही कहा है। वह यहाँ १६६६ ई० में आया था। उसने नगरकोट और ज्वालामुखी दोनों स्थानों के देवी-मन्दिरों का वर्णन किया है।

इस तरह यह नगर और किला प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक प्रसिद्ध था। यह सभी प्रसिद्ध यात्रियों एवं इतिहासकारों का ध्यान निरन्तर आकृष्ट करता रहा है। आक्रमणकारियों की निगाह भी इस पर निरन्तर रहती थी, क्योंकि एक तो यह सुरक्षा की दृष्टि से उत्तम था और दूसरे अत्यन्त उपजाऊ घाटी में स्थित होने और दो प्रसिद्ध देवी-मन्दिरों के कारण सम्पूर्ण देश से धर्म-यात्रियों के आने के लिए निमन्त्रित करने में सफल था। इससे यह नगर बड़ा ही धनी हो गया था। इतिहासकारों ने लिखा है कि महमूद गजनवी ने ऊंटों पर यहाँ के विजित धन-रुपये पैसे, हीरे-जवाहरातों को कई दिनों तक ढोया। यह नगर वास्तव में पर्वतीय क्षेत्रों और यहाँ की समृद्धि को पाने का द्वार था, अतएव मैदानी शासकों ने इसे जहाँ एक ओर

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अपने हमलों का शिकार बनाया, वहीं दूसरी ओर कश्मीर और चम्बा के पड़ोसी नरेशों ने भी इसके धन का अपहरण करने के लिए निरन्तर प्रयत्न किया।

यह किला बड़ा विशाल था। इसके कई भाग थे। १९०५ ई० के भूचाल में इसे बड़ी क्षति पहुँची। फिर भी इसके बचे खण्डहर उसके प्राचीन गौरव के प्रतीक हैं। इसका हिमाचल में वही स्थान है, जो भारत में लाल किले का अथवा पुराने किले का है। इसे देखने के लिए आज भी देश-विदेश से यात्री आते हैं।

कीर ग्राम काँगड़ा क्षेत्र का एक प्रमुख कस्बा था, जिसे आधुनिक काल में बैजनाथ कहते[१४३] हैं। यह काँगड़ा जिले में उसके पूर्व में कोटकाँगड़ा से लगभग ३० मील दूर स्थित है। यह व्यास नदी की सहायक नदी बिनुवन के बायें तट पर आबाद था, जिसे अभिलेख में कन्दुकविन्दुक कहा गया है। यहाँ पर कई प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर पाये जाते हैं, जिससे प्राचीन काल में उसकी महत्ता द्योतित होती है। यहाँ स्थित सिद्धेश्वर बैजनाथ तथा कुछ अन्य मन्दिरों का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। यह स्थान न केवल राजाओं के प्रशासन तथा निवास का केन्द्र था, जहाँ पूर्वकालीन कटोच राजवंशी शासक अत्यन्त प्राचीन काल से रहते थे, वरन् यह धनी व्यापारियों तथा हर प्रकार के विद्वानों का भी एक प्रमुख निवास-स्थान था। प्राचीनकाल में यह जलन्धर नामक प्राचीन तथा विशाल नगर के अधीन रह कर विकसित हो रहा था। यहाँ हिन्दू तथा जैन व्यापारी अधिक संख्या में रहते थे, जिनमें से कुछ गुजरात–जैसे दूर स्थित प्रदेशों से भी आये हुए थे। बैजनाथ प्रशस्ति के अनुसार यहाँ मन्युक और आहुक नामक दो व्यापारी नवीं शताब्दी में रहते थे, जो बड़े धनी थे। उनके पास कई दुकानें, मशीनें तथा अत्यधिक जमीनें थीं, जिसमें से उन्होंने एक तेल की मशीन, अपनी कुछ दुकानें तथा कुछ खेत शिव-मन्दिर के लिए दान में दिया था। यह व्यापारिक परिवार यहाँ अत्यन्त प्राचीनकाल से रह रहा था। उनके पूर्वजों में सिद्ध, काहिल, पाहिल तथा साहिल थे, जो चार पुश्तों से वहाँ बस कर अपनी जीविका का वर्णन कर रहे थे।

कीरग्राम में अन्य कई व्यापारी रहते थे। इसमें देपिक तथा मल्हिका के पुत्र जीवक का उल्लेख किया जा सकता है जो नवीं शदी में यहाँ रहता था। वह बड़ा धनी व्यापारी था। उसके पास बहुत अधिक जमीन थी, जिसमें से कुछ अंश शिव के मन्दिर का प्रांगण बनने के लिए दान में दिया था। बैजनाथ प्रशस्ति में यहाँ के प्रमुख नागरिकों में कुछ कारीगरों तथा ज्योतिषी ब्राह्मणों का उल्लेख किया गया है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इसके अनुसार गणेश्वर नामक ज्योतिषी, जो गोविन्द का पुत्र था, यहाँ का एक बड़ा धनी व्यक्ति था।

चम्बा क्षेत्र में बसाये गये हमें दो या तीन प्राचीन नगरों का ज्ञान है। जन-श्रुतियों एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से मालूम होता है कि यहाँ का सबसे प्राचीन नगर भरमौर था, जिसे प्राचीन काल में ब्रह्मपुर[१५४] कहते थे। इसे सम्भवतः मेरुवर्मा ने बसाया था। इस नगर की विशालता की कल्पना हमें उन प्राचीन मन्दिरों से भी होती है, जिन्हें उसी राजा ने बनवाया था। यह यहाँ के वर्मा वंशीय राजाओं की सबसे प्राचीन राजधानी थी। हो सकता है कि आस-पास कहीं इससे भी प्राचीन नगर या प्रशासन-केन्द्र रहा हो, क्योंकि रावी का जल और उसकी घाटी तथा चारों ओर पहाड़ों से घिरी प्राकृतिक प्राचीन सुरक्षा ऐसे नगरों की उत्पत्ति एवं उनके विकास के लिए सदैव सहायक रही है। लेकिन सातवीं शदी ई० से पूर्व यहाँ विकसित किसी नगरावशेष का ज्ञान हमें नहीं है। ह्वेनसांग भी संभवतः हिमाचल के इस हिस्से में नहीं आया था, इस तथ्य से भी इस विकास में कुछ नकरात्मक सूचना मिलती है वैसे चम्बा का राज्य पहले भी किसी न किसी रूप में स्थित रहा होगा। अति प्राचीन काल में त्रिगर्त-राज्य का एक भाग होने पर भी प्रशासकीय और व्यापारिक केन्द्र के बगैर यह हिस्सा ऐसी जीवित संस्कृति को जन्म नहीं दे सकता था, जैसी कि सातवीं-आठवीं शदी में यहाँ पनपी और विकसित हुई। कुछ इतिहासकारों का विश्वास है कि यह क्षेत्र हर्षवर्धन और यशोवर्मा के राज्य के भीतर था और वहाँ के क्षेत्रीय शासक कन्नौज के अधीन[१५५] थे।

भरमौर के प्राचीन अवशेषों में वे अनेक मन्दिर हैं, जिनका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। इन मन्दिरों में प्रतिष्ठित पीतल की मूर्तियाँ हिमाचल की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश की अमूल्य निधियाँ हैं। इन मन्दिरों में मिलने वाली काष्ठ-कला तो संभवतः पूरे देश में अद्वितीय[१५६] है। उनमें खचित सहस्रों मूर्तियाँ या मूर्तिचित्र हमें इस पूरे क्षेत्र को मन्दिरों का नगर कहने के लिए मजबूर करते हैं। इन्हीं कारणों से इस स्थान को अगर हिमाचल का या पर्वतीय क्षेत्र का खजुराहो कहा जाय तो, शायद कोई अतिशयोक्ति न होगी। इसी में हम छतराड़ी में निर्मित प्राचीन शक्ति-देवी के मन्दिर को भी सम्मिलित कर सकते हैं, जो चम्बा और भरमौर के बीच स्थित है।

चम्बा भी यहाँ का बड़ा प्राचीन नगर[१५७] है। यहाँ के राज्य की राजधानी भरमौर से उठकर दसवीं शताब्दी में यहाँ चली आई। राजतरंगिणी में उल्लेख मिलता

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

है कि १०५० ई० के आस-पास यह स्थान यहाँ की राजधानी थी। कश्मीर-नरेश अनन्त देव ने इसी समय यहाँ के शासक साल को पराजित किया था। यहाँ की वंशावली में सैल या साहिल वर्मा का उल्लेख मिलता, जिसे चम्बा का संस्थापक माना गया है। यहाँ से लगभग १५० अभिलेख मिले हैं, जो ताम्रपत्र या प्रस्तर खण्डों पर लिखाये गये[१५८] थे। आस-पास के अन्य क्षेत्रों के अभिलेखों में भी इसका उल्लेख हुआ है। कल्हण की राजतरंगिणी और जौनराज की कृति में भी इसका उल्लेख है। अभिलेखों से मालूम होता है कि यह नगर रावी तथा सल नदियों के संगम पर बसा सौन्दर्य और समृद्धि का प्रतीक था। पीछे स्थित शाहमद पर्वत प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करता था, उपजाऊ घाटी के द्वार पर बसा यह शहर उत्थान-पतन के थपेड़े खाता हुआ १९वीं शदी तक विकसित होता रहा। यहाँ समय-समय पर कई मन्दिर बनवाये गये। साहिल वर्मा ने लक्ष्मी नारायण के मन्दिर की स्थापना की और उसमें संगमरमर की एक प्रतिमा प्रतिष्ठापित की। उसके उत्तराधिकारी युगाकर वर्मा ने यहाँ गौरी-शंकर के मन्दिर का निर्माण किया, जिसमें पीतल की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गई। इनके अवशेष इस क्षत्र की अमूल्य निधि हैं। इनमें हम हरिराय मन्दिर और उसमें रक्खी अद्वितीय विष्णु प्रतिमा का उल्लेख कर सकते हैं, जो यहाँ के सबसे प्राचीन अवशेषों में से एक है। बाद में मध्यकाल में बने यहाँ अन्य अनेक मन्दिर इस नगर की आज भी शोभा बढ़ाते हैं।

चम्बा के सबसे प्राचीन अवशेषों में हरमन गोयट्ज को ईटों के बने एक मंदिर का चबूतरा मिला[१५९] था। इस तथ्य से इस नगर की प्राचीनता की ओर संकेत मिलता है। हो सकता है कि यह स्थान गुप्तकाल में कभी बसाया गया था, जिसे बाद में वर्मा वंशीय शासकों ने पुनः अपना कार्य-केन्द्र बनाया।

मंडी क्षेत्र में भी हिमाचल के अनेक प्राचीन अवशेष विद्यमान हैं, जिनके कारण यह भी यहाँ के सबसे प्राचीन स्थानों में से एक मालूम होता है। व्यास नदी और उसकी दो छोटी नदियों के संगम पर बसा यह स्थान प्राचीनकाल में न केवल एक प्रशासकीय एवं सांस्कृतिक केन्द्र था, वरन् इस पहाड़ी क्षेत्र के एक प्रमुख व्यापारिक मार्ग पर स्थित होने के कारण एक प्रधान व्यापारिक केन्द्र भी था।

पुरानी मंडी जो व्यास नदी के दाहिने किनारे पर बसा है, यहाँ का प्राचीन भाग है, जो संभवतः इस क्षेत्र की प्राचीन राजधानी[१६०] थी। इसका उल्लेख पुराणों में माण्डव्यथ नाम से किया गया है। यहाँ की धरती में संभवतः पुराने अवशेष छिपे

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हैं, जिनके अवशेषों की झांकी वहाँ के शीतला माता, भीमा काली तथा जाल्पा नामक देवी मंदिरों में देखे जा सकते हैं। यहाँ यद्यपि आधुनिक मंदिर बने हैं, लेकिन उनमें रक्खी कुछ मूर्तियाँ और वहाँ प्रचलित परम्परायें उन्हें प्राचीन सिद्ध करती हैं। भीमा-काली मंदिर का अवशेष तो पुरानी मंडी से कुछ दूर हटकर व्यास नदी की गोद में सिमटो एक छोटी-सी पहाड़ी पर पाया जाता है, जहाँ एक पुराना विशाल शिवलिंग पड़ा है जिसकी वेदिका पर बनी दुर्गा की मूर्ति देखी जा सकती है। लगता है कि यह स्थान पहले एक शाक्त पीठ था, जहाँ बाद में शैव धर्म का बोलबाला हो गया। यह बात उन विशाल मंदिरों के देखने से मालूम होती है, जो व्यास के दोनों किनारे पर पूर्व मध्यकाल के अन्तिम चरण में बनवाये गये जान पड़ते हैं। त्रिलोक नाथ मंदिर, पंचवक्त्र का मंदिर और अर्द्धनारीश्वर का मंदिर इस दृष्टि से उल्लेखनीय है, जिसकी बनावट एवं जिनमें बनी मूर्तियाँ प्राचीन सुन्दर कला-कृतियों के समान नहीं हैं। इनमें मध्यकालीन विशेषतायें अधिक मिलती हैं। कुछ भी हो, मण्डी हिमाचल का बनारस है और वहाँ काशी की तरह अनेक प्राचीन अवशेष देखे जा सकते हैं। यह इस परम्परा से भी सिद्ध होता है कि यदि वाराणसी काशी विश्वनाथ की नगरी मानी जाती है तो मंडी बाबा भूतनाथ का निवास-स्थान माना जाता है।

यहाँ के पुराने किले के कुछ अवशेष पुरानी मंडी से ऊपर बसे वासनगाँव में बताये जाते हैं। अन्य प्राचीन अवशेषों में उन बावलियों को भी गिना जाना चाहिए, जहाँ पानी के सोते निकलते हैं। यहाँ पर प्राचीन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनी हैं। इनमें हम छांय बांय बावली को विशेष रूप से गिन सकते हैं, जिसके अवशेषों में सुन्दर प्राचीन मूर्तिकला का दर्शन होता है। यहाँ से लगभग पाँच मील दूर स्थित विन्द्रावली और चाम्बी गाँवों में भी प्राचीन मंदिरों एवं किलों के कुछ अवशेष मिलते हैं। पण्डोह के पास के कुछ स्थानों को बाणासुर एवं पाण्डवों से जोड़ा जाता है।

सुघ्ननामक राजधानी और उसी नाम से विख्यात राज्य की सूचना हमें ह्वेन-सांग के यात्रा-विवरण से मिलती[१६१] है। इसके अनुसार यह राज्य लगभग ६०० मील में विस्तृत था। इसके पूर्व में गंगा नदी बहती थी। उत्तर में बड़े ऊँचे पहाड़ स्थित थे और बीच में यमुना नदी बहती थी। इसकी राजधानी अत्यधिक दूर तक फैली थी, जिसकी पूर्वा सीमा पर यमुना नदी बहती थी।

कनिंघम ने इस स्थान की पहचान अम्बाला स्थित सूध नामक स्थान से की है, जो जगाधारी के निकट स्थित एक ग्राम है। उनका कहना है कि यह ग्राम अत्यन्त ऊँचे उचित स्थान पर स्थित है, जो त्रिकोण है और यमुना नदी से तीन तरफ घिरा

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

है। पश्चिमी यमुना नहर यहीं से निकलती है। यह केवल पश्चिम की ओर खुला है और तीन तरफ प्राकृतिक दशाओं से सुरक्षित होने के कारण शत्रुओं से अजेय है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सुघ्न राज्य विशाल था और उसकी राजधानी उपर्युक्त स्थान पर स्थित हो सकती है। जैसा कि कनिंघम के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है। लेकिन यह स्थान यमुना द्वारा तीन तरफ से घिरा बताया गया है जब कि ह्वेन-सांग द्वारा वर्णित शहर यमुना के ठीक किनारे पर बसा था और वह उसके सिर्फ पूर्वी किनारे पर बहती[१६२] थी। दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि राजधानी ऐसे स्थान पर स्थित जान पड़ती है जो पहाड़ के अत्यन्त निकट था और दूसरा बौद्ध स्थान काल्सी उसके समीप स्थित[१६३] था। अतएव हमें तो यह लगता है कि यह राजधानी सिरमौर क्षेत्र में कायर्दा दून में या इसके पास कहीं सीमा पर स्थित थी। अतएव कुछ अन्य विद्वानों ने इसे पौन्टा साहब और बरया नामक स्थान के बीच कहीं स्थित माना है। डा० ए० सी० बनर्जी का कहना है कि इस क्षेत्र में भी एक सुध नामक ग्राम यमुना नदी के किनारे स्थित है, जो प्राचीन सुघ्न की ओर संकेत करता है। हमारा विचार है कि यह स्थान यमुना नदी के किनारे और सिरमौर की दूसरी नदी गिरि के उत्तर में स्थित था, क्योंकि यहाँ स्थित होने के कारण वह एक तरफ मैदानों से होने वाले आक्रमण से अत्यन्त सुरक्षित था, क्योंकि उधर से आने वाली शत्रु-सेना को दो नदियाँ पार करनी पड़ती थीं और दूसरी तरफ यह स्थान पहाड़ की गोद में स्थित है, अतएव सुरक्षा की दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण और उपयोगी है। गिरि और यमुना नदी के द्वाबे में संगम से दूर और यमुना के ठीक किनारे आज भी एक ग्राम स्थित है, जिसे सिंधपुरा कहा जाता है। 'सिंध' शब्द हमें सुघ्न की याद दिलाता है और पुर' शब्द नगर की ओर संकेत करता है। वैसे इस क्षेत्र में सिरमौरी ताल भी अत्यन्त प्राचीन स्थान है और हो सकता है कि यह भी कुनिन्दों को एक राजधानी रही हो या वह प्राचीन काल में उनके काल में भी एक नगर के रूप में विकसित रहा हो।

महासू-क्षेत्र में स्थित हाटकोटी एक प्रधान सांस्कृतिक केन्द्र था, जो पब्बर तथा जुब्बल नामक नदियों के संगम पर बसा था। यहाँ प्रतिहार कालीन मन्दिर एवं मूर्तियाँ देखी जा सकती[१६४] हैं। यह गुप्तोत्तर काल में विकसित मन्दिरों का नगर जान पड़ता है, जहाँ यहाँ के लघु राज्य की राजधानी भी थी। यहाँ से मिले कुछ अभिलेख भी इसे पूर्व मध्यकालीन अवशेष बताते हैं। यहाँ के मंदिर उत्तर भारतीय नागर शैली में प्रस्तर-खण्डों से निर्मित हैं, जिनमें प्रतिहार कला विद्यमान है। यहीं

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

विशेषतायें इनकी मूर्तियों में भी हैं। यह क्षेत्र वास्तव में प्रतिहार-साम्राज्य के भीतर कई शदियों तक था, अतएव उत्तर भारतीय संस्कृति के प्रभाव यहाँ मिलने स्वाभाविक ही हैं।

शिमला-बिलासपुर क्षेत्र में बिलासपुर एक प्राचीन स्थान मालूम पड़ता[१६५] है। यहाँ का पूर्वमध्यकालीन रंगनाथ मंदिर उसकी प्राचीनता का परिचायक है, जो अब यहाँ के नये गोविन्दसागर भील में समाहित हो गया है। (देखिये चित्र ४) यह एक ऐसे प्रमुख व्यापारिक मार्ग पर स्थित है, जो इस पहाड़ी क्षेत्र को पंजाब के समृद्ध भाग से जोड़ता है, अतः यहाँ पर एक प्राचीन नगर के विकास की सम्भावना अत्यधिक है। मध्यकाल में यह यहाँ के क्षेत्रीय राज्य की राजधानी के रूप में विकसित हुआ और अन्य मंदिरों तथा भवन-निर्माणों से यह अलंकृत किया गया।

यहाँ के नगरों का सही जीवन हमें अज्ञात है क्योंकि साहित्य में कहीं भी उनका उल्लेख नहीं मिलता है। प्रत्येक नगर में मंदिरों के निर्माण से यह मालूम होता है कि यह जीवन पूर्णरूपेण धार्मिक था और लोगों की जीवन-धारा प्रायः पारलौकिक लक्ष्यों की ओर उद्बुद्ध थी। उनके भौतिक जीवन की झाँकी यहाँ से प्राप्त प्राचीन मूर्तियों से कुछ हद तक जानी जा सकती है, जिसका हमने पहले ही उल्लेख किया है। सभी नगर हर प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियों के केन्द्र थे, ऐसा बैजनाथ प्रशस्ति तथा निर्मण्ड ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात होता है। इनमें यदि बड़े-बड़े धनी, सेठ-साहूकार निवास करते थे, तो वहाँ पंडितों, ज्योतिषियों, कलाविदों, तथा कवियों की संख्या नगण्य न थी। राज्य-प्रशासन के केन्द्र तो थे ही। वहाँ पर आयोजित व्यापार-कार्य का हम केवल अनुमान लगा सकते हैं। अतः नगरों में जहाँ एक तरफ धनी और अभिजात वर्ग निवास करता था, वहीं दूसरी ओर गरीबों, दासों तथा भृत्यों की भी बस्तियाँ रही होंगी, ऐसा निश्चित है। किन्नौर की नगर-बधुओं की सूचना हमें श्रृंगार प्रकाश से मिलती है, जिसमें कहा गया है कि वहाँ के लोग गीत एवं वाद्य के अत्यन्त शौकीन होते[१६६] थे। दुर्भाग्य है कि हमें लाहौल, स्पिति तथा किन्नौर के प्राचीन नगरों का सही ज्ञान नहीं है। इनमें से कुछ ज्ञात सांस्कृतिक केन्द्रों का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

8

आठवां अध्याय

सारांश

भारत में हिमाचल की सांस्कृतिक धरोहर

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अज्ञात अतीत से ही मानव इस प्रदेश में रहने लगा। उसने धीरे-धीरे जब प्रकृति पर कुछ अधिकार किया तो इस क्षेत्र में आबादी बढ़नी शुरू हुई। उसने अनेक उपायों से अपनी खाद्य सामग्री का प्रबन्ध किया, अनाज के साथ-साथ फल-फूल तथा जड़ी-बूटियों को उगाया और यहाँ उपलब्ध अन्य जीवन-साधनों का उसने उपयोग किया। भारत के अन्य भागों की तरह यहाँ भी कृषि और पशुपालन लोगों के प्रमुख पेशे रहे तथा उसने इन प्रदेशों में पशुपालन को अपना पेशा बनाया और उसके दूध या मांस से अपने खाने का प्रबन्ध किया और उसके चमड़ों और ऊन से अपने वस्त्रों का प्रबन्ध किया। इस तरह उसने व्यापार और उद्योग भी सीखा। समय के साथ उसने उनमें वृद्धि की तथा अपनी आजीविका के लिए ऐसे वातावरण में भी अनेक साधन ढूंढ़ निकाले। उसने वहाँ भी खेती की, जहाँ यह सम्भव नहीं था। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। उसने पहाड़ों के कन्धों पर खेत बनाया, और खेती की जगह या उसके साथ-साथ धीरे-धीरे उसने फलोत्पादन का भी काम सीखा।

इस क्षेत्र में कुछ ऐसे भी सामान मिले, जिनकी आवश्यकता किसी भी व्यक्ति या राज्य को पड़ती है। लकड़ी, पत्थर तथा पानी तो यहाँ सदैव उपलब्ध थे, जिनका उपयोग वह अत्यन्त प्राचीन काल से करता रहा। उसने जब पत्थरों की जगह लोहे का प्रयोग करना सीखा, तो उसे भी उसने इस क्षेत्र में खोज[1] निकाला। यहाँ के प्राचीन राज्यों और लोगों के आर्थिक जीवन आदि के अध्ययन से यह मालूम हुआ है कि प्रदेश में भी लोहा मिलता था, तांबे की खानें थीं और नदियों के पहाड़ी पानी से सोना निकाला जाता था। इनके अलावा कुछ अन्य खनिज पदार्थ भी यहाँ पाये जाते थे, जिनकी सहायता से यहाँ रहने वाले लोगों ने अपनी जीविका के अनेक साधन खोज निकाले थे। जहाँ रास्ते नहीं थे, वहाँ उन्होंने रास्ता बनाया। पहाड़ों और नदियों को पार करके एक स्थान को दूसरे स्थान से जोड़ा। इस तरह समय-समय पर नये आवागमन के साधनों की भी खोज की गई। कहने का तात्पर्य यह है कि इन कठिन स्थानों में भी उन्होंने रहना सीखा और अपनी सुख-सुविधाओं को बढ़ाने के साथ-साथ उन्होंने समाज एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों का विकास किया।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

इस प्रदेश की सीमान्त स्थिति ने भी इसके विकास में बड़ी मदद की। सम्पूर्ण भारत के उत्तर में सीमान्त प्रहरी की तरह खड़ा यह दुर्गम प्रदेश भारत के केन्द्रीय शासन एवं सत्ता के लिए अनिवार्य था। हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि इसके उत्तर में तिब्बत, लद्दाख और मध्य एशिया-जैसे प्रदेश हैं और इसका राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध चीन से भी रहा है। जहाँ एक ओर वह कश्मीर से जुड़ा है वहीं दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के पहाड़ी भागों से भी वह सुसम्बन्ध है। पंजाब के लिए तो उत्तर में जाने के लिए वह द्वार की तरह अडिग खड़ा है। अतएव देश की सरकार अपनी दृष्टि इस प्रदेश की ओर सदैव लगाये रही और इसमें स्थित व्यापारिक केन्द्रों और मार्गों को उसने समय-समय पर न केवल बढ़ाने और विकसित करने का ही प्रयत्न किया, वरन् उस पर अपना अधिकार रखने में भी वह सतत् प्रयत्नशील रही। इसके साथ-साथ देश के हृदय-क्षेत्रों में जब-जब विदेशी आक्रमणों के रूप में विपत्तियाँ आईं तो वहाँ के अनेक लोगों ने इन पहाड़ी क्षेत्रों में न केवल अपने लिए शरण-स्थान पाया, वरन् उन्होंने अपनी-संस्कृति के विभिन्न पक्षों को भी यहाँ लाकर सुरक्षित रख छोड़ा।

यहाँ के राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास के विकास को यहाँ के भौगोलिक वातावरण ने विशेष रूप से प्रभावित किया। हमने देखा है कि यहाँ की तीन पर्वत-मालाएँ यहाँ के भौगोलिक और आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करती हैं। इनसे निकल कर रावी, ब्यास और सतलज नामक तीन प्रमुख नदियाँ हैं, जो तीन प्रधान घाटियों का निर्माण करती हैं। इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे अन्य पहाड़ हैं और अन्य अनेक सहायक नदियाँ हैं, जिनकी सहायता से यहाँ अनेक सांस्कृतिक इकाइयाँ उत्पन्न और विकसित हुई हैं। सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश कई प्रशासकीय एवं आर्थिक क्षेत्रों में विभाजित होने के लिए मजबूर हुआ है। चम्बा का क्षेत्र पहाड़ियों से एकदम घिरा होने के कारण अधिक सुरक्षित था और रावी नदी के कारण उपजाऊ बन सका। कुल्लू का क्षेत्र ब्यास नदी के कारण उपजाऊ हो सका और पहाड़ियों से घिरा होने के कारण एक प्रशासकीय और सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में पनप सका। उससे लगे हुए क्षेत्र लाहौल और स्पिति इससे सदा प्रभावित होते रहे, क्योंकि इन क्षेत्रों में इससे गुजरने वाले मार्गों से होकर जाना अधिक सुगम था। लाहौल उधर चम्बा से भी लगा हुआ है अतएव वह वहाँ के प्रभावों से भी न बच सका। किन्नौर का क्षेत्र एक तरफ उत्तर प्रदेश के पहाड़ी भागों से लगा होने के कारण भारत के उत्तरी भागों वाली संस्कृति के प्रभाव-क्षेत्र में रहा और दूसरी तरफ तिब्बत से सीमावर्ती होने के कारण वहाँ के प्रभावों से न बच सका। यही हाल स्पिति का भी है क्योंकि वह भी तिब्बत की सीमा रेखा पर स्थित है।

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

हिमाचल के अन्य भाग जिसमें कांगड़ा, मंडी, बिलासपुर, शिमला, सिरमौर तथा महासू के क्षेत्र सम्मिलित हैं, भारत के मैदानी भागों के सन्निकट स्थित हैं। इससे इन्हें भारत की प्रमुख राजनैतिक और सांस्कृतिक धाराओं के साथ अधिक चलना पड़ा है। वैसे कांगड़ा के क्षेत्रों में जम्मू और कश्मीर के भी प्रभाव देखे जा सकते हैं, क्योंकि वह भाग उससे लगा हुआ है। पूर्वी भाग में महसू और सिरमौर का काफी हिस्सा उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक धारा से प्रभावित मालूम होता है क्योंकि वह उसके पहाड़ी वातावरण के निकट स्थित है। बिलासपुर और मंडी पंजाब की तरफ खुले होने के कारण वहाँ के लोगों से अधिक प्रभावित हो सका। यही बात कांगड़ा-क्षेत्र का भी है, लेकिन यह हिस्सा जम्मू और कश्मीर के निकट और उसका सीमावर्ती होने के कारण वहाँ के प्रभाव-क्षेत्र में भी रहा।

इन्हीं विभिन्न प्रभावों के परिणामस्वरूप यहाँ एक बहुरंगी संस्कृति का विकास हो सका। चाहे वह भाषा हो या लिपि, धर्म हो या दर्शन, साहित्य हो या कला। अपनी वेशभूषा हो या रहन-सहन के अन्य अनेक पक्ष। सभी में हमें यहाँ विविधता मिलती है। हमने देखा है कि यहाँ लगभग तीन या चार प्रकार की लिपियाँ विकसित हुईं। भाषायें भी कम से कम दो थीं, जिनसे मध्यकाल के अन्तिम चरण तक कई भाषाओं और क्षेत्रीय बोलियों का जन्म हुआ। इस दृष्टि से तो सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश भाषा-संग्रहालय कहा जा सकता है। धर्म के क्षेत्र में हमने देखा है कि आदि जातीय धर्मों के साथ-साथ ब्राह्मण धर्म का यहाँ कैसे विकास हुआ और अन्त में हिन्दू-धर्म के प्रधान पाँच सम्प्रदाय बड़े ही लोक प्रिय हो गये। पहले शैव और शाक्त धर्मों ने लोगों को प्रेरणा दी, फिर वैष्णव धर्म ने यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया। बौद्ध धर्म सबसे पहले प्रेरणा-स्रोत बन सका। भगवान बुद्ध के चरण-रज से यह क्षेत्र भी सुवासित हुआ और अशोक तथा कनिष्क जैसे महान् सम्राटों के सहयोग से बौद्ध कला के विभिन्न पक्षों की यहाँ बड़ी उन्नति हुई। इससे न केवल मूर्तिकला एवं भवन-निर्माण कला को ही प्रोत्साहन मिला, वरन् इससे वाद्य, तथा अन्य ललित, कलायें भी प्रोत्साहित हुईं, जिसके उदाहरण यहाँ की गोम्पाओं में मिलने वाली चित्रकला में देखे जा सकते[२] हैं। ये यद्यपि प्राचीन कालीन नहीं हैं, फिर भी इनमें प्राचीन कला की परम्परायें जीवित समझी जा सकती हैं। बौद्ध धर्म एवं दर्शन ने तो यहाँ के सीमान्ती क्षेत्र को अत्यधिक प्रभावित किया[१]। इससे वहाँ न केवल एक नये साहित्य का ही सृजन हुआ, जिसका लाभ अभी तक नहीं उठाया गया है, वरन् आयुर्वेद और चिकित्सा शास्त्र और शिक्षा के क्षेत्र में भी इसके योगदान सराहनीय रहे। बाद में हिन्दू धर्म के प्रचार एवं विस्तार के कारण वह हिमाचल के कुछ ही भाग में बच सका, फिर भी यह गौरव की बात है कि यहाँ के एक भाग में वह आज भी लाखों के जीवन का एक

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

प्रेरणा-स्रोत बना हुआ है और हिमाचल का प्रत्येक भाग धार्मिक पुराकथाओं और लोक गाथाओं से आज भी झंकृत[४] है।

मध्यकाल में कभी यहाँ जैनधर्म ने भी पदार्पण किया। लेकिन अज्ञात कारणों से वह कांगड़ा से आगे न जा सका। फिर भी यहाँ के सांस्कृतिक वैभव में उसका भी योगदान सराहनीय रहा। उसने भी कला के विकास को उसी तरह प्रेरित किया, जिस प्रकार बौद्ध तथा हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों ने किया। बौद्ध धर्म के इन सांस्कृतिक योगदानों का हमने ऊपर उल्लेख किया है। उसी प्रकार हिन्दूधर्म-सम्प्रदायों के विविध प्रकार के योगदानों का भी ऊपर संकेत किया गया है। यहाँ पुनः यह कहा जा सकता है कि यह भारत के अन्य भागों की तरह यहाँ भी दर्शन और कला के विकास में प्रमुख प्रेरणा-स्रोत सिद्ध हुआ।

यहाँ शैव, शाक्त तथा वैष्णव दर्शन के विभिन्न पक्षों का पूर्व मध्यकाल में अत्यधिक विकास हुआ। कांगड़ा तथा जम्मू से लगे हुए भागों में कश्मीर शैव दर्शन ने बड़ा प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप पूर्वमध्यकाल में शम्भूनाथ—जैसे महान् शैव दार्शनिक[५] यहाँ जन्मे। यह कांगड़ा में पैदा हुआ एक ऐसा महान् दार्शनिक था, जिसकी उपलब्धियों का उल्लेख अभिनव गुप्त के विभिन्न ग्रन्थों में साभार किया गया है। इसी प्रकार यहाँ के कौल शाक्तों ने भी शाक्त दर्शन के क्षेत्र में बड़ा योगदान दिया। परन्तु दुर्भाग्य से उनके किसी ग्रन्थ के न मिलने से हमें इस विकास के स्वरूप की अधिक जानकारी नहीं है। यहाँ विकसित बौद्ध धर्म और दर्शन भी प्रायः अज्ञात हैं, क्योंकि उसके साहित्य का अभी तक सुनियोजित अध्ययन नहीं किया गया है।

साहित्य और कला के क्षेत्र में यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर अत्यन्त सराहनीय है। हमने ऊपर लिखा है कि चंबा से प्राप्त संस्कृत भाषा में लिखे अभिलेख छोटे-छोटे खंडकाव्यों के सुन्दर नमूने हैं। इनमें ललित श्लोकों में लिखी ऐसी मधुर और पांडित्य-पूर्ण कविता मिलती है, जिससे वहाँ के प्राचीन संस्कृत कवियों और विद्वानों के ज्ञान और अध्यवसाय का अनुमान लगाया जा सकता है। इसी तरह की कविता के उदाहरण कांगड़ा की बैजनाथ प्रशस्ति में भी मिलते हैं। उसमें वर्णित कवि अपनी युवावस्था में ही जगत्प्रसिद्ध हो गया था और वह अपनी काव्य-कुशलता के लिए सर्वत्र सम्मानित था।

कला की दृष्टि से तो यहाँ की प्राचीन धरोहर अद्भुत है। चाहे वह मूर्तिकला हो या मूर्तिशास्त्र, चित्र-कला हो या लोक-कला, भवन-निर्माण-कला हो या काष्ठ-कला, सभी में अद्भुत सीमा तक की गई यहाँ की उपलब्धियाँ गणनीय हैं। कई सांस्कृतिक इकाई में विभाजित होने के कारण इस क्षेत्र ने मूर्ति-कला की अनेक क्षेत्रीय शैलियों को जन्म[६] दिया। चम्बा की मूर्तियों में मिलने वाली[७] सुन्दरता, कुल्लू[८] और काँगड़ा की

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

मूर्तियों से कम नहीं[९] है। इसी प्रकार जुब्बल और महासू-क्षेत्र में मिलने वाली प्रस्तर मूर्तियाँ अपनी सुन्दरता के लिए बहुत प्रसिद्ध[१०] हैं। चम्बा की काष्ठ-कला तो यहाँ की प्राचीन एवं मध्यकाल की कला की अमूल्य निधियाँ मानी जाती[११] हैं। (देखिये चित्र २१) उनमें प्राप्त मूर्ति-चित्रों को सम्पूर्ण विश्व की कला में अद्वितीय स्थान दिया जाता है। इसी तरह प्राप्त काँस्य, पीतल या अष्टधात से निर्मित विशाल मूर्तियाँ हिमाचल की अद्भुत कला-कृतियाँ मानी जाती हैं। (देखिये चित्र १, २, १२, १४) अपनी विशालता और सुन्दरता के लिए भारतीय मूर्ति कला में ये बेजोड़ हैं। इसी प्रकार मन्दिरों में प्राप्त अलंकरण प्रधान मूर्ति-कला की भी भूरि-भूरि प्रशंसा की जा सकती[१२] है। बाद में विकसित लोककला[१३] और यहाँ प्राप्त चित्रकला[१४] की विधि और क्षेत्रीय शैली में बनी कृतियों को तो विश्व के सभी कला-इतिहासकारों ने सराहा है। यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर में इन्हें सचमुच बड़ा ऊँचा स्थान दिया जाना चाहिए।

मन्दिर-कला के विकास में हिमाचल प्रदेश विशेष रूप से उल्लेखनीय[१५] है। भारत के अन्य भागों में जहाँ केवल तीन या चार प्रकार के मन्दिरों का निर्माण हुआ, वहाँ इस क्षेत्र में लगभग आठ प्रकार के मन्दिरों का निर्माण किया गया। इनमें यहाँ की बौद्धगोम्पाओं को यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर में विशेष स्थान दिया जाना चाहिए। प्रतिहार-काल में निर्मित यहाँ के कुछ प्राचीन अवशेष मन्दिर-कला की नगर शैली के सुन्दर[१६] उदाहरण हैं। इनमें उनका शिखर उन्हें उत्तर भारतीय मन्दिरों से जोड़ता है। इनमें काँगड़ा का बैजनाथ[१७] मन्दिर और कुल्लू के बजौरा महादेव मन्दिर का उल्लेख किया जा सकता[१८] है। चम्बा के मन्दिरों पर प्राप्त छतरी उन्हें एक दूसरी कोटि में रखती[१९] है। मसरूर में पर्वत में ही कटे तथा एक प्रास्तर में निर्मित मन्दिर विद्यमान[२०] हैं। (देखिये चित्र १२) इसी तरह ढलुआ मकान की छतों वाले मन्दिर संभवतः अत्यन्त प्राचीन क्षेत्रीय मन्दिर-कला के उदाहरण । (देखिये चित्र १९) सपाट छत वाले मन्दिर भी यहाँ मिलते हैं। मध्यकाल में विकसित गुम्बजनुमा शिखर से विभूषित अनेक मन्दिर कांगड़ा तथा सिरमौर-क्षेत्र में मिलते हैं। पैगोडा-शैली में बने दूसरे सुन्दर मन्दिर यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्हें हम इन पर्वतों में विकसित मन्दिर-कला का परिणाम मानते हैं। इन्हें हम पर्वतीय मन्दिर भी कह सकते हैं। इनमें छतों के तीन या चार मंजिल मिलते हैं, जो मन्दिर-कला में विशेष सुन्दर माने जाते हैं। मनाली में प्राप्त हिडिम्बा देवी का मन्दिर इसका सुन्दर उदाहरण माना जाता है। (देखिये चित्र १६) ऐसे कई मन्दिर कुल्लू के अन्य क्षेत्रों में भी मिलते हैं, जो हिमाचल के विशेष आकर्षण-केन्द्र हैं। (देखिये चित्र १७) इस तरह सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश जहाँ एक ओर प्राकृतिक सौन्दर्य से विभूषित है, उसी प्रकार वह

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अनेक कला-कृतियों से भी बहुविध अलंकृत हैं, जिनमें अनेक सांस्कृतिक धाराओं का अद्वितीय संगम दर्शनीय और सराहनीय है।

यहाँ अन्य कलायें भी अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गई थीं। नृत्य, वाद्य तथा संगीत का विकास सराहनीय था। (देखिये चित्र २१ और २२) यहाँ से प्राप्त प्राचीन मूर्तियों में नृत्य करते नर और नारियों के पद-चरणों का अनुमान लगाया जा सकता है। संगीत और वाद्य-यन्त्रों के साथ झूमते और मस्ती में नाचते समूह-नृत्य यहाँ के मूर्ति चित्रों में दर्शनीय है। उनके हाथों की मुद्रायें तथा चेहरों पर अंकित हाव-भाव हृदय के भावों को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। यहाँ की नृत्य-कला में जो सौन्दर्य और कोमलता थी, रसों के अभिव्यक्तिकरण में जिस सफलता को सहज रूप से प्राप्त करने की कोशिश की जाती थी, और उनमें प्रेम, करुणा भक्ति या शृंगार के जो सहज मनोभाव पाये जाते थे, उनकी कल्पना हम यहाँ आज भी प्रचलित नाटी आदि नृत्य में देख सकते हैं। संगीत और वाद्य-कलाओं के लिए यह क्षेत्र सदैव प्रसिद्ध रहा। प्राचीन साहित्य में गन्धर्वों और किन्नरों को गीत और वाद्य के लिए बार-बार सराहा गया है। (देखिये चित्र २२) यहाँ के लोकगीत आज भी अपनी मिठास के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं, जिनमें प्राचीन संगीत-परम्परा सुनी और देखी जा सकती है।

मध्यकालीन सामन्तशाही आर्थिक तथा कलात्मक परिवेश में इनका और भी विकास[२१] हुआ। इस समय ललित कलाओं में विशेष रूप से चित्रकला को राज प्रोत्साहन मिला। वैष्णव धर्म में सहज उद्‌भूत राधा-कृष्ण की प्रेम कथाओं से प्रेरणा पाकर वह अत्यधिक विकसित हुई। (देखिये चित्र २०)। साहित्य पर ऐसी कला का प्रभाव पड़ा और लोककला इसमें विशेष रूप से विकसित हुई (देखिये चित्र २३)

मध्यकाल के अन्तिम चरण में दो नई सांस्कृतिक धारायें यहाँ फिर आईं। यहीं उत्पन्न सिक्ख धर्म-धारा ने इस समय यहाँ एक नये जीवन-दर्शन की भूमिका की और इस्लाम धर्म एवं दर्शन को भी इस क्षेत्र ने आकृष्ट किया। परिणामतः अनेक गुरुद्वारों तथा मस्जिदों से भी यह क्षेत्र अलंकृत किया[२२] गया। और इन सांस्कृतिक धाराओं से भी यहाँ के जीवन-दर्शन को पुनः एक चेतना मिली। आधुनिक काल में पाश्चात्य संस्कृति एवं जीवन-विधा ने इसे पुनः एक नई जीवनी-शक्ति दी, जिससे यहाँ की परम्पराओं और पुरातन विधियों को एक नई दृष्टि से दर्शाने का अवसर मिला। हिमाचल प्रदेश का प्राचीन सांस्कृतिक वैभव इन्हीं नूतन जीवन-धाराओं से मिलकर कैसी नवीन जीवन-शैली और लौकिक सौन्दर्य को जन्म देगा, यही अब देखना है।

— — — —

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

BIBLIOGRAPHY, REFERENCES AND NOTES

CHAPTER I

1. Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Vol. t, Punjab, 1908.
2. Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 7-9.
3, Ibid, pp. 9-12, For details see pp. 1-60; vide also Samuel Beal, Travels of Hiuen Tsiang, Calcutta, 1958, Vol. II, pp. 207-221.
4. Himachal Pradesh District Gazetteers, Sirumaur, 1969, pp. 2-42.
5. Ibid.
6. Himachal District Gazetteers, Kinnaur, 1971, Ch. I, pp.1-46.
7. Himachal Pradesh District Gazetteers, Lahaul & Spiti, (1975), See Chapter I, pp. 1-31; vide also Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Vol I., Punjab, 1908.
8. Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Vol. I, Punjab, 1908.
9. Ibid.
10, B. B. Lal, "Palaeoliths from the Beas and Banganga Valley, Punjab," Ancient India, No. 12, pp. 58-92.
11. The Rgved describes river-system and water-resources of this region. The Vedas were written in the adjoining plains.
12. B. C. Law, Tribes in Ancient India, Poona, 1943;
———————Some Kshatriya Tribes of Ancient India, Calcutta. 1924;
J. Przyluski Ancient Peoples of the Punjab, 1960 ; See also A. Cunningham, Report of a Tour in the Punjab, 1978-79, Archaeological Survey of India, Vol. XIV, p. 126.
13. Matsya Purana (Tr. H. H. Wilson), See Ch. 114, verses 20-21 and 55-56, :see also Chapters 116 and 117, and Chap. 121, verses, 43 44 ; Vide also Visnu Purana, (Tr. H. H. Wilson) (Calcutta, 1972) 2. 3. 4 ; 2. 3. 5. ; 2. 3. 6. ; pp. 159-161.
14. Ep-Ind. Vol. I, pp-97-117.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

15. M. R. Singh Geographical Datas in the Puranas, Calcutta. See Ch. 10 for a detailed study of the Tribes. pp. 368-69.
16. Ibid.
17. Astadhyayi, V. 3. 116; vide also V. S. Agarwala, India as known to Panini, (Varanasi, 1953,) p. 63.
18. J. Allan, Catalogue of Coins of Ancient India in the British Museum, (London, 1967) See Introduction.
19. ibid, pp. LXXX-LXXXVII.
20. Matsya Purana, 6.45; 13.16 ; 23.39; 117-8; 121.48; 148.92 ; vide also Puranic Index I, p. 377: vide also Vayu Purana, 46.41.
21. J. Allan, op. cit., Introduction, pp. CI-CIII.
22. Samuel Beal, op. cit. Vol. II, pp. 207-221.
23. Mbh. II, 32.7; II, 52.14.
24. Ashtadhyayi, V. 3.116; vide also V. S. Agarwala, op. cit. pp. 63 and 445.
25. Mbh. V. 16-9; A. Cunningham, Ancient Geography of India, Vol. I, p. 137.
26. Hemachandra, Abhidhana Chintamani, p. 218, ff. : cf. Vaijayanti, p. 37.
27. Rajtarangini (Tr. by Arel Stein) VIII, 1531: V. 144-145, VII. 150, 182.
28. See Hiuen Tsiang's account of Trigarta, see Samuel Beal, op. cit, pp. 209-210.
29, Baijnath Prasasti calls it Kiradesa, see Ep. Ind. Vol. I, p. 97: Ramayana calls Kangra as Kaikeyadesa, Markandeya P. Ch. 114, 55.56, describes Trigarta, Padma P. Uttar Khanda, Ch. 105, describes Jalandhara region, the Visnu Dharmottara Purana locates the Trigartas between Vipasha and Iravati rivers (I Ch. 207, 51·53.)
30. Mbh. VI. IX ; Markandeya Purana, 55.48-52. Brahatsanhita; Ch. 14.29-30 ; Banabhatta Kadambari (Bombay ed.) p. 204; Raja Tarangini, II, 435-436 ; J. C. Dutta, Kings of Kashmir, Rajatarangini of Jonaraja, Srivar and Prajyabhatta, Vol. III, p. 315.
31. J. Allan, op. cit., see Kuluta coins.
32. Quoted by H. N. Shastri, A. S. R, 1907-08, pp. 206-276.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

33, Charles Eliot. Hinduism and Buddhism, Vol. III, (London, 1962), pp. 345-397 ; vide also A Cunningham, Ladakha, vide also Aurel Stein "Note on the Routes of Punjab to Turkistan and China recorded by William Finch (1611)" JPHS, Vol. VI, No. 2, 1917, 10-144. For maps see Map for Travellers in India, Burma and Ceylon, London, 1911, It has a map on Simla and Jutogh. Vide also The Imperial Gazetteers of India Vol. XXVI, Atlas, Oxford, 1931, Plate 34 is very useful for the study of this region; vide also J, Ph, Vogel Antiquities of Chamba State, Part I, Calcutta, 1911, Plate V. For the village of Sugha see A Cuningham Ancient Geography of India, p. 293, see also A. S. R, Vol. 14 p. 116. Patanjali mentions trade-activities which were carried on between Mathura and Srughna, (Mahabhasya 1.4 5-1); see also Mbh. 4.3.86 and 1.3-25, for such reference. Kashika describes the huge wall which surrounded the city of Srughna (2.3.4); vide also Mahabhasya, 6.3.122.

34. G. Buhler, "Two Prasastis from Kangra" Ep. Indi, Vol. I, (1892), No. XVI, pp. 97-118 ; vide also "The Kangra Jwala mukhi Prasasti," ibid pp. 190-195.

35. G. Buhler, "On the Pedestal of an image of Parsvanatha in the Kangra Bazar," Ibid, No. XVIII, vide also "The :Jain Inscription in the Temple of Baijnath at Kiragrama," Ibid, No. XVIII, pp. 118-119.

36. J. Tod, Annals and Antiquities of Rajasthan, London, 1960; vide also Mahabharata (Vana Parva. 190. 59-61) which describes migration of some people of the plains to hills due to political upheavals.

37. Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 162-163; vide also Ibid, Kinnaur, 1971, pp. 67-68.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

CHAPTER II

1. R. C. Majumdar, "Ideas of History in Sanskrit Literature" C. H. Philips (ed) 'Historians of India and Pakistan,' London, 1961.

K. A. Nilakanta Sastri and H. S. Ramanna, Historical Methods in Relation to Indian History, Madras, 1956.

U. N. Ghoshal, The Beginnings of Indian Historiography, Calcutta, 1944.

A. K. Warder, 'The Pali Canon and its Commentories as an Historical Record," C. H. Philips (ed) Ibid.,

Patrik Gardener (ed) The Philosophy of History, Oxford University Press, 1974.

R. G. Callingwood, The Idea of History, Oxford, 1973 p. 7 ff.

E. H. Car, What is History, Penguin, 1968.

A. L. Bashan, "Modern Historians on Ancient India", C. H. Philip (ed) Ibid, 1961.

2. R. C. Majumdar : Classical Accounts of India, p. 232, Megasthenes discribes high hills having trees ladden with fruits, quoted by R. K. Mukerji, Chandra Gupta Maurya and His Times, p. 75.

Samuel Beal. Travels of Huien Tsiang, Vol. II (Sushil Gupta India Ltd.), Calcutta, 1958.

H. A. Giles, "The Travels of Fahsien or Records of Buddhist Kingdoms, Cambridge, 1923.

Itsing, A Record of Buddhist Practices (Takakusu) (ed) Oxford, 1896.

3. Alberuni, "Tahqiq-i-hind" (Alberuni's India), English Translation by E. C. Sachau, London, 1914.

G. Tucci, Travels of Tibetan-Pilgrims in the Swat Valley, 1940, pp. 25-45.

See also H. C. Bernes, A History of Historical Writing; H. M.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Elliot and J. Dowson, History of India as told by its own Historians (8 volumes), London, 1966-77.
Vol. II, Aligarh, 1952.

4. Surendranath Sen, The Indian Travels of Thevenot and Carey, New Delhi, 1949 ;
vide also, quoted by J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of the Panjab Hill States, Lahore, 1933, Vol. I, See Introduction.
J. Gore, Hill Life in India, (Reprint) Delhi, 1972; Sir W. Woster, Early Travels in India, 1583-1619, London, 1923.
Vide also. "The earliest English visitors to the Punjab, 1885-1908," J P H S; Vol. I, No. 2 (1912), pp. 107-187.
5. George Forster, Journey from Bengal to England (two volumes) London, 1798.
6. Moorcraft, Travels in Hindustan, 1841.
7. Quoted by J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of Panjab Hill States, Vol. I, See Introduction.
8. Peneloke Chetwode, Kulu, The End of the Habitable World, John Murrary, London.
9. A. B. Keith, History of Sanskrit Literature. Oxford, 1928.
10. Nihar Ranjan Ray, An Approach to Indian Art.
E. B. Havell, The Ideals of Indian Art, London, 1911.
Anand K. Coomaraswamy, History of Indian and Indonesian Art, Dover Publications, New York, 1965.
Stella Kramrisch, Indian Temple Sculpture, Oxford, 1933.
V. S. Smith, History of Fine Art in India and Pakistan, Oxford. 1911.
H. Zimmer, The Art of Indian Asia (2 vols) New York, 1955.
11. Patrik Gardener (ed) The Philosophy of History, Oxford University Press, 1974.
12. V. S. Agrawala, Harsha Charit-ek Sanskritik Adhyayana, 1964, p. 168, 187.
13. ————, India as Known to Panini, 1953.
Brahatsamhita, Ch. XIV, 28-31.
Visnu Purana (Tr. by H. H. Wilson) Calcutta, 1972, 2.34.6
Markendey Purana, Ch. 55, 48-52.
Matsya Purana, Ch. 121.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Padma Purana (Uttar Khand) Ch. 105, it describes Jalandhar region of Panjab.

The Brahmanda Purana has a Ch. named Kulanta pitha mahatmya which describes Kulu and Parbati Valley and religious centres situated there.

Mahabharata, VI. IX.

Visakhadatta, Mudrarakshas (ed) by K. H. Dhruva. Poona, 1923.

Banabhatta, Kadambari, Bombay, ed. 1896, p.204.

14. D. C. Sircar, Select Inscriptions, Bearing on Indian History and Civilization, Vol. I, Calcutta, 1965.

15. V. S. Pathak, Ancient Historians of India, Asia Publishing House, Bombay, 1966.

16. Hemachandra, Dvasrayamahakavya, with the commentary of Abhayatilakagani, Ed. by A. V. Kathavate (2 vols), Bombay Sanskrit and Prakrit Series No. 69 and 76, Bombay, 1915 and 1921.

Abhidhanachintamani, ed. Bohtlinck and Riou, St. Peterberg, 1847.

17. Merutunga, Prabandha Chintamani, ed. by Jinavijayamuni Calcutta ; vide also its translation by C. H. Tawney Calcutta, 1901.

18. C. Von Furer Haimandorf, 'The Historical Value of Indian Bardic Literature', C. H. Philps (ed), op. cit. : vide also Chandbardai, Prithvirajaraso, ed., S. S. Das, Banaras, 1904.

19. Rajasekhara, Prachanda Pandava, quoted by Dasharatha Sharma, Rajasthan Through the Ages, Bikaner, 1966, pp. 182-183.

20. Kalhana, Raja Tarangini (in 2 volumes) English translation by M. S. Stein, Motilal Banarasi Dass, Varanasi, 1961.

Vide also A. L. Basham, "The Kashmir Chronicle", C. H. Philps (Ed.) Historians of India and Pakistan, London, 1961.

21. J. C. Dutta, Kings of Kashmir (Raja Tarangini of Jonaraja, Srivara and Prajyabhatta) Vol. III, p. 315.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

22. Herman Goetz, The Early Wooden :Temples of Chamba, Leiden, 1955, pp.
Vide also H. N. Sastri, "Historical Documents of Kulu," A. S. R. (Annual Report) 1907-08, Calcutta, 1911.

23. H. N. Sastri, "Historical Documents of Kulu", Archaeological Survey of India, Annual Report, 1907-08, Calcutta, 1911, pp. 260 276.

24. Ibid.

25. Harry Elmer Barnes, A History of Historical Writing; vide also R. G. Callingwood, The Idea of History, Oxford, 1973, p. 52 ff.
See also Franz Rosenthal, A History of Muslim Historiography, Leiden, 1952.

26. D. C. Sircar, Indian Epigraphy, Motilal Banarasidass, Delhi, Ch. I.
........, Select Inscriptions, Bearing on Indian History and Civilization, Vol. I, Calcutta, 1965: Rajbali Pandey, Asoka ke Abhileka, Bharatiya Jnanapitha, Varanasi.

27. D. C. Sircar, Indian Epigraphy, Motilal Banaridass, Delhi.

28. T. N. Ramachandran," Asvamedha Site Near Kalsi", The Journal of Oriental Research, Madras, Vol. XXI, 1953 pp. 1-31; See also Romila Thapar, Asoka and the Decline of the Mauryas, Penguin, pp. 231-232.
J. Fleet, Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III (2nd Print) No. 80, Plate XLIV. "Nirmand Copper Plate Inscription of Mahasamanta Samudrasena." p. 286.
Vide also R, P. Yadav : Some Observations on the Nirmand Copper Plate of Maharaj Sumudrasen of Kulu, Journal of the Royal Asiatic Society of Bombay, Vol. 47-48,(1977), pp. 75-86.
J. Ph, Vogel, "A Copper Plate Grant of Bahadur Singh in Kulu," Archaeological Survey of India, (Annual Report), 1903-04, pp. 261-69.

29. J. Ph. Vogel, Antiquities of Chamba State, Part I, Calcutta, 1911, ———, "Incsription of Chamba State", Archaeological Survey of India, Annual Report, 1902-03, pp. 239-272.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Rock Inscription at Salri near Salanu, See H. N. Sastri, op. cit.

30. A. F. P, Harcourt, The Himalayan District of Kuloo, Lahaul and Spiti (reprint) Delhi, 1972.

J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of the Panjab Hill States (2 Vol.) Lahore, 1933.

A. H. Francke, History of Western Tibet (2 Parts).

31. G, Buhler, ; "Two Prasastis from Kangra", Ep. Indica, Vol. I, 1892, No. 16, pp. 97-117 ;

———, "The Kangra Jwalamukhi Prasasti", ibid, pp. 190-194. "Inscription On the Pedestal of an Image of Parsvanath in the Kangra Bazar," ibid No. XVIII, p. 120.

————, 'The Jain Inscription in the Temple of Baijnath at Kiragrama," ibid, No, XVII, pp. 118-119.

Vide also Ep. Indica, Vol. VII, pp. 116 for Kanhiara Inscription and Ep. Indica, Vol. III, p. 116 for Pathyar Inscription.

32. T. S. Negi, ed., Himachal Pradesh; District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 82-84.

33. D. C. Sircar, Indian Epigraphy, Delhi, Ch. I.

34. A. H. Dani, Indian Palaeography, Oxford University Press, London, 1963.

C. S. Upasaka, The History and Palaeography of Mauryan Brahmi Script, Nalanda, 1960.

G. S. Ojha, Prachin Bharatiya Lipimala, Munshi Ram Manoharlal, Delhi.

G. Buhler, Indian Palaeography, Calcutta, 1962.

35. J. Allan, Catalogue of Indian coins in the British Museum, London, 1967, see introduction.

A. K. Narain, "Numismatists and Historical Writing," C. H. Philips (ed). op. cit..

D. C. Sircar, A Study in Indian Coins, Delhi, 1968. pp. 212-13.

36. P. L. Gupta, Coins, National Book Trust, New Delhi; R. B, Whitehead, Catalogue of Coins in the Punjab Museum, Lahore, Vol. I, Oxford, 1914.

P, Gardner, Catalogue of Coins in British Museum, Greek and Seythic Kings, London, 1886.

State ... Library, Lucknow 7135

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

37. A Cunningham, Coins of Medieval India (Oriental Reprint) New Delhi, 1967, pp. 67, 99-103.

38. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of the Punjab Hill States, Vol. I, p. 15.

A Cuninngham, Archaeological Survey of India Reports (New series), Vol. I, II, V and XIV.

J. Ph. Vogel "Ancient Monuments af Kangra Ruined in the Earthquacke", ASR, 1905-06, pp. 10-28.

——————, "The Temples of Mahadeo at Bajaura, Kulu" A.S.R. 1909-10, Calcutta, 1914, pp. 18 24.

——————, "Hill Temples of the Western Himalayas", Journal of Indian Arts and Letters. 1946

——————, "Inscribed Brass Statuette from Fatehpur Kangra", A. S. R. 1904-05, pp. I08-109.

H. N. Sastri, "Ruined Temple in the Nurpur Fort", A.S.R. 1904-05, pp. 110-120.

J. Ph. Vogel, Catalogue of the Bhuri Singh Museum at Chamba, (Chamba State, Punjab), Calcutta, 1909.

V. C. Ohri Arts of Himachal, State Musuem, Simla, 1975.

A. H. Francke, Antiquities of Indian Tibet, Part I and II, Calcutta 1914 and 1926.

B. H. Lee Shuttleworth, Lha-Lun-Temple, Spyti, Memoirs of the Archaeological Survey of India, No. 39, 1929. It has a very useful preface written by A. H. Francke.

Vide also ASR. Vol. V, p. 177 ; ASR, 1930-34. Part I, p. 75 for an image of Adinatha in the fort of Kangra.

Vide also ASR 1914-15 (Part I) for Masrur Rook-cut Temples and some other images from Himachal ; see also A S R, (Annual Report), 1922-23, for Vajeswari Temple at Bhawan, Kangra, pp. 91-92.

Vide also A S R. 1926.27, pp. 234-35 for some medieval Saiva Sculptures of Himachal Pradesh.

39. M. Wheeler, Archaeology from the Earth, Panguin; Grahme Clark, Archaeology and Society, London, 1963, see chapters VI, VII, pp. 169-250.

F. R. Allchin, "Ideas of History in Indian Archaeological Writtings, A Preliminary Study", C. H. Philips (ed), Histo-

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

rians of India and Pakistan, London, 1961.

R. V. Joshi, "Pre-History Stone Age Sequence in the Kangra Valley." A paper presented in the seminar on Himachal Art and Archaeology held in the State Museum, Simla, 5th October, 1975. (published)

B. B. Lal, "Palaeoliths from the Beas and Banganga Valleys, Punjab", A. I. No. 12, pp. 58-92.

CHAPTER—III

1. "Evidences of Early Man in Suketi Area," The Tribune, Mondey, December, 9 1974. p. 3; See also, "A Sivalik Contain story of Man's evolution", The Hindustan Times, Saturday, Nov. 8, 1975, P. 5.
2. B. B. Lal " Palaeoliths from the Beas and Banganga Valleys, Punjab," Ancient India No. 12. pp. 58-92: Vide also R. V. Joshi, "Early Stone Age Discoveries in the Beas Banganga Region", Cultural Forum, 1968, Vo;. 9 (1-2) pp. 96-99.
3. R. V. Joshi, Prehistory Stone-Age Sequence in the Kangra Valley, A paper presented in a Seminar on Himachal Art and Archaeology, State Museum; Simla, now published by the State Museum, Simla (1979).
4. M. P. Sahni and G. C. Mahapatra, "The First Record of Small Flake Tools and Polished Stone Celts in Kangra District, East Punjab," Current Science XXXIII, 6, 178-80; Vide also G. C. Mahapatra, "Significance of Neolithic Discoveries at Ror, Himanchal Pradesh," Prehistory of Himancha Pradesh, Some latest Findings, State Museum, Simla, 1979. "Most of these sites are situated along the course of the Beas in the valley of Kangra and in the dun between Pinjore and Nalagarh. However, there are a few isolated sites located around Daulatpur on the Soan (tributary of the Beas) and Bilaspur on the Sutlej" Indian Archaeology, A Review 1961-62, p. 54., vide also D, Sen "Naglagarh Palaeolithic Culture,' Man In India, Vol. XXXV (3). 1955, pp. 176-184: vide also G. C. Mahapatra,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

"Lithic Industries of Himanchal Prsdesh," Perspectives in Palaeonthroplogy; B. Sen Festsehrift. Ed. A. K. Ghosa, Calcutta, 1974, pp, 199-212.

5. Mbh. V. 166-9: Asvamedhika Parva, 74-9; "तत्रस्त्रिगर्तराजानं सूर्यवर्माणमाहवे", Drona Parva, 121. 13-14, Sabha Parva, 52.3, 27; 16, Vana Parva. 177-11;
6. J, Allan, A Catalogue of the Indian Coins in the British Museum 1967, Introduction,
7. Panini, Astadhyayi, V, 3. 116.
8. Hiranand Sastri, "Historical Documents of Kulu," ASR. Aunual Report, 1907-08, Calcutta, 1911, pp. 265 ff.
9. Samuel Beal, Travels of Hiuen Tsiang, Calcutta, 1955, pp. 209-218.
10. Panini, Astadhyayi, 4-3-91, 5-3-114. 4-4-114; V. S. Agrawala Panini Kalina Bharatvarsa, P. 448; vide also H. C. Raychaudhari, Political History of Ancient India, p. 269; Kautilya mentions "Varta-Sastropajivisangha", see K.P, Jayasvala, Hindu Polity, pp. 231 and 231.
11. Samuel Beal, Op. cit, pp. 209-218.
12. Visakhadatta, Mudrarakshasa, 1.20 and 5.11
13. Sammuel Beal Cp. cit, pp. 209-218.
14. J. Allan, Op. cit. Introduction
15. Ibid., CXL and LVII.
16. Ibid., CXL
17. Ibid., See Kuluta Coins.
18. Ibid, p. C.
19. Ibid., p. LXXXVI.
"Tarn thinks that the territories of the Audumbaras, Kunindas. Yaudheyas. and Arjunayanas were included within the Kingdom of Menander", A. K. Narain, The Indo-Greeks, Oxford, 1957, p. 91, pp. 80-93 and pp. 74-100; Buddhism became popular in this region during his reign; see A. K. Narain, ibid, pp. 98-99; Vide also W. W. Tarn, The Greeks in Bactria and India, (2nd ed.) Cambridge, 1951, pp. 238-40,
20. Quoted by Allan, Op. cit, p. CIV.
21. Brihatsamhita, XIV. 31; Vide also IV. 24.
22. J. Allan, Op. cit. Introduction. pp. 150-168 and 288,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

23. Baldeva Kumar, The Early Kushanas, New Delhi, 1973, p. 42; vide also Bhaskar Chattopadhyaya, The age of the Kushanas, A Numismatic Study, Calcutta, 1967, p. 233.
24. D. C. Sircar, Select Inscriptions, Bearing on Indian History and Civilization, Calcutta, 1965, No. 67, p. 175, See Junagarh Rock Inscription of Rudradama.
25. A. S. Altekar, The Gupta Vakataka Age, Delhi, 1967, p. 32.
26. J. Allan, Op. cit, Introduction, see Yaudheya Coins, p. CLIII. Ep. Ind, VIII, pp. 44-47; vide also J. F. Fleet, CII., iii, pp. 8, 14.
27. J. Allan, Op. cit, Introduction, p. CIII; see plate. XXIII. 13 and 16; For a detailed study of Kuninda coins, see also pp. 159-168 and 288.
28. D. C. Sircar, Studies in Indian coines, (Motilal Banarsidass) Delhi, 1968, p. 213.
29. J. Allan, Op. cit, Introduction, p. CL. and p. CII; vide also D.C. Sircar, Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilization, Calcutta, 1965, No. 67, p. 175.
30. D. C. Sircar, ibid, Book III, No. 2, pp. 268-269.
31. Markandeya Purana, canto 55, 48-52; Brihatsamhita XIV. 28; Matsya Purana, Ch. 114, verses 20-21 and 55-56 and chapters 116; 117 and 121.
32. Brahmanda Purána has a chapter called "Kulanta Pitha Mahatmya"; see also H. N. Sastri, ASR, Annual Report, 1907-08, Calcutta, 1911, pp. 260 and 264.
33. Brihatsamhita, Ch. XIV. 29-30; vide also Visakhadatta, Mudrarakshasa, 1.20, 5.11.
34. L. P. Pandey, "Gupta Vansa Mein Kachgupta ka Sthana", Nagari Pracharini Patrika, Varanasi, 1978. (Samvat 2034, Anka 3-4).
35. J. Allan, Op. cit, Vol. II, see Kacha coins.
36. K. D. Vajpai, JNSI, Vol. XXIII; pp. 340 ff.
37. Kavya Mimansa of Rajasekhara, quoted by U. N. Rai, Gupta Samrat Aur Unaka Kala, Allahabad, 1971, p. 149; vide also A. S. Altekar, JBORS, Vol. 14. pp. 228-53 and Vol. 15, pp. 135-141.
38. Shringar Prakash, quoted by U. N. Rai, Ibid., pp. 149-178.
39. A. S. Altekar, Op. cit, p. 228-53.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

40. D.R. Bhandarkar, Malaviya Commemoration Volume, pp. 19-96.
41. Devichandraguptam, as quoted by Bhoja in hisShringar Prakash; vide also V. V. Mirashi, Ind. Ant, Vol. 62 (1933) pp. 201 ff.; also Dasharatha Sharma, Rajasthan Through the Ages, Bikaner, 1966, pp. 182-183; also Rangaswamy Sarasvate, Ind. Ant. 1923, p. 183. K. P. Jaysawal places the place of the war in a village, named Alivala in Jalandhara Doab, see U. N. Rai, Op. cit, p. 165.
42. Relevant verses are quoted by V. V. Mirashi, Ind. Ant. vol. 62, 1933, pp. 201 ff.
43. Annual Progress Report, Punjab and the United Provinces, 1904-05 (No. 66) p. 14; vide also H. N. Sastri, ASR, Annual Report, 1907-08, Calcutta, 1911, p. 265.
44. J. Allan, Op. cit, Vol. II, see coins of Kumaragupta.
45. D. C. Sircar, Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilization. Calcutta, 1965, Book III, No. 28, Bhitari Stone Pillar Inscription of Skandagupta, pp. 321-23.
46. Ibid, No. 25, Junagarh Rock Inscription of Skandagupta, pp. 307-315.
47. Ibid,, No. 57. pp. 424-425.
48. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of the Punjab Hill States, vol. I; Lahore, 1933; pp. 77 and ff.
49. R. T. II. 435-36.
50. Somuel Beal, Op. cit, pp. 210-211.
51. J. F. Fleet. CII, Vol III, pp. 286-291.
52. H. Goetz. Early Wooden Temples of Chamba, p. 10; vide also R. S. Tripathi, JBORS. vol. XVIII, pp. 296 ff, see also R. S. Tripathi, History of Kannauj, Delhi. p. 136.
53. Ibid., see also Banabhatta, Kadambari, Bombay 1896, p. 204.
54. Samuel Beal, Op cit, pp. 209-218.
55. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Op. cit, pp. 77 ff.; see also R. S. Tripathi, History of Kannanj, Delhi, p. 136.
56. H. Goetz, OP. cit, p. 10; vide also R. S. Tripathi JBORS, vol. XVIII, p. 296 ff.
57. H. Goetz, Op. cit, p. 34; vide also J. Hutchinson and J. Ph. uogel, Op. cit, p. 50; vide also The Struggle for Empire, Bombay 1966.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

58. H. Goetz, Op. cit, p. 11. Goetz believes that Yashovarma, the king of Kannauj conquered upto Ravi. Gaudavaho, written by Vakpatiraj, his court poet, informs that when Yashovarma advanced in the north from Kurukshetra his valour became irresistable. The region was "fragrant with the gumexuding from the fissures of Devadarus and was cooled with the odour of new liquor, scented with spices" (Gaudavaho, verses 511-512).

The Nalanda Inscription, ascribed to Yashovarma, informs that he had appointed Tikina as the lord of the north-western border (Udichipati). see Ep. Ind., Vol. XX, p. 45, verse-3. Vide also, Classical Age, Bomay, 1962, pp. 128-131.

59. J. Histchinson and J. Ph. Vogel, Op. cit, pp. 77 ff.
60. R. S. Tripathi, Op. cit, p. 217; vile also R. C. Majumdar, I. H. Q. Vol. Ix (March) 1933. pp. 11-17 for an account of the Kingdom of Kira.
61. Ep. Ind. Vol. XYIII, see Gwalior Inscription of Mihirabhoja.
62. A. S. Altekar, Rastrakutas and Their Times, Poona, 1967, pp. 48-90.
63. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Op cit, pp. 110-12.
64. Ep. Ind. Vol. I, pp. 186-188.
65. R. T., (Steins Trans) Vol. I, Book V. Verse 151. p. 206.
66. V. V. Mirashi. Ind. Ant. Vol. 62; 1933, pp. 201 ff; vide also Dasharatha Sharma; Op. cit; pp. 182-183. Laksomi Karna, a Kalchuri king had also qonquered Kangra, Ep. Ind. Vol. 18, p. 17; Yashovarma; a Chandela ruler had invaded the kingdom of the Khasas.
67. H. Goetz, Op. cit, p. 24. Vide also, Visuddhanand Pathak, Uttar Bharat ka Rajanitika Itihasa, Lucknow, 1973, p. 390.
68. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Op. cit, p. 114. It has quoted Tarikh-I-Yaminil, Elliots and Dowsons, Vol. II, pp. 34-35.
69. H. Goetz, Op. cit, p. 34; vide also J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Ibid. Vol. I Ch. VII; pp. 268 ff.
70. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Ibid; Vol. I. Ch. VII; pp. 268 ff.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

71. Ibid; Ch. IV, pp. 99-114.
See also "History of Nurpur State". JPHS. Vol. V1, No. 2, 1917, pp. 101-143; vide also H. N. Sastri, "The Guleria chiefs of Kangra' 'JPHS. Vol. No. 2, (1914); pp. 138 151.
72. J. Hutchinon and J. Ph. Vogel, Op. cit ;See ch. on Kullu; Vide also. G. C. I. Havell, "Some Notes on Ancient Kulu politics" JPHS.; Vol VI (No. 2). 1917, pp.69-81; vide also A. F. P. Harcourt; The Himalayan Districts of Kuloo: Lahaul and Spiti; (reprint) Delhi; 1972.
73. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Ibid, pp. 340-369; vide also "History of Mandi State" JPHS., Vol. VII (No. 1), 1918, pp. 1-29.
Vide also Prof. Man Mohan M. A.; The History of the Mandi State, Lahore 1930.
74. Himachal Pradesh Dtstrict Gazetteers: Sirmaur, (ed) by T. S. Negi), 1969.
75. For fuller discussion see K. P. Nautiyal, The Archaeology of Kumeon, Varanasi, 1969.
76. For fuller information see Rahul Sankrityayan, (1) Kinner Desha (2) Himalaya Parichaya, Allahabad, 1953,
.........(3) Tibbet Mein Buddha Dharma, Allahabad 1948.
See for the history of Mandi, J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, "History of Mandi State", JPHS. Vol VII, (No.1), 1918, pp. 1-29; for a brief account of Lahaul and spiti vide also J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Op. cit, pp. 474-488,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

CHAPTER IV—V

1. Samuel Beal, Travels of Hiuen Tsiang, Vol. II, Sushilagupta India Ltd., Calcutta, 1958, pp. 207-218.
2. D. C. Ahir, Buddhism in the Punjab, Haryana and Himachal Pradesh, Mahabodhi Society of India, New Delhi, 1971; Imperial Gazetteer of India, Provincial Series, Punjab, 1908, pp. 384 and 391.
3. Alexander Cunningham, Ladakh, Physical Statistical and Historical, with notices of the surrounding countries, New Delhi, (report), 1970.
4. Samuel Beal, Travels of Hiuen Tsiang, Vol. II, Calcutta, 1953, pp. 210-211.
5. Ibid, pp. 110-218.
   Eleventh Rock Edict : Kalsi Version. D. C. Sircar, Select Inseription Bearing on Indian History and Civilization, Calcutta, 1965, pp. 31-32.
6. Samuel Beal, Ibid, pp. 209-210.
7. Ibid, pp. 210-211.
8. Ibid, pp. 207-208.
9. H. C. Raychaudhary, Political History of Ancient India (6th Ed.) Calcutta, 1953, pp. 388-89.
   Vide also R. C. Majumdar (ed), The Age of Imperial Unity Bombay, 1968, pp.360-471.
10. J. Allan, Catalogue of Coins of Ancient India in the British Museum London, 1967.
11. Ibid, Introduction, pp. LXXIII and LXXXIV-V, LXXXVII.
12. Ibid, Introduction, pp. CI-CII and CIII.
13. N. K. Sastri, A Comprehensive History of India, the Mauryas and Satavahanas, Orient Longmans, Bombay, 1957, pp-169-175. See also pp. 364-378,
    A. K. Narain, The Indo-Greek, Oxford, 1957, pp. 169-175, 74-100.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

14. Ibid, pp. 236-240 ; vide also pp. 364-377, Baldeva Kumar, The Early Kushanas, New Delhi, 1973.
15. N. K. Sastri, op. cit, pp. 372-378.
Baldeva Kumar, ibid,.
Vide also Bhaskar Chattopadhyay, The Age of the Kushanas, A Numismatic Study, Calcutta, 1967, pp. 182-184.
16. Ep. Ind. Vol. III, p. 116 ; Imperial Gazetteers of India, Provincial series, Punjab, Vol. I (1908), p. 391.
17. G. C. M. Birdwood, Industrial Arts of India, pp. 154-135.
18. R. C. Majumdar and A. S. Altekar, Gupta Vakataka Age, Delhi, 1967,
R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar, History and Culture of the Indian people, Vol. III, The Classical Age, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1970. pp. 96-120.
19. Krishna Deva, Temples of Northern India, National Book Trust, New Delhi, 1969 ; J. Ph. Vogel. Catalogue of the Bhurisingh Museum at Chamba, (Chamba, State, Punjab), Calcutta, 1909.
20. J. F. Fleel, CII. Vol. III (2nd print) No. 80, Plate XLIV ; See also Journal of Royal Asiatic Society of Bengal, Proceedings, Vol. XLVII, pp. 212 ff.
21. Ep. Ind. Vol. I, pp. 97-119; Journal of Royal Asiatic Society 1903, p. 16.
J. Ph. Vogel, 'Hill Temples of .he Western Himalayas', Journal of Indian Art and Letters, Calcutta 1946.
Imp. Gazetteer of India, Provincial Series, Punjab, Vol. I, (1908), p. 383.
22. W. G. N. Van Der Sleen, Four Months Camping in the Himalayas, (trans. by M. W. Heper, London, 1929) p. 44.
23. Herman Goetz, op. it, 1955, E. J. Brill, Leiden; Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 62-79, ASI, Annual Report, 1902-03, p. 239 ff.
24. Samuel Beal, op. cit., Vol. II, pp. 209-210.
25. N. K. Sastri, Comprehensive History of India, the Mauryas and the Satvahahas, Vol. II, Orient Longmans, Bombay, p. 239.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

26. Sanchi Pillar Inscription, D. C. Sircar, Select Inscriptions Bearing on Indian History and civilization, Vol. I, Calcutta, 1965, p. 71,
27. D. Devahuti, Harsha. A Political Study, Oxford, 1970.
28. Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab, Vol. I, (1908) p. 384, Arch. Survey Report, Vol. V. p. 177.
29. Samuel Beal, Travels of Hiuen Tsiang, Vol. II. pp. 207-210.
30. Ibid, pp. 210-211.
31. A. F. P. Harcourt, The Himalayan Districts of Koloo, Lahaul and Spiti, (Reprint) Delhi, 1972, pp. 61-62.
32. Samuel Beal, op. cit, pp. 211-218; R. S. Tripathi, History of Kannauj; pp. 115-116.
33. R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar, op. cit., Vol. III, pp. 34-39.
34. A Cunningham, Laddakh, New Delhi, 1970, Fahein noticed Buddhism in flourishing condition ln Laddakh. Ashoka's missionaries went to the Laddakh for the propagation of Buddhism.

    Vide also A. H. Franche, Antiquities of Indian Tibet. Vol. II, (reprint) New Delhi, 1972. This volume deals with some chronicles of Laddakh and Minor chronicles and has their texts and translation with notes and maps, ed. by F. W. Thomas, It deals mainly with medieval period of history.
35. Himachal Prdesh District Gazetteer, Chamba, 1963 pp. 63-64.
36. Romila Thapar, Asoka and the Decline of the Mauryas, Penquin, pp. 231-32.
37. R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar. The History and Culture of the Indian People, Vol. IV. The Struggle for Empire, Bombay, 1966, pp. 435-66.

    Sudhakar Chattopadhyay, Evolution of Hindu Sects, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1970, pp. 22-23.
38. Sarala Khosla, A History of Buddhism in Kashmir, Sagar Publications, New Delhi, 1972, vide also, R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar, The History and Culture of the Indian People, Vol. V. The Struggle for Empire, Bombay, 1966, p. 419-420.
39. R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar, Ibid, pp. 435-466.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

40. Ibid, pp. 5-22.
41. Ibid pp. 424-427,
P. V. Bapat (ed) 2500 years of Buddhism, Publication Division, Govt of India, New Delhi, 1971, pp. 312-.332.
42. A Cunningham, Laddakh, New Delhi (reprint) 1970.
43. for fuller studies see Sarala Khosla, History of Buddhism in Kashmir, Sagar Publication, New Delhi 1972.
44. Charles Eliot, Hinduism and Budduisms. A Historical Sketch, Vol. III, London, 1962, pp. 348,-358 for the spread of Buddhism in other parts of Asia, See this volume, pp. 3-408 vide also D. I. Lauf, Tibetan Sacred Art, London, 1976, pp. 17-41.
P. V, Bapat (ed) 2500 years of Buddhism, Govt. of India, New Delhi, 1971, pp. 65-73.
45. G. Tucci, Tibet : Land of Snow, Oxford and Ibh. Publishing Co. New Delhi, 1967. Ch. III, pp. 64-97.
46. D. Snellgrove and High Richards on, A Cultural History of Tibet, London, 1968, pp. 129-131. Please read Ch. IV' 'Foudation of Monastic Life", pp. 111-143.
47. J. Ph. Vogel, "Inscribed Brass Statuelte from Fatehpur, (Kangra)" Arch. Survey of India, Annual Report, 1904-05, pp 107-09.
48. Ep. Indica, Vol. VIII, p. 116 : for Pathyar, Ep. Indica, Vol. III, p. 116 : Imp. Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab, Vol. 1, (1908) p. 391.
49. Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab, Vol. I. 1908, p. 389 ; vide also AASR. Vol. V, p. 177.
50. B. C. Sanyal, "Journey to Ki and Tabo monasteries, Spiti Valley", Roop Lekha, Vol. XXXVIII, No. 1-2, pp. 144-152.
51. G. Tucci, Tibet : Land of Snow, Oxford and Ibh. Publishing Co., New Delhi, 1967, Ch. III, pp. 64-97 :
D. I. Lauf, Tibetan Sacred Art, London, 1976, pp. 17-41.
D. Snellgrove and High Richardson, A Cultural History of Tibet, London, 1968, Chapters II-IV, pp. 66-143.
52. Nihar Ranjan Ray, Mauryan Sunga Art; Zimmar, Symbolism of Indian Art; V. S Agrawala, Indian Art; A. K. Coomarswamy, History of Indonesian Art.
53. Percy Brown, Indian Architecture, Vol. I.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

R. C. Majumdar (ed), The Age of Imperial Unity, Bombay. 1968, pp. 487-516,

54. Punjab District Gazetteer, Kangra, 1504, p. 258.

55. J. Ph. Vogel, "Inscribed Brass Statuettee from Fatehpur (Kangra(" Archaeological Survey Report, 1904-05, pp. 108-109. One image of Vajra Varahi has been discovered at Masrur, ASR, Annual Report, Vol. XVI, p. 46.

56. Archaeological Survey of India, Annual Report, Vol. VII, 1907-08; Calcutta, p. 262, vide also J. Ph. Vogel, JASB, LXX, part I, p. 1.

57. A. H. Franke, Antiquities of Indian Tibet, Part I, Calcutta, 1914 ; vide also Part II, 1926.
Rahul Sankrityayan, Kinnar Desha, Kitab Mahal, Allahabad, 1956, 1 pp 145-166.
— — — — —. Himalaya Parichaya, Garhwala, Allahabad, 1953, pp. 278-79.

58. Cazetteer of India, Himachal Pradesh, Kinnaur, 1971, Ed. by MD Mamgain.
Imperial Gazetteer of India, Provincial Series, Punjab, Vol. I (1908) p. 384.
Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of The Punjab Hill States, Vol. I,:Lahore, 1933, pp. 474-482.

59. Himachal Pradesh District Gazetteer, Chamba, 1963, pp. 63-64.

60. B. H. Lee Shuttleworth, Lha-Lun, Temple, Spyti, Memoris of the Archaeological Survey of India No. 39, (1929). It has a preface written by A. H. Francke.
Harcourt, Kuloo, Lahaul and Spiti, pp. 65-66 and aiso p. 101; vide also Imperial Gazetteer of India, Provincial series, Vol. I, Punjab, 1908, pp. 374-378; B. C. Sanyal "Spiti Valley," Rooplekha, Vol. XXXVIII, No, 1-2, ppl 144-152.

61. B. C. Sanyal, Ibid.

62. D. Snellgrove and High Richardson, A Cultural History of Tibet, London, 1968, Ch. 4, pp. 111-143, Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of the Punjab Hill States, Lahore, 1933, pp. 474-488. A. F. P. Harcourt, op. cit.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

63. Rigveda (ed) Trans. in English by H. H. Wilson, Banglore, (2nd Ed.) 1946.
Charles Eliot, Hinduism and Buddhism, Vol. I, London, 1962, pp. 5-105.

64. Fleet, CII, Vol. III, (2nd print) No. 80.
"Nirmanda Copper Plate Inscription of the Mahasamanta Samudrasena" plate XLIV, p. 286.

65. A. B. Keith, Religion and Philosophy of the Veda and the Upanisadas (2 vols) HOS 1925.

66. J. Allan, op. cit. Introduction and plates.

67. N. Machnical, Indian Theism, Oxford, 1915,
R. C. Zaehner, Hinduism, Oxford University Press, 1966, pp. 125-46, R. G. Bhandarkar, Vaisnavism Saivism and Minor Religious Systems, Varanasi, (reprint) 1965, pp. 2-33.

68. D. C. Sircar, Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilization, Vol. I, Calcutta, 1965, "Besnagar Garuda Pillar Inscription of the time of Bhagabhatra, Regnal year 14", pp. 88 89.

69. J. Allan, op. cit., Introduction, pp. LXXXIII-LXXXVII, D. C. Sircar, Studies in Indian Coins, Motilal Banarasidass, Delhi, 1968, p. 212.

70. J. Allan, ibid.

71. J. Marshall, Mohenjadaro and Indus Civilization, London, 1931.
M. Wheeler, The Indus Civilization, London, 1953; Sudhakar Chattopadhyaya, Evolution of Hindu Sects, New Delhi, 1970, pp. 97-105.

72. Sudhakar Chattopadhyay, Ibid, p. 100
vide also, J. N. Bannerjee, "The Phallic Emblem in Early Medieval India," JISOA, III.

73. R. G. Bhandarkar Vaisnavism, Saivism and other Minor Religious Systems, Varanasi (reprint) 1965, pp. 121-124, R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar (ed) The Age of Imperial Unity, Bombay, 1968, pp. 453-461.
Sudhakar Chattopadhyaya, ibid, pp. 112-149.

74. R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar (ed) The Age of Imperial Unity, Bombay, 1968, pp. 431-470.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Sudhakar Chattopadhyay, ibid, pp. 106 ff.

75. J. Allan, op. cit. J. N. Bannerjea, Development of Hindu Iconography, Calcutta, 1956, pp. 112. ff, Introduction, pp. CI-CIII.
D. C. Sircar, Studies in Indian Coins, Motilal Banarasidass, Delhi, 1968, pp. 213,
Sudhakar Chattopadhyay, ibid, pp.101-102.

76. J. Allan, Ibid, pp. CL-CLIII.

77. R. C. Majumdar and A. D. Pushalkar, The History and Culture of the Indian People, Vol. II, The Age of Imperial Unity, Bombay, 1968, pp. 167-68.

78. R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar, Ibid, pp. 165-68.

79. ibid, p. 167.

80. Ep. Ind. Vol. I (1892) pp. 97-118.
Krishna Deva, Temples of North India, National Book Trust, New Delhi, 1969, (it mentions a tiny shrine of Shiva at Jagat-sukha, near Manali in Kulu District p. 26).

81. J. Burgess, Ep. Ind. Vol. I, (1892), pp. 97-98.
G, Buhler, "Two Prasastis From Kangra", Ep. Ind., Vol. I, 1892, No. XVI, pp. 97-118.
Shiva Purana, cited in ASIR, Vol. V, pp. 178-80.
Vide also ASI Annual Report, 1929-30, pp. 15-16.
Vide also J. Ph. Vogel, "Ancient Monuments of Kangra ruined in the Earthquake", ASR Annual Report, 1905-06.

82. J. F. Fleet, CII, Vol. III, No, 80, p. 286.
Vide also Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 63-64.

83. L. P. Pandey, Sun-Worship in Ancient India, Delhi, 1971.

84. J. Ph. Vogel, "The Temple af Mahadeo at Bajaura, Kulu" Archaeological Survey of India, Annual Report, 1909-10, Calcutta, 1914, pp. 18-21.

85. Samuel Beal, Travels of Hiuen Tsiang, Vol. II, Calcutta 1958, pp.

86. Krishna Deva, Temple of N. India National Book Trust,, New Delhi, 1969, pp. 26-27.

87. Ep. Ind. Vol. I, pp. 97-118. vide also JHAS, 1903, p. 16,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Imperial Gazetteer of India, Provincial Series Punjab, Vol. I, year 1908, p. 383.

88. ASR. Annual Report, Vol. V, Part I, pp. 16 ff. plates 5, 6,

89. Ibid pp, 24-25, pl. 7.

90. Himachal Pradesh State Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 63-64. Hutchinson and Vogel, op. cit. II, p. 475 ; H. Goetz, op. cit, O. 66,

91. Ibid. pp. 63-64.

92. M. M. Singh. The History of the Mandi State, Lahore, 1930.

93. History of the Punjab Hill States, Lahore, 1933, pp. 102, 108-10, 369, passim.
ASR, Vol. V, p. 15, pl. 3.
Curesvar Mahadeva Temple is mentioned on p. 5 of the Himachal Pradesh District Gazetteers, Sirmur, 1969. H. Goetz, op. cit. p 64.
See temples of Brahmaur, ASR, Annual Report 1902-03, O. 239 ff.
J. Ph. Vogel, "Ancient Monuments of Kangra Ruined in the Earthquake," ASR 1905-06, pp. 11-27.
————————, "Hill Temples of the western Himalayas"
————————, Catalogue of the Bhuri Singh Museum at Chamba, (Chamba State Punjab), Calcutta, 1909.
N. R. Ray, "Sculpture from Punjab, Hill States'. Struggle for Empire, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, pp-663-65.

94. Charles Eliot, Hinduism and Buddhism, A Historical Sketch, Vol. I, London, 1962, pp. 274-290. Sudhakar Chattopadhyaya, op. cit, pp. 150-170,
R. G. Bhandarkar, Vaisnavism Saivism and Minor Religious Systems, Indological Book House, Varanasi, (reprint) 1965, pp. 142-147.

95. E. Mackey, Early Indus Civilization, (Ind. Ed.) London, 1948 Ch. III.

96. R. G. Bhandarkar, Vaisnavism, Saivism and Minor Religious Systems, Varanasi, 1965, 142-147.

97. Herman Goetz, The Early Wooden Temples of Chamba,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

London, 1955, pp.90-91, 98-100, vide also Himprastha, Dec. 1972. Himachal Pradesh District Gazetteers Chamba, 1963, pp. 71-79.

98. Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963. pp. 64-79 ASR. Vol. II. p. 940, p. 34.

99. Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 68-71.

100. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Op. cit, pp. 108-110, Aini Akbari, Gladwines translation, Vol. II, p. 109 (quoted by Hutchchison, op. cit, pp. 110.

101. ASR. Vol. XV, p. 46, pp. 33a (This is an image of Durga from Masrur) ; See also the image of Ambikadevi from Kangra, ASR. Annual Report, 1930-34, Part I, p. 15. for the temple of Brajeshwari Devi, See Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab, Vol. I, 1908, p. 359.

102. G. Buhler, "The Kangra Jwalamukhi Prasasti', Ep. Ind.Vol. I, 1892, pp. 190-195, vide also ASR, Vol. V, p. 25; Hutchinson and J. Ph. Vogel, op cit, pp. 108.110.

103. For the temples of Suket, See History of the Punjab Hill States, pp. 369, 350 (for Pangna Devi Temple built by Madansen).

104. R. G. Bhandarkar, Vaisnavism, Saivism and Other Minor Religious Systems.

105. John Woodroff, Shakti and Shakta (3rd ed) Madras and London, 1929,
P. C. Bagchi, Studies in the Tantras, Calcutta, 1939.

106. AFP Harcount, The Himalayan District of Koloo, Lahaul and Spiti (Reprint) Delhi, 1972, p. 62,
H. Goetz, Early Wooden Temples of Chamba, Leiden, 195,5 p. 11, vide also ASR, Northern Circle, 1901-02, 1909-1,0 1920-21, Hutchinson and Vogel, op. cit. II, p. 421.

107. H. Goetz, op. cit, p. 64.

108. Herman Goetz, Ibid ASR, Vol. III, pp. 264-65.

109. ASR, Vol. III, pp. 264-265, see also Vol, V, p. 26.

110, Himachal Pradesh District Gazetteers, Sirmur. 1969, p. 51.

111. For other temples, dedicated to Goddess Durga, see J. Ph. Vogel "Ancient Monuments of Kangra, Ruined.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

in the Earthquake", ASI Annual Report, 1905-06, pp. 11-27.
— — — — — "Hill Temples of Western Himaliyas"
— — — — — —Catalague of the Bhuri Singh Museun Chamba (Chamba State Punjab) Calcutta, 1909.

112. Sudhakar Chattopadhaya, Evolution of Hindu Sects, New-Delhi, 1970, Chapter I-V, pp. 24-89.
J. Gonda, Aspects of Early Vaisnavism, 1954; Suvira Jaiswal Origin and Development of Vaisnavism, New Delhi.
Charles Eliot, Hinduism and Buddhism, A Historical Sketch, Vol. II, London, 1962, Book V, pp. 136-290

113. K. M. Sen, Hinduism, Penguin, 1961, pp. 5557.
R. G. Bhandarkar, op. cit, pp. 14-30.

114. R. C. Majumdar, Ancient Indian Colonies in the Far East, Vol. I, Champa, vide also
Hindu Colonies in the Far East, Calcutta, 963, pp. 96-100, 165-170.

115. M. Macnceal, Indian Theism, Oxford, 1915,
R. G. Zachner, Hinduism, Oxford University Press, 1964, pp. 125-46.

116. Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of the Punjab Hill States, Vol. I, Lahore, 1933,
J. N. Bannerjee, "Pauranic aud Tantric Religion, Calcutta, 1966, pp. 18-21.

117. J, Ph."Vogel," Inscribed Brass Statuette from Fatehpur, (Kangra)," ASI, 1904-05, pp. 107-109.

118. ASR, Annual Report, Vol. II, p. 240.
H. Goetz, op. cit. pp, 66-67, see also p. 24.

119. ASR Annual Report, Vol. XV, p. 46, plates 33 and 34c,
Vide also pp. 39-48 for the description of Masrur temple :
H. Goetz, opp. cit, p. 65.

120. V. C. Ohri, (ed), Arts of Himachal, State Museum, Simla, 1975.

121. J. Ph, Vogel, "The Temple of Mahadeo at Bajaura, Kulu" ASR, Annual Report, 1909-10, Calcutta, 1914, pp. 18-21, pl. 7b.

122. H. Goetz, op. cit, p. 64, (Mentions one Visnu from Sultanpur).

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

123. H. Goektz, The Early Wooden Temples of Chamba, Leiden, 1955, p. 25.
Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 62-63.
124. H. Goetz, op. cit. p. 33.
125. H. Goetz, op. cit, p. 33 and p. 66.
ASR, Annual Report, 1902-03, pp 230-271.
One image of Narasimha is found at Masrur (Kangra)
ASR. Annual Report, vol. xv, p. 46.
126. Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963, p. 63.
127. Hermann Goetz, op. cit, p, 68.
128. L. P. Pandey, Sun-Worship in Ancient India, Motilal Banarasidass, Delhi, 1971.
Sudhakar Chhattopadhyaya, op. cit, O : 171-191.
129, Herman Goetz, op. cit.
130. L. P. Pandey, op. cit. p. 138.
131. L. P. Pandey, "Himalay Mein Surya Puja",
Somasi, Simla. 1977 ;
H. Goetz, op. cit, p. 60, fig. 3, has the Pine drawing of the god ; B. Bhattacharya, Indian Images, Vol. I, Calcutta, 1921, pl. XVIII.
132. G. Buhler, Ep. Indica, Vol. I (1892), pp. 97-118.
ASR. Annual Report., Vol. V, p. 21, Another image of Surya has been found at Masrur, ASR. Annual Report, Vol. XV, p. 46. There was a small sun temple at Jagat Sukha, V. C. Ohri (ed) Arts of Himachal, State Museum, Simla.
133. W. G. N. Van Der Sleen : Four Month's Camping in the Himalayas, (trans by M. N. Hoper London, 1929) p. 44.
134. L. P. Pandey. Sun Worship in Ancient India, Delhi, 1971, p. 170, see also pp. 201-203, H. Goets, op. cit, p. 11.
135. Ibbetson and B. Maclagan, op. cit. vol. I, p. 403.
"In Suket the temple of Sun, known as the Surya Kund was built by the Raja Garur Chand (or Sain) and his consort. In the front of it is a tank or kund. The idol of brass is flanked by the horses, a balisht in height, thus giving it the appearance of a chariot", p. 403.
136, R. G. Bhandarkar, op. cit, pp. 147-150.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

137. J. Ph. Vogel, "The Temple of Mahadeo at Bajaura, Kulu' ASI, 1909-10, Calcutta, 1914, pp. 18-21. see pl. 7.
138. J. Ph. Vogel, ASI, Annual Report, 1902-03, pp. 230-271.
139. Another image of Ganesha is found at Masrur, see ASR, Vol. XV, p. 46, pl. 33a.
140. V. C. Ohri (ed) Arts of Himachal, State Musuem, Simla : 1975 : vide also J. Ph. Vogel, Catalague of the Bhuri Singh Musuem at Chamba (Chamba State) Punjab, Calcutta, 1909.
141. R. G. Bhandarkar, op. cit, pp. 150-151.
H. Goetz mentions a temple dedicated to Khanmukheshvar (Kartikeya) at Bilaspur which had been built by a king of Satadva in the post Gupta period.
142. G. Buhler, Ep. Ind, Vol. I, (1892), pp. 97-118.
143. ASR, 1905-06, p. 14, H. Goetz, op. cit. p. 61.
J. Ph. Vogel, ASI Annual Report 1909-10, Calcutta 1914, pp. 13-21 ; vide also ASR Vol. V, p. 22, Vol. VII, p. 267, fig. 2, image of Ganga at Nurpur, ASR vol. IV, p. 22.
See figures of Yamuna found at Baijnath, ASR Annual Report, vol. V, p, 22.
144. V. S. Agrawala, Lokamaha, Varanasi,
A. K. Coomaraswamy, Yakshas, Munshiram Manohar Lal, Delhi.
D. Ibbetson and Maclagan, op. cit. Vol. I, Lahore, 1919, 137-176.
145. R. C. Majumdar (ed) The Age of Imperial Unity, Bombay, 1968, pp. 471-472.
146. Ibbetson and E. Maclagan, vol. I, pp. 147-171.
147. Ibid, pp. 171-176.
148. A. K. Coomarswamy, Yakshas, Munshiram Manohar Lal, New Delhi, (newprint).
149. V. C. Ohri (ed) Arts of Himachal, State Musuem, Simla, 1975.
H. Goetz, p. 61, (Hariti is mentioned here).
150. Charles Eliot, Hinduism and Buddhism, vol. I, London, 1962, Ch. VII, pp. 105-123.
D, Ibbetson and Maclagan, vol. I, Lahore, 1919, Part IV Section 3, pp. 99 ff.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

151. ASR. Part I, 1930-34, p. 165.
152. G. Buhler, "The Jain Inscription in the Temple of Baijnath at Kiragrama", Ep. Ind. vol. I, No. XVII, pp. 118-119.
153. G. Buhler, "Inscription On Pedestal of an image of Parsvanatha in the Kangra Bazar", Ep. Ind. vol. I, No. XVIII : Calcutta, 1892, (reprint 1971) p. 120.

CHAPTERS—VI– VII

1. A. S. Altekar, Education in Ancient India, Varanasi, 1965; Radha Kumud Mookerji, Ancient Indian Education (Brahmanical and Buddhist), Delhi, 1974, passim.
2. A. S. Altekari, ibid; for fuller discussion see R. K. Mookerji, Ibid, pp. 17-111 and 246-248.
3. Samuel Beal. Travels of Hiuen Tsiang, Vol. II. Calcutta, 1958, pp. 207-218.
   J. Ph. Vogel, "Inscribed Brass Statuette from Fatehpur (Kangra)", ASR, Annual Report, 1904-05, pp. 107-109; R. K. Mookerji, Ibid, pp. 374-445.
4. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, History of the Punjab Hill States, Lahore, 1933, Vol. I, passim; vide also R. K. Mookerji, Ibid, pp. 468-472.
5. R. K. Mookerji, Ibid, pp. 345-365; For example, Workman Gugga is mentioned on the pedestal of image of goddess Lakhna D vi. He is also mentioned on the pedestal of the image of Sakti Devi of Chatrahri and also on the image of Ganesha and the Nandi Bull found from Chamba. See J. Ph. Vogel, ASR., Annual Report, 1902-03, "Inscriptions of Chamba State," pp. 239-272.
6. A. S. Altekar, Education in Ancient India, Varanasi 1965; vide also R. K. Mookerji, Op. cit, p. 133, 242-44.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

7. A. S. Altekar; Ibid, pp. 104-144; vide also Samuel Beal, op. cit, Vol. II, pp. 207-218.

8. R. S. Sharma, Indian Feudalism: c. 300-1200, calcutta, 1965, passim; vide also R. C. Majumdar and A. S. Altekar, Gupta Vakataka age (circa 200-550 A. D.), Delhi, 1960, pp. 397-399.

9. J. F. Fleet, CII, Vol. III, No. 80, "Nirmanda Copper plate Inscription of Mahasamanta Samudrasena,"; vide also. J. Ph. Vogel, "A Copper Plate Grant of Bahadur Singh in Kullu": ASR, Annual Report, 1903-04, pp. 261-269.

10. J. Allan, Op. cit, Introduction.

11. Ep. Ind., Vol. III, p. 116; vide also Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab, Vol. I, 1908, p. 391.

12. Ep. Ind.Vol. VII, p. 116; vide also Imperial Gazetteers of India, Provincial series, Punjab, Vol. I, 1908, p. 389; see also ASR, Annual Report, Vol. V, p. 177.

13. J. Allan, Op. cit, Introduction, pp. CL-CLIII.

14. Ibid, see Kulut Coins.

15. Ibid, pp. CI-CIII.

16. D. C. Sircar, Select Inscriptions. Bearing on Indian History and Civilization. Calcutta, 1965, No. 16, pp. 31-32; vide also Romila Thapar, Asok and the Decline of the Mauryas, Delhi, 1973, pp. 231-232.

17. J. Allan, Op. cit, Introdocution, pp. CL-CLIII.

18. Hiranand Sastri, "Historical Documents of Kulu," ASR, Annual Report, Calcutta, 1911, pp. 260-272.

19. J. F. Fleet, CII, Vol. III, (2nd Print) No. 80, Plate XLIV, "Nirmanda Copper Plate Inscription of Mahasmanta Samudrasena."

20. G. Buhler, Indian Palaeography, Calcutta, 1962, pp. 80-90; vide also L. P. Pandey, "The Problem of Naming the Script of Northern India, (700 century AD to 1300 century AD), VVRI Hoshiarpur, Vol. X (pt I-II), 1972, pp. 118-119; See also E. Sachau, Al Baruni's India (English Trans.) London, 1910, p. 173; see also A. H. Dani, Indian Palaeography, London, 1963, p. 112.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

21. L. P. Pandey, Ibid, pp. 115-120.
22. G. Buhler, Ep. Ind., Vol. I, (1892), p. 97-118;
——— Op. cit, pp. 91-92;
Vide also ASR, Annual Report, Vol XI, p. 21; also Vol. VIII, pp. 61-62.
23. G. Buhler, Op. cit, p. 91 ff.
24. J. F. Fleet, CII, Vol. III. No. 80; J. Ph. Vogel, Antiquities of Chamba State, Part I, Calcutta, 1911.
25. V. S. Agrawala, India:As Known to Panini, 1953; Panini, Astadhyay, V 3. 116.
26. J. Allan, Op. cit. Indtroduction, pp. CXXIX, LXXXIV-LXXXVII: J. Ph.Vogel, Ep. Ind; Vol, VII, pp. 116 ff.
27. D. C. Sircar, Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilization, Calcutta, 1965, pp. 31-32.
28. J. Allan, Op. cit, Introduction passim.
29. Ibid., pp. CL-CLIII.
30 N. K. Sastri (ed) Comprehensive History of India, Vol. II. The Mauryas and the Satavahanas, Bombay, 1957, pp. 696 ff.
31. K. M. Munshi, History and Culture of Indian People, Vol. III, Classical Age, Bombay, 1962, See foreword, p. XX.
32. Hiranand Sastri, "Historical Documents of Kulu", ASR, Annual Report, 1907-08. Calcutta, 1911, pp. 260-272., vide also J. F. Fleet, CII, Vol. III, No. 80.
33. G. Buhler, "Two Prasastis from Kangra" Ep. Ind., Vol. I, (1892) No. XVI, pp. 97-118.
34. Ibid.
35. A F. P. Harcount, The Himalayan Districts of Kuloo, Lahaul and Spiti, (Repritn), 1972, p. 62.; vide also ASR, Annual Report, Vol. III, p. 264-65.
36. Samuel Beal, Op. cit, vol. II, pp. 207-18.
37. J. Ph. Vogel."Inscribed Brass Statuette from Fatehpur (Kangra)" ASR. Annual Report, 1904-05, pp. 107-109.
38. G. Buhler, "Two Prasastis from Kangra", Ep. Ind. Vol. I (1892) No. XVI, pp. 97-118.
39. G. Buhler, "The Kangra Jwalamukhi Prasasti", Ep. Ind., Vol. I, (1892) No. XXIV pp. 190 195.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

40. G. Buhler, Ep. Ind. Vol. I, 97-118.
41. Ibid., pp. 118-120.
42. J. F. Fleet, CII. Vol. III, No. 80, "Nirmanda Copper Plate Inscription of Mahasamanta Samudrasena."
43. G. Buhler, Ep. Ind. Vol. I, (1892), pp. 97-118; Vide also. J. Ph. Vogel, Antiquities of Chamba State, Part I, Calcutta, 1911, and also "Inscriptions of Chamba," ASR. Annual Report, 1902-03, pp. 239 272.
44. Quoted by A. Cunningham, Coins of Medieval India, New Delhi. 1967, p. 56.
45. A. L. Basham, "The Kashmir Chronicle," C. H. Philips (ed) Historians of India, Pakistan and Ceylon, London, 1967, pp. 57-65.

    Basham holds the view that Tibet and Central Asia influenced historical writings of Kashmir; Himachal Pradesh was equally exposed to these regions of Asia.
46. V. S. Agrawala, Iudia As Known to Panini, 1953; vide also Panini, Astadhyayi, V. 3 116; vide also H. C. Raychaudhari, Political History of Ancient India, Calcutta, 1972, pp. 61-158 and pp. 166-174.
47. A. S. Altekar, State and Government in Ancient India, 1977, p. 112; R. S. Sharma, Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India, Delhi, 1968, pp. 120-122.
48. A. S. Altekar, ibid, pp. 122-123; H. C. Raychaudhari, Op. cit, pp. 106-184.
49. H. C. Raychaudhari, Op. cit, pp. 60 and pp. 139-158, and pp. 174-184.
50. A. S. Altekar, State and Government in Ancient India, Delhi, 1977, p. 118. Panini, Astadhyayi, V. 3. 116.
51. Ibid., vide also J. Allan, Op. cit, Introduction, pp. LXXXIII-LXXXVII.
52. Ibid.
53. A. S. Altekar, State and Government in Ancient India, pp. 119-120.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

54. Ibid., pp. 109-138.
55. D. C. Sircar, Studies in Indian Coins, 1968, pp. 212-213. A. S. Altekar, Ibid, pp. 109-138.
56. For Fuller information see U. N. Ghoshal, A History of Indian Political Ideas, oxford Univevsity Press, London, 1966, pp. 77-79& ch. V.
57. R. S. Sharma, Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India, Delhi, 1959, pp. 216.234.
58. H. N. Sastri, "Historical Documents of Kulu," ASR. Annual Report, 1907-08, Calcutta, 1911, pp. 260-272.
59. A. S. Altekar, State and Government in Ancient India, Delhi, 1977, pp. 75-109; vide also R. S. Sharma, Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India, Delhi, 1968, pp.296-298; See also Raychaudhary Op. cit, pp. 139 ff.
60. H. N. Sastri, Op. cit, pp. 260-272; J. F. Fleet, CII, Vol. III, (2nd Print) No. 80; R. S. Sharma, ibid., pp. 299-303.
61. For fuller discussion, see H. Goetz, Op. cit; vide also J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Op. cit, Ch. VII.
62. R. S. Sharma, Indian Feudalim: (300-1200), Calcutta, 1965, pp. 135-262.
63. A. S. Altekar, State and Government in Ancient India, Delhi, 1968, pp. 208-334.
64. Ibid., pp. 160-186.
65. J. F. Fleet, CII, Vol. III, No. 80.
66. A. S. Altekar, State and Government in Ancient India, Delhi, 1968, pp. 262-290.
67. Ep. Ind. Vol. I, pp. 97-118.
68. J. F. Fleet, CII, Vol, III, No. 80.
69. G. Buhler, Ep. Ind. Vol. I, pp. 97-118.
70. J. F. Fleet,, CII, Vol. III, No. 80.
71. Ibid.
72. A large number of temples were constructed by kings and queens.
73. A. S. Altekar, State and Government in Ancient India, Delhi, 1977, pp. 288-290.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

74. Ibid.
75. G. A. Griersion, Linguitstic Survey of India, Vol. IX; Pt. IV, Delhi, 1968, pp. 14-16; Vide also, Edwin J. Atkinson, The Himalayan Gazetteer, Vol. II, Part I, (reprint), Delhi, 1973, pp. 375-379.
76. Ibid., Vide also H. Goetz, Op. cit. p. 8.
77. J, F. Fleet, CII, III, No. 80. 1-10; Vide also Lallanji Gopal, The Economic Life in Northern India, Delhi, 1965, p. 19.
78. G. Buhler, Ep. Ind. Vol. I. (1892) pp. 97-119.
79. J. F. Fleet, CII, Vol. III, No. 80.
80. Ep. Ind., Vol. I, (1892) pp. 97-119.
81. J. F. Fleet, CII, Vol. III, No. 80.
82. For fuller discussion, see J. Ph. Vogel, Antiquities of Chamba State, Part I, Calcutta, 1911; see also. ASR., Annual Report, 1902-03, pp. 239-272.
83. G. Buhler, "The Kangra Jwalamukhi Prasasti," Ep. Ind., Vol. I, (1 892) No. XXIV, pp. 190-195.
84. Ep. Ind. Vol. I. No. XVI. pp. 97-119.
85. J. Ph. Vogel, Antiquities of Chamba State, Part I, Calcutta, 1911, passim.
86, Ep. Ind. Vol. I, (1892), No. XVI, pp. 97-119.
87. A. S. Altekar, The Position of Women in Hindu Civilization, Delhi, 1973, pp. 112-114. Vide also J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Op. cit, Vol. I. Lahore, 1933, p. 15.
88. For fuller discussion see A. S. Altekar, Ibid., pp. 115-195.
89. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel. Op. cit, p. 369.
90 Archaeological Survey of India, Library, Photo Album, see No. 1219/72.
91. Ibid.
92. Samuel Beal, Op. cit. Vol. II, pp. 210-211.
93. Kalhana, R. T. Verse 1931.
94. G. Buhler, "Two Prasastis from :Kangra", Ep. Ind. Vol. I, (1892), No. XVI, pp. 97-119.
95. Arch. Survey of India, Library, Photo Album, Nos. 1219/72 and 1624;
96. V. S. Agrawala, Harshacharita : Ek Sanskritic Adhyayana, Patna, 1964, p. 187.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

97. H. C. Raychaudhari, Op. cit., p. 269; Panini, Astadhyayi, 4.3.91.; Mbh., Drona Parva, 121. 13-14.
98. Pathiar inscription mentions the digging of a tank.
99. R. Shamashastry, Kautilya's Arthasastra, Mysore, 1961, Book II, Ch. I, 45-50, pp. 45-49.
100. ASR, Annual Report, Vol. XI, p. 106, Pl, 49. 12; Another ploughing-scene can be seen at Anand Temple, ASR. Annual Report, Vol. XII, P. 81, plates 33. 2021.
101. Samuel Beal, Op cit. Vol. II, p. 210-211
102. Ibid.
103. J. F. Fleet, CII, Vol. III, No. 80.
104. Samuel Beal, op. cit, p. 210-211.
105, G. Buhler, Ep. Ind., Vol. I, No. XVI, pp. 97-119.
106. Ibid.
107. Ibid,
108. J. F. Fleet, CII, Vol. III, No. 80.
109. J. Allan, Op. cit., Vol. I, Introduction; Vide also A. Cunningham, Coins of Medieval India, 1967 (New print) New Delhi, p. 25, 67, 99-103.
110. G. Buhler, Ep. Ind. Vol. I, Calcutta, (1892) p. 97-118.
111. Arthasastra (2.11) mentions blankets, hides etc. available from hills.
112. Mbh. Sabha Parva.52-5; Megasthenes describes some fruit-trees of hills of north India. Vide R.K, Mukerji, Chandragupta Maurya and His Time, p. 75.
113. E. H. Warmington, Commerce between the Roman Empire and India, Delhi, 1974. pp. 180-234.
114. G. Buhler, Ep. Ind., Vol. I, (1892), pp. 118-126.
115. E. H. Warmington, Op. cit, pp. 180-234.
116. A. Cunningham, ASR, Vol. 14, p. 116.; vide also his Ancient Geography of India, p. 293.; see also Patanjali's Mahabhasya, 1, 4. 51; 1. 3. 23. Vide also 4. 3. 86.
117. Samuel Beal, OP. cit. Vol. II. pp. 97-118.
118. J. Allan. Op. cit, Introduction, pp. CI-CIII.
119. A. H. Francke, Antiquities of Western Tibet, Vol. II, see appendix.
120. Arch. Survey of India, Library, Photo Album,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

121. Kalhana, R. T. 7. 1549.
122. Ep. Ind., Vol. I, (1892) pp. 97-119. Vide also Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab. Vol. I, (1908) p. 383.
123. G. Buhler, "The Jain Inscription in the Temple of Baijnath at Kiragram," No. XVII, and "On the Pedestal of an image of Parsvanatha in the Kangra Bazar,". Ep, Ind. Vol. I, No. XVIII, Calcutta, (reprint. 1971) pp. 118-120.
124. Imperial Gazetteers of India. Provincial Series, Punjab, Vol. I, (1908), p. 389; ASR, Vol. V, p. 177; Ep. Ind. Vol VII, p. 116.
125. Ep. Ind. Vol. III, p. 116.; Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab, Vol. I, (1908) p. 391.
126. V. C. Ohri (ed), Arts of Himachal, State Museum, Simla, 1975, pp. 215-217.
127. Baldeva Kumar, The Early Kushanas, New Delhi, 1973, p. 42.
128. B. B. Lal. "Palaeoliths from the Beas and Banganga Valley, Punjab", Ancient India, No. 12, pp. 58-92,
129. R. V. Joshi, "Prehistory Stone Age Sequence in the Kangra Valley". Op. cit.
130. M. Wheeler, Early India and Pakistan, (Thames and Hudson), London, 1968, pp. 94 ff.
131. Panini, Astadhyayi, V. 3. 116; Vide also V. S. Agrawala, India as Khown to Panini, 1953.
132. Samuel Beal, Op. cit, Vol, II pp. 207-18.
133. J. Ph. Vogel, "Inscribed Brass Statuette from Fatehpur, (Kangra)", ASR. Annual Report, 1904-05, pp. 107-109.
134. Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab, Vol, I (1908) p. 384; vide also ASR. Vol. V, p. 177.
135. G. C. Birdwood, Industrial Arts of India, pp. 154-155.
136. Ep. Ind., Vol. I, (1892) pp. 97-119.
137. J. Allan, Op. cit, Introduction; vide also Kanhiara Inscription, Ep. Ind. Vol., VII :p. 116; Pathiar Inscription, Ep. Ind. Vol. IV, p. 116.
138. Arthasastra of Kautilya, 2. 11.
139. Samuel Beal, Op. cit, pp. 207-218.
140. J. Allan, Op. cit, Introduction, passim.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

141. Samuel Beal, Op. cit, Vol. II, pp. 207-18.
142. E. C. Sachau, Op. cit.
143. Samuel Beal, Op. cit, Vol. II, pp. 207-218.
144. Ibid. pp. 210-211.
145. H. Goetz, Op. cit; vide also V. C. Ohri, (ed) "Temple at Nagar and Jagatsukha in Kulu", Arts of Himachal, Simla. 1975, pp. 127-128.
146. H. N. Sastri, Op. cit, pp. 260-272.
147. A. F. P. Harcourt, Op. cit, p. 62; Vide also ASR, Annual Report, Vol. VII, 1907-08, p. 262.
148. ASR., Annual Report, 1907-08, (1911) p. 262.
149. J. F. Fleet, CII, Vol. III, No. 80.
150. Ibid.
151. J. Hutchinson and J. Ph. Vogel, Op. cit, Vol. I, p. 50
152. Alberuni. quoted hy J. Hutchinson, Op. cit, p. 107; other references to Nagarkota can also be seen here.
153. G. Buhler, Ep. Ind. Vol. I, (1892) No. XVI, pp. 97-118.
154. J. Ph. Vogel, Antiquities of Chamba State, Part I, Lahore, 1911; vide also H, Goetz, Op. cit, passim; see also Himachal District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 435-36
155. H. Goetz, Op. cit, pp. 5.8.
156. Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba, 1963, pp. 61-85.
157. Ibid. , p. 62 and 437; for fuller discussion see J. Ph. Vogel, Antiquities of Chamba State, Part I, Calcutta, 1911.
158. Ibid. , see also ASR., 1902-03.
159. H. Goetz. Op. cit, p. 60.
160. M. M. Singh. The History of the Mandi State, Lahore, 1930, passim.
161. S. Beal, Op. cit, Vol. II, pp. 217-18; Vide also Patanjali, Mahabhasya, 6.3.122, Patanjali mentions high buildings and ramparts of the city of Srughna, see. 4.3.39. 1.4.51 and Kasika, 2.3.4. "अन्तरा तक्षशिलां पाटलिपुत्रश्च स्रुघ्नस्य प्राकाराः" ।
162. Samuel Beal, Op. cit. Vol. II, pp. 217-18.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

163. Patanjali, Mahabhasya, 4.6, 13.25, 1.4.51.
164. Gazetteers of India, Himachal Pradesh, Sirmaur, 1969, pp. 50 ff.
165. H. Goetz, Op. cit, p. 68.
166. A. F. P. Harcourt, Op. cit, pp. 60-67 and 101; Vide also Imperial Gazetteers of India, Provincial Series, Punjab 1908, Vol. I, p. 384. and J. Ph, Vogel, History of the Punjab Hill States, Lahore, 1933, pp. 474-488.

CHAPTER VIII

1. Rahul Samkrityayana, Himaprastha, August, 1968, p. 14.
2. Eliot, Hinduism and Buddhism, Vol. I pp. 348-358.
   B. C. Sanyal "Journey to Ki and Tobo Monastaries, Spiti Valley" Rooplekha, Vol. XXXVIII, No. 1-2, p. 144-152.
   B. H. Lee Shutleworth, Lha-Lun-Temple, Spyti, Memoirs of Archaeological Survey of India, No. 39, 1929, See above chapter 4 which deals with Buddhism.
3. A. H. Francke, Antiquities of Indian Tibet, Part-I-II, Calcutta, 1914 and 1926.
   AFP Harcourt, The Himalayan Districts of Koloo, Lahaul and Spiti, (reprint) Delhi, 1972, pp. 65-67,
   Samuel Beal, op. cit, Vol. II, Calcutta, 1958.
   Sarla Khosla, Buddhism in Kashmir, New Delhi, 1972,
   D. I. Lauf, Tibetan Sacred Art, London, 1976.
   D. Snellgrove and Hugh Richardson, A Cultural History of Tibet, London, 1968.
4. Lal Chand Prarthi, Kuluta Desh Ki Kahani.
5. B. N. Pandit has wrilten an essay on his philosophy.
   J. Ph, Vogel, Ep. Indica, Vol. I, (1892), pp, 97-119,

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Inscriptions found from Kangra and Baijnath mention a number of philosophers who came to Kangra and Kiragram and decided to live there.

6. Nihar Ranjan Ray, "Sculpture from Punjab Hill States", R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar (ed) Struggle for Empire, pp. 663-665 ;
H. Goetz, Early Wooden Temples of Chamba, Leiden, 1955, pp. 103-107.
P. B. Bannerji, Art-Style in Himachal Pradesh, Its origin and Development, 600-1200 AD, a paper presented in a Seminar on Art and Archaeology of Himachal Pradesh. State Musuem, Simla, 4th October, 1975.
7. Herman Goetz, Early Wooden Temples of Chamba, Leiden, 1955; J. Ph. Vogel, Antiquities of Chamba State, Part I, Calcutta, 1911,
————, A Catalogue of the Bhuri Singh Musuem at Chamba (Chamba State) Punjab, Calcutta, 1909.
8. Roerich, Art in the Kulu Valley, Nagar (Kulu), 1967.
J. E. French, Himalayan Art, London, 1931.
V. C. Ohri (ed) Arts of Himachal, Simla, 1975.
B. H. Lee Shuttleworth, "Inscribed Mask discovered at Nirmand," Acta Orientalia, I, 1929.
9. J. Ph. Vogel, "Inscribed Brass Statuette from Fatehpur (Kangra)", ASR, 1904-05, pp. 108-109.
———, "Remnants in the Kangra valley" Marga, vol. X, (2) 1957 ;
vide also Madanjeet Singh, Himalayan Art, London, 1971.
10. V. C. Ohri, "Extension of Pratihara Style in HP." (8th C. AD to 11 th CAD, a paper presented in a seminar on Arts and Archaeology of Himachal Pradesh, State Museum, Simla, 4th October, 1975.
———, Arts of Himachal, State Museum, Simla, 1975.
11. H. Goetz, op. cit, Leiden, 1955.
12. J. Ph. Vogel, "Inscribed Brass Statuettes from Fatehpur (Kangra)", ASR 1904-05, pp. 108-109.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

B. Ch. Chhabra, "Svachhanda Bhairavi, Bronze Image from Kangra," Journal of Indian History, Trivandrum, Vol, XLII.

H. Goetz, "A late Pratihara Brass Group", Oreintal Art, New Series, vol, II, No. 4, 1956.

———————, Antiquities of Punjab Hill District of Chamba, Marga, March, 1957.

13. Ibbetson, Edward Maclagan and H. A. Rose, Tribes, Lahore, 1919, pp. 137-403.

O. C. Handa, Folk Art, DB Taraporewala, Bombay, 1975.

14. W. G. Archer, Indian Paintings from the Punjab Hills, A Survey and History of Pahari Miniature Paintings, (in 2 volumes) OUP, Delhi, 1973.

A Coomarswamy, Rajput Paintings (with a foreword by Karl J. Khandelwala, Delhi, 1976, pp. 1-13, and pp. 21-25.

K. L. Vaidya ; Himachal Ki Chitra Kala, National Publishing House, Delhi.

Meera Seth, Wall Paintings of the Western Himalayas, Publication Division, Ministry of Education, Govt. of India, New Delhi, 1976, See chapters 3 and 4, pp. 27-91.

15. J. Ph. Vogel, "Hill Temples of the Western Himalayas" Indian Art and Letters, New Series, 1946.

———————, "Ancient Monuments of Kangra, Ruined in the Earthquake", ASR, 1905-06. pp. 11-27.

Hiranand Sastri, "Ruined Temples in the Nurpur Fort," Archaeological Survey of India, Annual Reports, 1904-05.

16. Krishna Deva, Temples of Northern India, National Book Trust, New Delhi, 1969, pp. 26-27.

17. Gazetteers of India, Himachal Pradesh, Sirmaur, (Ed by T. S. Negi). 1969, pp. ...357, 362-63, 365.

18. J. Ph. Vogel,"Hill Temples of the Western Himalayas", Indian Art and Letters New Series, 1946.

S. Roreich, Art in the Kulu Valley, Nagar (Kulu) 1967.

19. Archaeological Survey of India, Library, Photo-Section, Album, No. 1219/72 and 1624.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

20. Ibid.

21. Hiranand Sastri, "Ruined Temples in the Nurpur Fort", ASR, 1904-05.
H. Goetz, "Rajput Sculpture and Painting under Raja Umed Singh of Chamba," Marg, 1954.
Gazetteers of India, Himachal Pradesh, Sirmaur, (ed. by T.S. Negi) 1969, see pp. 357, 362, 365. Most of the present temples are built in this style.

22. Gazetteers of India, Himachal Pradesh, Sirmaur 1969 pp. 563. Guru Govind Singh, the tenth Guru, resided at Pounta Sahib, where a gurudwara was built. See Ibid, p. 357.

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

अनुक्रमणिका

अकबर ११९
अकबर सेन ११४
अतीश दीपङ्कर ८२, ८३, ८४
अथर्ववेद १०२, १४४
अनंगपाल १८०
अनन्तदेव ११६, १२३
अन्टि आल काइडस ४०
अपालो डोटस ४०, ४४, ४५, ४७,
अन्टिआकस ४०
अबुल फजल ९, १८०
अबु हसन ५५
अभय चन्द्र सूरी १३९
अभिनव गुप्त ७८
अमोघ भूति १०५, १५५
अमितायुस ९७
अर्द्धनारीश्वर १८४
अल्हण १३९
अलबरूनी ९, १४, १४७, १५२, १८०
अवलोकितेश्वर ९३, ९४, ९७, ९८, ११०
अशोक २३, ३७, ६९, ७०, ७२, ७४, ७६, ७८, १४५, १४६, १४९, १७०, १७७, १८९
अष्टाध्यायी १४८
असिक १६२, १६८
आनन्दपाल ६५
आबू १२३
आयुधजीवी ३५
आयुधवंशी ६१
आयुर्वेद १४८, १८९
आल्पस ४
आहुक १६२, १८१
आहतसिक्के २६, १६८
इन्द्रवर्मा १३९
इन्द्रायुध ६१
इस्लाम १९२
उत्बी १७९
उदयसिंह ११५
उदयपुर १३१
उद्योतर्क १६२
उद्रङ्ग (कर) १५८
ओदन्तपुरी ८
ओम् मणिमद्मे हुम् ९९
कटोच ६६, १८१
कनिष्क ४९, ७८, १४०, १८९
कन्नौज ५८, ६६, ६७, १७०, १८२
कन्दुक-बिन्दुक (नदियाँ) १८१
कन्हिआर २४, ८६, १४५, १७१, १७२
कपालेश्वर १७९
कर्णगढ़ ९
करन्ड-व्यूह ८७
करसोग १३, १३२
कल्हण ८, १८, १५३, १५९, १७१
कवीश्वर (उपाधि) १५१
कश्मीर ७७, १५१, १८१, १८८, १८९, १९०
काजा ९७
कार्तिकेय नगर ५६
कार्तिकेय पूजा १०६
कादम्बरी ५८
काशी १८४
काल्सी ६९, ७५, १४९, १७०, १८५
काहिल १८१
कांगयुवपा ९५
कायर्दादून ३, ३५, १८५
काव्य मीमांसा ५६, ६४
किरात १५, अन्यत्रभी

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

कीरग्राम ८, १०८, १०९, १६१, १७१
१८०, १८१
कुतुबमीनार १२३
कुटिलाक्षर ८६, ९१, १४७
कुबेर १४१
कुब्लेखान ८३
कुमार गुप्त ५६
कुमायूँ ७, ५६, ५९, १४६
कुलान्त पीठ ५४, १७६
कुलूत ६४, ६९, ७०, १७७
कुष्ठ (पौधा) १६६
कोक सार ९९
कौल १६०
कौटिल्य ३९, १६६
कौशाम्बी ७४
केलात १७५, १७७
कंजूर ८७, ९१, ९२
कृत्तिका (कुमार की पत्नी) १०६
कृष्ण बिहार १४५
कृष्ण भट्ट १५१
खखनाल १३७
खजुराहो १८२
खशाधिपति ५५, ५६, ६४
खेबूर ९९
खी-ज्सुग-ल्दे-वत्सन ८०, ८२
गन्धर्व १९२
गणेश्वर १७८, १८२
गढ़वाल ७, ११, ५९, ७७, १४६
गिरि नदी ६
गुरुदासुपर ५८
गुर्जर प्रतिहार ६०, १८५, १८६, १९१
गुजरात १८१
गुरुकुल प्रणाली १४३
गुरु घन्टाल ७७, ९४
ग्वालियर प्रशस्ति ६२
गोम्पा ९६
गोम्बो देवता ९३
गोम्बो लहर्जे ९
गोविन्द १८२
गोविन्द सागर १८६
गौडवहो ६१
गौरी शंकर ११२, १८३
ग्रह वर्मन ५८
घोसुण्डी लेख १०४
चक्रायुध ६१
चम्बा १८१, १८२, १८३, १८४, १८८
१९०, १९१
चन्द्र हस्तिन १५६
चन्द्र वरदाई १८०
चानरू नदी ७२
चारीनाक १७५
चालुक्य वंश १८
चित्र वर्मा १०, ३६
चीन १८८
चूड़धार (शृंखला) १, २, ३
चैतूड़ ७०
चौरासी (क्षेत्र) १३१
चण्डेश्वर १७७
छड़गाँव १४०
छतरारी १८२
छत्रेश्वर (शिव) १०५, १५७
जगत्सुख १७७
जगत् सिंह १३०
जगन्नाथ १३७
जगाधारी ३५, १८४
जम्मू १८९, १९०
जमुन नाग १४०
जयसिंह १८
जलन्धर ८, १३, ३७, ४१, ४६, ५८,
६९, ७३, ७४, ७७, १४४, १४९,
१५१, १७०, १८१
जहांगीर १५
जामदग्नि १३७
जालपा १८४
जीवक १८१
जुब्बल १२७, १८५, १९१

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

जैन वल्लभ वंश १३६
जोनराज १८, ११६, १८३
जौंसर ७५
ज्वालामुखी १८०
टशिल हुम्पों ८५
टालमी ४२
टाँकरी २६, १४४, १७६
टेरी १८०
टोपरा ६६
टौन्स २७, १७०
ट्सुलिंग (ग्राम) ६६
ठक्किक परिवार ६३
डुक्पा ६३
डेमेट्रियस ४०
तथागत (बुद्ध) ६६
तन्युग गोम्पा १००
तमसाबन ५८, ७०, ७३, ७४
तक्षशिला १४३, १४५
ताम्र पत्र १५०, १५६
तारा ८०, ८८, ६७
तारानाथ ७०
तालपुर १५८, १६१, १६८, १७६
तिब्बत १८८
तोरमाण ५७
थानेश्वर ५८, १४०, १४४
थोन्मी सम्भोट ८०
दिन्न ६२, १६६, १७६
देपिक १८१
देवनागरी लिपि १४७
देवभद्र सूरी १३६
देवभट्ट १३६
देव गुप्त ५८
देव पाल ६४
देहरादून १८०
दोल्हण १३६
द्रम्म (सिक्का) १६६
धर्म पाल ६१, ८२
ध्रुव स्वामिनी ५५
घोधुक १६२
नगर कोट ६, ६३, ७०
नर्मदेश्वर १३७
नयचन्द्र १८०
नरसिंह १३१
नवग्राम १०६, १६१, १६८
नवग्रह १३८
नागभट्ट द्वितीय ६२
नागार्जुन ७६, १५१
नाला गढ़ ३०, १७४
नालन्दा १४५
नायक १०६
निर्मण्ड २७, ५६, १०२, १७८
नियार्कस १४
नीरत ७३, १३४
नेपाल ७६
प्लिनी १४
पंगना ११४
पंचवक्त्र मंदिर १८४
पतंजलि १०३
पथियार २४, ३८, १४५, १७२
पण्डोह १८४
पद्मसंभव ८०, ८१ अन्यत्रभी
पप्पमेवा ४४
पब्बर नदी १७०, १८५
परशुराम १७८
परंगनाग १४०
पहेवा (पृथूदक) ५६, ६३
प्रजा-मण्डल १३ F
पृथ्वीराज रासो ६, १८, १८०
प्रलम्ब (पालमपुर) ग्राम १६८
प्रभाकर वर्द्धन ५७
पाकिस्तान १७४
पांगी पर्वत २
पाण्डव १८४
पाणिनि १७, ३३, ३५, ३६, १४७
१५०, १५४, १६६
पामीर १२

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

पार्वती १३५, १७८
पाशुपत सम्प्रदाय १०५
पार्श्वनाथ १३९
प्रागैतिहासिक काल १६६
प्राज्य भट्ट १९
पुष्यमित्र ३९, ४०, ७०
पैगोडा मंदिर (शैली) १९१
पौन्टा ७५
पौन्टा साहब १८५
फक्क १६८, १६९
फजल अली १६
फतेहपुर ८६, १०९
फरिश्ता ६३, १७९
फारस १७०
फाह्यान १४
फ्रिलोजोनस ४०
फिरोज तुगलक ११९
बजौरा १०७, १२६, १२९, १३०, १३६, १७८
बनारस १८४
बरया १७५
बरूण सेन १७८
वल्लभ भाई पटेल १२, १३ F
बसु बन्धु ८६
बारा लाच (दर्रा) ४
बासन गांव १८४
बाण भट्ट १०, १७, ५७
बाणासुर १८४
बिक्रमशिला ८३
बिलासपुर ६५, १८६, १८९
बिहंगामिनी पाल १७८
बीर प्रकाश १८७
बिशारव दत्त १७, ५४, ५५
बुद्ध ६९, १८९, अन्यत्र भी
बैक्ट्रिया ४९
बैजनाथ ६६, ७३, १०७, १०८, १२९, १३३, १३९, १४७, १५१, १५२, १५=, १५६, १६१, १६८, १८१, १८६, १९०, १९१
बैजनाथ प्रशस्ति, ६६ अन्यत्र भी
बैद्यनाथ १०९
ब्रोम स्टोन ८३,९६
ब्रह्माण्ड पुराण ५४
ब्रह्मपुर १८२
भगवद्गीता १३८
भरमौर १८२
भीमा काली मंदिर १८४
भीम कोट (भीम नगर) १७९
भुवनेश्वर १२३
भूतनाथ (शिव) १८४
भोट सम्राट ६४, ६७
मकर वाहिनी १७८
मंजु श्री ९३
मंजु श्री कीर्ति ८५
मंज्भन्तिक ६९
मजमुल-उत-तवारीख ५५
मण्डपिका १५८
मण्डलीक देव १४१
मणि महेश (शिव) १११, १३१, १३६
मणिभद्र यक्ष १४१
मत्स्य पुराण ५४ अन्यत्र भी
मथुरा १०५
मदुराई १२३
मध्य एशिया १८८
मन्युक १६२, १८१
मनाली १९१
महमुद गजनवी २७, ६५, ७८, ११९, १७९
महेन्द्र पाल ६३
मल्हिका १८१
मसरूर २७ (भूमिका) १९१ अन्यत्र भी
महाभारत १०६ अन्यत्र भी
महाराज (उपाधि) ५९ अन्यत्र भी
महासू १८५, १८९, १९१
महादेव १०३
महादेव औदुम्बर ४६

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

महाभाष्य ६ अन्यत्र भी
महीपाल ६३, ६४
महिषासुर ११७, १२३
महिषासुरमर्दिनी १२३ अन्यत्र भी
मानव गृह्य सूत्र १३८
मार्कण्डेय पुराण ५४, १२४
माहिल १८१
माण्डव्य १८३
मिलिन्द पन्हो १३८
मिलारेपा ६३
मिनैन्डर ४०, ७१
मिहिरकुल ५७, ७५
मिहिर भोज ६२, ६३, १३१
मिहिरेश्वर १७९
मिहिर लक्ष्मी १६८, १७९
मित्र (नामान्त) (वंश) ५२
मुकुला देवी ११६, १३३
मुरली धर १३०
मुल्तान १७९
मोग्गलिपुत्तत्तिस्स ६९
मौलोपो ७६
मेगस्थनीज १४
मेरूवर्मा ६५, ११२, ११७, १८२
मृङ्क-(मन्त्री) १५१
मृद्भाण्ड् (मृण्मुर्तियाँ) १४
यशंस होद ८२
यशो वर्मा १८२, ६१
यक्ष (देव) १४१
युगाकर वर्मा ६५, १३०, १८३
युधिष्ठिर १६९
युनान १७०
योधुक १०६
योनि १२५
यौधेय १०५, १०६, अन्यत्र भी
रघुनाथ १३०
रणजीत सिंह ११९, १२०, १२२
रतन बज्र ७९
रमठ ६३, ६४
रिंग ९६
रल्हण १०९, १६८
रल्पकन ८२
रविसेन १७८
राघव चैतन्य ११८, १५१,
राजतरंगिणी ५६, ६३, ६५, १८२
राजशेखर ६३
राज्यपाल ६४
राजस्थान १२०, १६७
राज्य वर्धन ६, ५८
रामदेव ६३
राम भद्र ६३
रामगुप्त ५५
रामापिथेकस ३०
रारेन्ग ८३
रिन्चेनल्जल्पो ८३,
रिन्सेन जंग्पा ६५
रिब्बा ६, ६०
रिम्बोची १०१
रिवाल्सर झील ८१, ६४
रूद्रदामा ३६, ५१
रूद्र वर्मा ४७
रेप्सन १०४
रेणुका देवी १२७
रोपड़ १७०
रोहतांगपास ७०
रंग नाथ मन्दिर १८६
लन्चेन ८२
लद्दाख १८८
लब्रङ्ग ६२
लहाब्लामैद्गोम्पा ८९
ल्हासा ९६
लक्षणादेवी ११७
लक्ष्मीनारायण १८३
लक्ष्मण चन्द्र १५८, १५९, १६९
लक्षणिका १५९, १६८
लामा धर्म ८२
लामा देवाराम ६१

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

लाहौल ६४, १८६, १८८
लाहुल वाद ७६
लिन्ती घाटी ६६
लिलुंग ६६
लीसियस ४०
लोकपाल ५६
ल्हो-चन ८२
ल्हा ब्लान्मा ६६
ल्हा-खण्ड ६६
ल्हासा ८४, ८५
लंगडरमा ८२
वलभी १४५
वराहमिहिर १०, १७, ५४
वराह १३१
वज्रपाणि ६३
वज्र वाराही ८६
वागीश्वर १५७
वाणभट्ट ५५
वाक्पतिराज ६१
वासुदेव १२६
विन्द्रावली (ग्राम) १८४
विश्वेश्वर १०७, १७८
विश्वनाथ ११४, १८४
विश्वामित्र ६
वीरयश २६, ४१, १५५
वेमकेडफाइसेस ४६
वैकुण्ठ मूर्ति ६४
व्यम्ख-चेन-चेरिंजे ८२
शक-सम्राट ५५
शक्ति देवी १२२
शतद्रु ५६
शम्भू नाथ १६०
शहबुद्दीन १८०, ११६
शाक्य ६७
शल्य चिकित्सा १४३
शालिपुरी १७७
शाह मिर्जा ७८
शाहमद १८३
शिमला १८६, १८६
शिवालिक (पहाड़ी) १, ३०, ४४
शिवदास १०३
शीतला १८४
श्री लक्ष्मी ११५
शेर शाह ११६, १४०
शैव भागवत १०३
शंकराचार्य कुमारिल भट्ट ७८
शंकर वर्मन ६३
शार्गधर-पद्धति १५१
श्वेताम्वर १३६
षष्ठी, कुमार की पत्नी १०६
सर्व वर्मन ५६, १७६
संजय सेन १७८
सलारू (सालरी) १५६, १७७
संसार चन्द्र ११०
सल (साल) १८३
समुद्र सेन १६८, १५६, १७८
सशांक ५४
सरहिंद ५६
समुद्रगुप्त ५३, १४६
स्रोन गम्पों ८७
साक्य विहार दिकुंग ८४
साक्य पन्सेन ८३
साहिब्र सेन १३२
साहिल वर्मा ६५, ८३
साहिल १८१
सिकन्दर १४, ७८
सिक्ख १६२
सिंहपुरा १८५
सिरमौरी १४७
सिद्ध मातृका लिपि १४७
सिद्धेश्वर १८१
सिद्ध पुर १८१
सिद्धों की पूजा १४१
सिद्धसेन १३६
सुशर्मपुर १५६, १६१, १६८
सुशर्मा १०६, ११६, १७६

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

सुलभक १६२, १६८, १७९
सुल्तानपुर १३०
सुवर्ण गोत्र ५८-५९
सुबुक्तगीन ६४
सुन्दर नगर ९३
सुघ १८४, १८५
सूर्यमति ११६
सूलिश ग्राम १६७, १७९
सूगिक १६२
सैन्धव घाटी १०३, १७५
सोन्ग खापा ८४
सोहन घाटी १७४
सांची ७४, १४१
संघाराम १४४, १५५, १७४
संध्या देवी १८६, १७८
सांख्य गृह्यसूत्र १४१
संगोह (ग्राम) १२१
स्तूप ६९, ७०, ७५, ८७, ८८
स्विति ६२, १८६, १८८
सुघ्न ३५, ५८, ५९, १८४, १८५
स्कन्दगुप्त ५७
स्त्रोग-ट्सन-गम्पो ७९
हर्ष बर्धन १५, २३, ५८, ७६, १५६, ६५, १५७, १८२
हर्ष संवत् ५९
हर्ष चरित ५५, ५७
हरिराय मन्दिर १८३
हरिपुर ११८
हरिवंश पुराण १२४
हारीती (यक्षिणी) १४१
हाट कोटा ११४, १२६, १२७, १४७, १५०, १८५
हिडिम्बा देवी १२६, १३६, १९१
हुविष्क ४९, १४०
हेमचन्द्र ८, १८
हेमवती ११५
हेलियोडोरस १०४
हैदर शाही ७८
ह्वेनसांग ८, १४, ३६, ३८, ५८, ५९ ७३, ७५, ७६, ८८, १०७, १४४, ११७, १७७, १८२, १८४, ८५
होशियारपुर ५८, ५९
त्रकत जनपद ३४, ४१
त्रिगर्त ७, ८, १८, ६८, ३५, ३७, १५५, १७७, १७९, १८२
त्रिलोकनाथ ७७, १८४, ९४
त्रिरत्नों ७४
त्रिपुर सुन्दरी देवी १२५

शुद्धि-पत्र

भूमिका, पृष्ठ ३० चौथी पंक्ति में पाँच की जगह आठ पढ़िये।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९,	२५	दृष्टि के	दृष्टि से
२५	१८	इस	इन
३२	१	तारोपड़	रोपड़
३३	१३	मार्ग में	भाग में
३५	२	आधु-जीवी	आयुध-जीवी
३५	२१	स्नुहन	स्नुघ्न
३८	२	ह्वेनसांग कि	ह्वेनसांग के
३८	१०	संथाराम	संघाराम
३८	१३	आकत	अर्हत
४१	१८	समृद्धि	समृद्ध
४४	११	से ५४	५४
४५	१८	कनिष्क विजयो	कनिष्क की विजयों
५७	६	बाहु वर्ण	बाहु-बल
६१	५	यशोधर्मन्	यशोवर्मन्
६१	७	वाक्पतिराण्य	वाक्पतिराज
६१	७	गौड चण्हो	गौडवहो

६१ पंक्ति १०-१२ की जगह पर पढ़िये अध्याय ३, टिप्पणी ५८

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७१	१८	सिवको वैसे	सिवकों से वे

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

७१	२०	जनता को	जनता में
७३	६	निर्मंष्ठ	निर्मण्ड
७३	९	बह्मोस्र	ब्रह्‌मौर
७५	७	सुहन	सुघ्न
७६	२४	ग्रन्थाओं	ग्रन्थों
७७	१८	अफल	सफल
७८	२९	प्रचारक	प्रचार
७९	३	लद्दाख	लद्दाख में
८१	४	आश्चर्य	आचार्य
८६	२०	भेट	भोटी
८८	३	दैत्य	चैत्य
८८	२५	गोओ	गोम्पाओं
८९	१२	सांस्कृतिक	संस्कृति के
९४	२२	लावेल	लाहौल
९८	१९	चित्रविधियों	चित्रवीथियों
१०८	२६	प्रशासित	प्रशस्ति
११२	२६	अनूय	अन्य
११८	२३	शाक्य	शाक्त
१२०	२८	अधिकारी	अधिकांश
१२३	२७	पंचवक्याशिव	पंचवक्त्रशिव
१२४	४	मन्दिरो का	मन्दिर का
१२४	१०	चन्द्रघण्हा	चन्द्रघण्टा
१२४	१०	करत्यायनी	कात्यायनी
१२४	१०	सिद्धदागी	सिद्धदात्री
१२४	१४	पद्वित	पद्धति
१२५	२६	सैमयिकधावतों	समयिन शाक्तों
१२५	२८	अग्रिम	अगम्य
१३१	१५	त्रिभुवननरेश	त्रिभुवन रेखा
१३५	२५	वर्गविरोध	वर्ग-विशेष
१३५	१०	गणपत्य	गाणपत्य
१३८	२	अधिकारी	अधिकांश
१३८	१५	यज्ञयावा.	यक्षयात्रा
१४०	१७	आज्ञा	आत्मा
१४१	११	सौर	और
१४८	२३	त्रधि	ऋषि
१४९	२२	गई थी भाषा	रह गई थी
१५२	२८	इतिहासलेखक	इतिहासलेखन
१५४	३	विगर्तष्ठ	त्रिगर्तषष्ठ
१५४	९	उल्लेख है	उल्लेख किया है
१५४	१२	कुल्लों	कुलों
१५५	१४	अतिविशेष	जाति-विशेष
१५६	२२	कुस्तिन	हस्तिन
१५९	१२	विभिन्न	विभिन्न स्रोत
१६०	२५	निर्मण्थ	निर्मण्ड
१७७	८	अलबखूनी	अलबरूनी
१८२	१३	नकरातमक	नकारातमक
१८३	२९	माण्डूवथ	माण्डव्य
१९१	२०	प्रास्तर	प्रस्तर
६	५	शैवाधर्मं	शैव धर्म
३१	१५	महापात्रा	महापात्रा ने
६६	१२	विरुद्ध	विरुद
६९	१३	भिक्षाणियों	भिक्षुणियों
७२	१	धर्म की	धर्म का
७९	३	संस्कृत	संस्कृति
८३	१३	स्पित	स्थित
९३	४	वृत्तिका	मृत्तिका
९५	२	दिखाता है	दिखता है
९५	२	स्पिति	स्पिति की
१०८	३	शिषर	शिखर
१०८	१२	महिषकार्दिनी	महिषासुरर्मदिनी
१०९	११	द्रोण	द्रोण
१११	१६	तवी	रावी
११३	२२	अलंकारण	अलंकरण
१२२	२	अलंकारण	अलंकरण
१२१	२८	वारना	तारना
१२३	१७	मुख्य	मुख
१४४	७	रचनायें	सूचनायें
१४४	२९	स्थानों के	स्थानों में
१४७	१	मिलती है	मिलता है
१५१	२०	की नाम	का नाम
१५६	१४	सलाह	सालरु
१५८	१२	असम्भवतः	सम्भवतः

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
प्रो. बी एन. पुरी
संग्रह
लखनऊ

Library
Lucknow
7135

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu Heritage Foundation of America. HHFA(USA)

Digitization by Hindu-Heritage-Foundation of America. HHFA(USA)

Ancient Himachal : History, Religion and Culture

"I have gone through the manuscript of the monograph Prachina Himachal : Itihasa, Dharma evam Sanskriti by Dr. L. P. Pandey. This is the first work of its kind on the subject. Dr. Pandey has worked hard to collect much useful material and to present a connected history of Himachal Pradesh. The monograph brings into relief the cultural personality of the region. The work is based on a critical study of the original sources. Its literary presentation will be of absorbing interest to its reader.

I have pleasure in recommending this scholarly study to scholars and general readers alike."

Prof : LALLANJI GOPAL
College of Indology
Banaras Hindu University :
VARANASI—5

Publisher :

Mrs. Kamini Gupta
E-38, Pancha Sheel Park, New Delhi
For
Indian Classics,
7608-9, Ram Nagar,
New Delhi-110055

Available at : Sole Distributor
Minerva Book House,
The Mall, Simla—171001